यथार्थ



डॉ० मंजु द्विवेदी

संग्रह की बात करें तो "**यथार्थ**" की परिभाषा "**सच की सन्नद्धता नहीं बल्कि प्रतिबद्धता है**"। कथाकार संवेदनाओं के घरौंदों में सुरक्षित जीवन की जीजिविषा की समिधा डालकर मानवीय मूल्यों की विवेचना की हैं जो करुणा, दया, संवेदना और प्रेम की पराकाष्ठा का अक्षयस्रोत हैं। जब चौतरफा स्त्री-विमर्श पर बहस जारी हो, उसकी अस्मिता का प्रश्न खड़ा हो, उसकी सौम्यता-धीरता की जगह विद्रूप रूप का बखान कर बौद्धिक वर्ग अपने सम्मान के सम्मोहन में फँसा हो। ऐसे समय में प्राकृतिक सुषमा, प्रेम, शृंगार, संयोग, वियोग की चर्चा अपने आप में हास्यास्पद जान पड़ती है। परन्तु "**साहित्य समाज का दर्पण होता है**" जो भाषा एवं भाव की पुष्टता से हृदय में उपजे भावों एवं विचारों की अभिव्यक्ति कर सामाजिक सत्य का प्रस्फुटन करता है। कथाकार ने आपाधापी के पायदानों पर चढ़ती उतरती जिन्दगी की जीवन्तता, मान-सम्मान, अभिलाषा, चिन्ता, स्मृति-प्रेम, उद्वेलन, प्रवास, मिलन-बिछुड़न, मान्यता, रूढ़िवादिता, बाल-विवाह, सांस्कृतिक एवं नैतिक मूल्यों के गिरते मापदण्ड को बखूबी चित्रित किया है। जिसमें मन का आवेग, संवेग, उत्कण्ठा, भाव-प्रवणता मुखरित है। कहानी का यही स्फुरंत सौन्दर्य मन को छू-छू कर निकल जाता है। कृष्ण की आत्मकथा (प्रलय खण्ड) में उद्धृत मनु शर्मा की यह पंक्ति "यथार्थ" के परिप्रेक्ष्य में समीचीन है "मुझे देखना हो तो तूफानी सिन्धु की उत्ताल तरंगों में देखो। हिमालय के उत्तुंग शिखर पर मेरी शीतलता का अनुभव करो। सहस्रों सूर्यों का समवेत ताप मेरा ही ताप है... जीवन और मृत्यु मेरा ही विवर्तन है"। प्रकृति की सजीवता, मोहकता, मनोरमता ही यथार्थ बन गया। जिससे कहानी में अस्तित्व और अस्मिता की पहचान संरक्षित है। कथाकार ने अपनी कहानी में मन की परतों को सामाजिक दर्पण के सामने खोलकर रख दिया है, मानो वह अभिव्यक्ति सत्यता का प्रमाण-पत्र दे रही हो।

धर्म-कर्म के संरक्षक प्रहरी, शिक्षा के पुजारी
आदरणीय श्री सुखदेव त्रिपाठी जी को सादर
सप्रेम भेंट

[illegible]
28.1.2008



यथार्थ

एक कहानी संग्रह



डॉ० मंजु द्विवेदी

YATHARTH

(Ek Kahani Sangrah)

by

Dr. Manju Dwivedi

ISBN No. 978-81-909935-5-5

प्रथम संस्करण 2013 ई.

मूल्य : तीन सौ रुपये (Rs. 300.00)

प्रकाशक

प्रकाशन विभाग

शिवप्रताप मेमोरियल फाउण्डेशन

सारनाथ, वाराणसी

मुद्रक :

दी महावीर प्रेस

भेलूपुर, वाराणसी

समर्पण

काशी की वह मोहक बाला
जिसका सदन था आश्रम अपाला
जिसके वाणी में था अमृत रस का प्याला
व्यक्तित्व था उनका अद्‌भुत निराला
वह दीदी थी सबकी मोहक वीरबाला

वीरबाला वर्मा दीदी
की स्मृति में
मेरी तृतीय रचना

—डॉ० मंजु द्विवेदी

आमुख

आज मेरी पुस्तक कहानी संग्रह "यथार्थ" पूर्णता प्राप्त की है परन्तु कमोवेश प्रकाशन की अवधि में कुछ औपचारिकताओं को पूरा करना कथाकार की बाध्यता है। मैं कविता लिखते-लिखते कहानी विधा के तरफ कब अग्रसर हुयी, मुझे खुद भी आभास नहीं हो पाया। साहित्यिक विधा की गूढ़ता में पारंगत न होते हुए भी कहानी की सूक्ष्मता, कहने सुनने के मनोविज्ञान परम्परा का निर्वाह किया है। कहानी विधा की परम्परा मनुष्य के जन्म से ही मानी जाती है। पहले इसे गल्प के रूप में जाना जाता था और आज वह सबके रग-रग में रची वशी है। सच तो यह है कि भावों का उद्वेलन, आलोड़न, अनुभवों, दर्दों, एहसासों को पन्नों पर उकेर देना या समभाव से अपनी बात कहते जाना एक कहानी बन जाती है। ठीक वैसा ही मेरे साथ भी हुआ। मेरी कल्पना ने मेरे दिमाग में चल रहे भावनात्मक आरोह-अवरोहों को जब एक रूपता प्रदान की तो आम बोलचाल की भाषा में वह कहानी जान पड़ी। मैंने कहानी की परिभाषा पढ़ी थी कि "उपन्यास में पात्र और कथानक भिन्न-भिन्न हुआ करते हैं, परन्तु कहानी के लिए पात्र, कथानक-कथ्य-शिल्प-वातावरण कम से कम हो तो कहानी ओजपूर्ण होती है।" मेरा भी अनुरागी मन अपने स्वप्न और सच के संभावित पक्ष को आम करने की इच्छा को पूरित किया है। स्वयं या समाज की सोची-समझी, देखी-परखी सच्ची घटनाओं का उल्लेख किया है यही सच है? बिना किसी संकोच के। मेरी कहानी के पात्र मेरे नजदीकी रिश्तेदार, मित्र या पास-पड़ोस के लोग बाग है। उनकी अनुभूति, सोच, जीवन जीने की शैली एवं कला, समाज में प्रचलित बुराई, लुप्त प्राय होती परम्पराएं एवं प्रेम की गहराई को सामान्य, सहज, सरल शब्दों में अभिव्यक्त किया है। मैं मन्नू भंडारी की कहानियों की मुरीद हूँ, उनके बड़े फलक कहानी कायनात के नीचे अपने को पलते बढ़ते पाया है। बचपन से ही मैं उनके उपन्यास एवं कहानियाँ पढ़ती रही हूँ। काफी पहले उनके उपन्यास और कहानियां साप्ताहिक हिन्दुस्तान में धारावाहिक छपा करते थे पिता जी सारे पेपर मंगवाते और पढ़ते थे परन्तु मैं

उनमें से साप्ताहिक हिन्दुस्तान लेकर बैठ जाती थी, जब तक सारी कहानियां पढ़ नहीं लेती थी मुझे चैन नहीं आता था। कहानियों की सच्ची तस्वीर मेरे मन पर अमिट प्रभाव छोड़ी। एक दिन अचानक कुछ घटनाओं की रील मेरे दिमाग में चलने लगी तथा भूली-बिसरी यादों ने लेखनी का सहारा ले लिया। अति संवेदनशील हूँ, इसी वजह से समय, समाज, संस्कृति, परम्परा से जुड़े विषयों पर बेबाकी से अपनी बात कहना मेरी आदत में शुमार हैं। मेरी कहानियों में प्रेमानुभूति की दोनों अवस्था (संयोग-वियोग) की अभिव्यंजना है। अपितु कहानी के गल्प विधा को आगे बढ़ाकर यथार्थ की पृष्ठ भूमि पर ला खड़ा किया है जो मानवीय सम्बन्धों, सहचर के मिलने और बिछुड़ने का दंश, भावनाओं की प्रतिबद्धता, प्राकृतिक सुषमा का सूक्ष्म काल्पनिक वर्णन, जीवन शैली में मानवीय मूल्यों की गिरावट का लेखा-जोखा, आज के वैज्ञानिक पुरोधाओं की मनोदशा जो प्रेम को दर्शन समझते हैं। ऐसे भावों एवं विचारों से ओत प्रोत है। विज्ञान के युग में आज की युवा पीढ़ी इतनी प्रेक्टिकल हो गयी है कि उसे किसी के भावनाओं-संवेदनाओं, संस्कारों से कोई सरोकार नहीं है वह सम्बन्धों में भी प्रयोग करती है सिर्फ कम्प्यूटर, इंटरनेट, फेसबुक तक सिमट कर रह गयी है। सच तो यह है कि एक छत के नीचे रहने वाले लोग एक दूसरे से बातचीत नहीं कर पाते और अपनों से कटकर बिल्कुल निरावन अकेले रहने के आदी हो चुके हैं। उन्हें सिर्फ फेसबुक के माध्यम से दुनिया भर में मित्रों की खोज है। पश्चिमी सभ्यता की चादर ओढ़ने में मसगुल आज का सभ्य समाज अपनी हजारों वर्ष पुरानी संस्कारों की गठरियों का बोझ ढोते-ढोते मानों थक सा गया है और उसे हजारों फीट गहरी खाई में फेंक देने को आतुर है ऐसा जान पड़ता है यही मेरा दर्द है और मेरी सभी कहानियां इसी दर्द की दास्तान सुनाती है। मुझे कहने में कोई हिचक नहीं है कि अब लोगों को जीवन का अधूरापन खलता नहीं है। भागती दौड़ती जिन्दगी में भौतिकता की तलाश करता मन बहुत कुछ पा लेने की ललक, ऊँचाइयों पर पहुँचने का संजाल-संत्रास झेलता मन, एकाकी जीवन शैली, उसके बावजूद सधे हुये अंदाज में अंग्रेजियत से सराबोर एक दूसरे का अभिवादन करना नहीं भूलते। पहले हम सबमें जीते हैं या सभी मेरे में जीते हैं। आज ऐसा देखने को नहीं मिलता। इसी कशमकस में जीती हुयी जिन्दगी को मैंने कई पायदानों से गुजारा या गुजर गयी ...... भावनापरक जो मेरी छोटी बड़ी कहानियां है उन्हें पढ़कर पाठक क्षण भर अपने आप से तादात्म स्थापित कर लेगा वही मेरे लिए गौरव की बात होगी।

इससे मेरा लेखन पुष्ट होगा। अगर ऐसा नहीं हुआ तो मुझे क्षमा कीजिएगा केवल मेरी कल्पना की दुनिया में एक नाम अपना जोड़कर मेरी भावनाओं को संबल प्रदान कीजिएगा। ''यथार्थ'' कहानी संग्रह में कथा वस्तु, बिम्ब, शिल्प और भाषा विज्ञान का प्रयोग उक्त विधा की दृष्टि से सटीक है। कहानी विधा की कसौटी पर कसने की मैंने पूरी कोशिश की है परन्तु पूर्णतः खरी न ऊतरूँ तो भी भावनाओं, कल्पनाओं, प्रतीकों, परम्पराओं, आदर्शों का चित्रण समकालीन है। आज के बदलते परिवेश में आमजन किताबों से दूर इंटरनेट की खबरों तक सिमट कर रह गया है। इस संक्रमण काल में कहानी संग्रह के प्रकाशन से मैं बहुत खुश हूँ। लेखन सुःखद हो तो अनुभूतियाँ नित नवीन कलेवर बदलेंगी और पुनः एक विधा जन्म लेगी। मैं अपना भोगा-झेला सत्य निष्कपटता के साथ पाठक के सामने रख स्वप्न को सच के धरातल पर प्रतिपादित किया है जो मन को कभी उद्वेलित करेगा, कभी झकझोरेगा, कभी गुदगुदायेगा।

कहानी में वर्णित एक अनुपमेय कथ्य आपको शिद्दत से सुना रही हूँ .... ''सृजन एक अनवरत प्रक्रिया हैं, इस यात्रा में अनन्त संभावनाओं की खोज, पूर्णता का प्रस्फुटन हैं, जो रचनात्मकता की भूख को तृप्त करता है। हम सृजन के बीज को बिम्बों में नहीं बांध सकते, उसका पर नहीं काट सकते, कल्पना की उड़ान को नहीं रोक सकते क्योंकि कल्पना यथार्थ की विरोधी नहीं बल्कि उसका विस्तार है। .... क्योंकि कल्पना परक मन सपनें न बुना होता तो आज हवाई जहाज का आविष्कार नहीं होता।'' यही स्वप्न जीवन में नवीनता का संचरण करता है जो आज का सच यानी यथार्थ है। यही विश्वास ''यथार्थ'' कहानी संग्रह का प्रकाशन करा रहा है ताकि साहित्य में सशक्त कहानी विधा की कला मनोविज्ञान के अणुता-सूक्ष्मता का भान पाठक को अनायास ही सहज, सरल शब्दों की अभिव्यक्ति के माध्यम से हो सके। इसका सारा श्रेय मेरे परम पूज्य प्रातः स्मरणीय गुरु श्री-श्री 108 महामण्डलेश्वर भवानी नन्दनयति जी महाराज को जाता है। साथ ही मेरे निर्देशक प्रो. एवं आचार्य ब्रज विलास श्रीवास्तव प्रख्यात समीक्षक, साहित्यिक पुरोधा के निर्देशन में मेरा लेखन पूर्णता को प्राप्त हुआ है मैं उनकी ऋणी हूँ। इसी क्रम में मेरे पूर्व विभागाध्यक्ष प्रो. हरि बहादुर श्रीवास्तव एवं प्रो. वन्दना श्रीवास्तव ने भी लेखन विधा की ओजपूर्ण शैली और समसामयिक विषयों पर अपने अनुभवों एवं सुझावों से मुझे अवगत कराते रहे। इतना ही नहीं सृजन के मूल में उनके ही कथ्य हैं। विशेष रूप से मैं उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ। प्रो.

मल्लिकार्जुन जोशी साहित्यिक कला के मर्मज्ञ, बिम्ब विधान के ज्ञाता, उपमा उपमेय से सम्पृक्त ओजस्वी व्यक्तित्व के धनी, उच्च कुलीन परम्परा के विस्तारक विद्वान के पाण्डित्य का लाभ मुझे हर क्षण मिलता रहा एवं डॉ. शोभना जोशी जी का स्नेह भरा साहित्यिक मीमांसा, सृजन शीलता का सम्पुट धारा प्रवाह विमर्श मेरे लेखन में सहायक सिद्ध हुआ। मैं उनके प्रति आभारी हूँ। अपने जनकद्वय वात्सल्यमयी माँ के दुलार एवं आशीर्वाद की अधिकारिणी हूँ जिसके फलस्वरूप यह दुरुह कार्य पूर्णता को प्राप्त हुआ है। मेरे अनुज डॉ. शशिकान्त पाण्डेय का अजस्र स्नेह मुझे पोषित पल्लवित करता है उसे मेरा कोटिशः आशीर्वाद। भाभी श्रीमती ममता पाण्डेय, प्रखर मेधा का धनी भतीजा सार्थक पाण्डेय एवं आदित्य पाण्डेय का बहुत स्नेह है। विजय श्री की उपादेयता का क्या बखान करूँ। उनका अतिशय स्नेह है। प्रो. हरीश्वर दीक्षित, डॉ. जे.एस. त्रिपाठी, डॉ. योगेन्द्र प्रताप सिंह, डॉ. जगद्वात्री सिंह, डॉ. मंजुलता त्रिपाठी, डॉ. पुष्पा दीक्षित, प्रो. संगीता गहलोत, डॉ. विपाशा गोस्वामी, डॉ. पवित्रा शर्मा एवं रीता कुमार का विशेष सहयोग है। संग्रह के टंकण कर्त्ता श्री ओम प्रकाश श्रीवास्तव के सहयोग बिना यह कार्य सुचारू रूप से नहीं हो पाता उसके लिए मेरी ढेर सारी शुभ कामनाएं। ममता चतुर्वेदी ने भी टंकण में सहयोग किया। उन्हें बहुत-बहुत धन्यवाद साथ ही शेखर मगन, बेचन सिंह, अनिल सिंह, राजेश यादव एवं अन्यान्य सहयोगियों, स्नेहियों के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ जो समय-समय पर अपने भावनाओं, विचारों और सम-सामयिक उद्धहरणों से अवगत कराते रहे कि आज की आपाधापी भरी जिन्दगी में आपकी कहानियां संदेशपरक संवेदनात्मक मोहकता लिए हुए है। यही मेरा उद्देश्य था कि मैं अपनी व्यथा-कथा सधे अंदाज में पाठकों तक पहुँचा पाऊँ जिससे लुप्त प्राय संस्कृति, संरक्षा, पत्र व्यवहार, भावनात्मक प्रेम की पराकाष्ठा का प्रस्फुटन, नया विहान, नया कलरव, नव यौवना के लिए ओंस की बूँदे प्रकृति की अनुपम छटा में खोया मानव मन बिंदास जीवन की सम्पूर्णता का आभास करे कि मेरा जीवन सपाट समतल मैदान है परन्तु कहीं-कहीं गहरी खाई भी है। अपितु उसमें घनें जंगलों, ऊँचे-ऊँचे पर्वतों, उफनती हुयी नदियों, विशाल नालों, गहरी घाटियों और खंडहरों का कोई स्थान नहीं है।

रक्षाबन्धन
(श्रावणी पूर्णिमा)
21/8/2013

डॉ0 मंजु द्विवेदी

"यथार्थ" कहानी संग्रह पढ़कर....

आधुनिक कहानी का आरम्भ यूरोप के लेखकों द्वारा 19 वीं शती में हुआ जिसमें ई.टी.डब्ल्यू. हाफमैन, जैकब और विलहेल्फ प्रमुख थे। इन लेखकों ने परियों और पुराणों पर कहानियां लिखी परन्तु कहानियों की विकास यात्रा चेखव और हेनरी से शुरू होती है जो अंग्रेजी और बंगला कहानियों को बीसवीं शताब्दी में हिन्दी में लिखा और पहली कहानी "रानी केतकी की कहानी" हैं जो सन् 1803 में लिखी गयी। जैसे राजा भोज का सपना, इन्दुमति, गुल बहार, दुलाई वाली आदि। प्रारम्भिक कहानियों पर बंगला का प्रभाव स्पष्ट दिखता है। हिन्दी कहानी के प्रथम युग में जयशंकर प्रसाद, प्रेमचन्द, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी प्रमुख कहानीकार थे और प्रेमचन्द द्वारा लिखी कहानियाँ 300 से अधिक है। जिसमें जीवन की सामान्य परिस्थितियों, मनोवृत्तियों एवं समस्याओं का चित्रण है।

हिन्दी कहानी का दूसरा युग जैनेन्द्र के आगमन से माना जाता है। ये अपने कहानी में स्थूल से हटकर सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि, संवेदनशीलता और दार्शनिक गहराई प्रदान की और धीरे-धीरे इसी प्रवर्तित मनोवैज्ञानिक परम्परा का विकास हुआ तथा कहानी के इस परम्परा में महिला लेखिकाओं ने कम योगदान नहीं किया है, जैसे सुभद्रा कुमारी चौहान, उमा नेहरू, चन्द्रकिरण सौनरिक्सा आदि। सन् 1950 के आस-पास कहानी में अति यथार्थवादी प्रवृत्तियों का प्रस्फुटन हुआ। जो लेखक कुछ समय पहले प्रगतिशीलता का बखान करता नजर आता था वह दूसरे क्षण, प्रतिक्रियावादी साहित्य रचने में रत दिखा, जैसे-राजेन्द्र यादव (एक पुरुष-एक नारी) मोहन राकेश, कमलेश्वर, अमरकान्त, हिमांशु जोशी, कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी, प्रियम्बदा, धर्मवीर भारती, निर्मल वर्मा, रमेश वक्षी, शैलेश मटियानी, मेहरुन्निशा परवेज आदि। अस्तु अब तक के कहानियों पर दृष्टिपात करते हुए ऐसा लग रहा है कि कहानी के क्षेत्र में प्रतिभावों का अभाव नहीं है परन्तु उपन्यास की भाँति कहानी का क्षेत्र

भी सीमित होता जा रहा है। विषय वस्तु की दृष्टि से नयी कहानी केवल कथाकार के जीवन शैली, जीवन दर्शन का प्रतिनिधित्व करती हैं। जिनका जीवन घर के बन्द दरवाजों, स्कूल-कॉलेज की चहारदीवारियों, शहर की गलियों, चौबारों, मदिरालयों और कॉफी हाउसों तक सीमित रहा है। ऐसी स्थिति में गम्भीर चिन्तन, अनुभूति परक सोच, कहानी के व्यापक फलक का अनुभव एवं आत्मान्वेषण की आशा करना व्यर्थ सा लग रहा था। संयोगवशात् उसी काल में प्रगतिशील कहानियां अपनी आभा बिखेर रही थी तथा मानवीय मूल्यों को अपने सहज, सरल, भाषा शैली में परिभाषित कर रही थी। उसी कड़ी में एक नवोदित कथाकार डॉ. मंजु द्विवेदी का ''यथार्थ'' कहानी संग्रह की पाण्डुलिपि पढ़ने को मिली जिसमें स्वच्छन्द और निर्बाध अभिव्यक्ति को विशेष महत्व दिया गया है। सरल उपमाओं के आधार पर स्पष्ट बिम्ब विधान एवं सरल प्रतीकों, प्रचलित वाक्य विन्यास को बढ़ावा दिया गया है। मंजु जी की कहानी में विलुप्त होती हुयी मानवीय संवेदनाओं, पत्राचार की लुप्तप्राय होती विधा, प्रेमानुभूति, प्रेम और सौन्दर्य की पराकाष्ठा, आधुनिकता, नूतनता, कलात्मकता, अतिशय संवेदना, आधुनिक बोधगम्यता, लुभावनें विश्लेषणों के अधिकाधिक प्रयोग से ये कहानियां ओजपूर्ण गाम्भीर्य से पूरित है। ओजस्विता का समावेश आपको इन कहानियों में दिख जायेगा– धनवाँ, मृत्यु का उत्सव, परिष्कार, करवाचौथ, सदमा, नववर्ष पर स्नेह भार आदि। कहानी कला की दृष्टि ये कहानियाँ खरी न उतरें परन्तु लेखिका अति गहन चिन्तनशील, अति-संवेदनशील अपने जीवन की खुशियों की समिधा डालते हुए हर क्षण हंसते मुस्कुराते परहित के खातिर अपनी अस्मिता और मानवीयता को बरकरार रखते हुये छोटे-बड़े कर्तव्यों की प्रतिबद्धता के साथ जीती रहीं हैं। मुझे पूर्ण विश्वास है कि डॉ. मंजु द्विवेदी आगे चलकर एक सधी कथाकार के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त करेंगी। आभार एवं शुभेच्छाओं के साथ ढेर सारी शुभकामनाएं।

कुसुम गुप्ता
बी.ई., सिविल (आई.आई.टी. रुड़की)
एम.एस. (UCLA-USA)
निदेशक,
वोकेशनल ट्रेनिंग इन्स्टीट्यूट फार वोमेन
गुड़गांव-हरियाणा

अनुक्रम



यथार्थ

नारी शक्ति की उपासना ब्रह्मा विष्णु महेश सभी ने की। उन्हें भी अपने स्व सत्ता के रक्षार्थ शक्ति की ही पूजा करनी पड़ी, ताकि उर्जा का क्षरण न हो और वे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड पर एक छत्र राज्य कर सकें। प्रलय के बाद मनु और श्रद्धा सृष्टि सृजन के कर्ता बनें उसी क्षण बुद्धि की प्रतीक "इड़ा" की उपज इसलिए हुयी कि सृष्टि की उपादेयता में कोई त्रुटी न रह जाय। इड़ा का प्रस्फुटन नारी शक्ति का द्योतक है। यह सर्व विदित है कि शिव और शक्ति की आराधना ही जीवन सुःख की अन्तिम परिणति है। जैसे दर्पण में हम अपने को देख पाते हैं, वैसे निर्मल बुद्धि में आत्मा का दर्शन होता है। जैसा स्वप्नलोक में वैसा पितृलोक में, जैसा मृत्युलोक में वैसा गन्धर्वलोक में छाया और प्रकाश के समान यह जीवन कर्मफल के उपभोग में आसक्त रहता है, और बुद्धि से साध्य होने के कारण वह मनुष्यता में ही आत्म दर्शन करता है, इन्द्रियों के उदयास्तमय उत्पत्ति और प्रलय को जानकर अथवा विवेक पूर्वक समझकर धीर-गम्भीर बुद्धिमान पुरुष शोक नहीं करता अर्थात् आत्मज्ञानी शोक को पार कर जाता है या यूँ कह लिजिए जिस समय पांचों ज्ञानेन्द्रियां मन के सहित आत्मा में स्थित हो जाती है और बुद्धि चेष्टा नहीं करती उस अवस्था को परमगति कहते हैं वैसे कुछ लोग आत्मा को मानते हैं कुछ नहीं मानते है और कोई चलरूप, स्थिररूप, उभयरूप, अभावरूप से आत्मा को आच्छादित करने की बहुत बड़ी भूल की है। अतः स्वभाव से मूर्खों और अज्ञानियों की कमी नहीं है वे कब किसको किस उपाधि से नवाजेंगे इसकी कल्पना नहीं की जा सकती है। यद्यपि तुम्हें कोई विषमता नहीं दिखती है क्या मधु? अरे मानसी चौतरफा विसंगतियां ही तो है और ऐसी है मानो जहां श्रोता हैं वहां वक्ता नहीं होते या कहीं वक्ता है श्रोता नहीं, या एक पक्ष में श्रोता वक्ता दोनों है, दूसरे पक्ष में न श्रोता है न वक्ता है। अगर ऐसा है तो इसमें हानि ही क्या है मानसी? इससे

तो मेरी ही हानि हुयी है मधु! मेरी पीड़ा ही वह विसंगति है जिसके कारण मैं किसी सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं कर पायी। यह कहते हुए मै अन्मनस्क सी हो गयी। मधु मेरी मित्र है, संवेदनशील है, हम दोनों एक दूसरे को बखूबी जानते हैं? उसने कहा चलो घूमने चलते हैं मौसम हमारे साथ है, साथ ही विशेष पर्व आज शिवरात्रि है-हम दोनो निकल पड़े शहर की ओर................देखा शिव मंदिरों में दर्शन करने हेतु कतारबद्ध लोग आध्यात्म से सराबोर हर-हर महादेव के नारे लगा रहे थे, भाव एवं भक्ति का अनुपम दृश्य था, मानो ऐसा लग रहा था जैसे श्रद्धा एवं विश्वास की पौराणिक कथा जनमानस को प्रेम का सन्देश दे रही हो। मधु ने मानसी से कहा देखो यह एक ऐसी शिव और शिवा की प्रेम गाथा है जो हर एक के जीवन से जुड़ती है। खासतौर से स्त्री के लिए यह प्रसंग सिर्फ एहसास नहीं उसके लिए सम्पूर्ण जीवन है। मानसी ने पूछा क्या? तुमने इस अनुभूति को जिया-भोगा है । मधु ने कहा मेरी बात मत सुनो मानसी दुःखी हो जाओगी? "प्रेम विहीन जीवन स्त्रियों को कितना थका देता है" इसका वर्णन मैं नहीं कर सकती चलो कुछ नया करें नया सोचें विगत वर्तमान को भी नहीं जीने देता.......... परन्तु मानसी मधु की वह लाइन भूल नहीं पा रही थी जो उसने अभी-अभी कही थी। प्रेम और स्त्री? क्रमशः मानसी को सब कुछ याद आ गया और वह बिना कुछ सोचे! अपनी बातें मधु को बताने लगी! मधु जीवन में मेरे एक दिन ऐसा भी आयेगा जो नई रोशनी देगा मैंने ऐसा सोचा ही नहीं था कभी-कभी जीवन में एक टर्निंग प्वांइट आता ही है। जहाँ से जीवन शैली बदल जाती है। सुनो? यह घटना कल्पना के सच का यथार्थ है। आत्मीयता से लबालब भरा वाक्य कानों में गूंजा मानसी मैं घर में अकेले हूँ , चली आओ स्नेहिल शब्दों से ओतप्रोत वाक्य सुनकर मेरे कदम अपने आप बढ़ते गये ह्वदय ने स्वीकारा कोई चुपके से मेरी प्रतीक्षा कर रहा है, और यही सच था? मैंने जैसे ही कालबेल बजायी लगा दरवाजा खुला ही था और मानस अपने दोनों हाथ फैलाए मेरे सामने खड़े थे? मैं भी भावविह्वल होकर स्नेह के अंक में समा गयी। फिर क्या था दोनों ने एक दूसरे में समा जाने का सांकेतिक भाषा में उत्सर्ग दिखाया रंच मात्र भी दिग्भ्रम की स्थिति नहीं थी, परन्तु मन बार-बार उद्वेलित हो रहा था उसका भी कारण स्पष्ट था कही? मानस मेरी परीक्षा तो नहीं ले रहे हैं। फिर भी उनका इंतजार वर्षो से कर रही थी,

आज वही बेसब्री वही उत्सुकता थी .... मानस के जिन्दादिली का अपना नजरिया .... वैसे मानस बहुत तीक्ष्ण बुद्धि, परिपक्व, सामाजिक दायरों में बंधे एक संयमशाली व्यक्तित्व के धनी हैं। फिर भी उन्होंने मेरी परीक्षा लेनी चाही पता नहीं क्यों? अनुत्तरित प्रश्न है। सबके बाद भी उनके मन में मेरे प्रति इतना स्नेह क्यों है? वह हर पल मुझे खुश देखना चाहते हैं। बदले में कोई अपेक्षा नहीं है। उन्हें क्या पता? मानस मेरी कल्पना के प्रतीक पुरुष हैं। मैं जीवन के उधेड़-बुन में फँसी जैसे तैसे विगत की जिन्दगी को भूलकर बीती यादों की चादर मानों गंगा में बहाकर पुनः एँकाकी जीवन जीने के लिए अभिशप्त हो गयी थी- क्योंकि सामाजिक मान्यताओं की चादर ओढ़ना मेरा अपना निर्णय था इसी कारण अनेकानेक झंझावातों से खेलना मेरी आदत सी बन गयी थी जैसे वह मेरे जिन्दगी का हिस्सा बन गई हो। समतल तो नहीं ऊबड़-खाबड़ भूमि पर चलते-चलते अभी वर्ष मास और दिन गुजरे ही थे कि एक दिन मानस से मुलाकात हो गयी एक दूसरे को क्षण भर जी भरके देखे भी नहीं थे कि उन्होने पूछा कैसी हो? कहाँ जा रही हो मैंने कहा हास्पिटल जा रही हूँ कहते हुए निकल गयी ....

संयोगवशात् दूसरे दिन हम दोनों शहर के चौराहे पर मिले स्वभावतः वह करीब आकर पूछे क्या हुआ था हास्पिटल गयी थी, मेरा संक्षिप्त सा उत्तर था मां बीमार हैं। उसने कहा पैसे हैं तुम्हारे पास मैंने हां में सिर हिला दिया बात आई गई हो गयी। अधिकतर हम दोनों जब कहीं एक दूसरे से मिलते थे औपचारिकतावश हाल चाल पूछ ही लेते थे। सुदीर्घ अन्तराल के क्षण बड़े कष्टप्रद थे। हम दोनों पुनः मिले, बड़ी आत्मीयता से मेरा मन सिहर उठा अपना स्वर्णिम क्षण खोने के बाद अब उनकी आत्मीयता में मैं खोना नहीं चाहती थी, लेकिन इंतजार जब लम्बा हो जाता है तो पुरानी स्मृतियां पुर्नजीवन पाती हैं। मुझे तो आत्मबोध हो चुका था प्रेम के वेग का, पर मानस बिल्कुल अनभिज्ञ निष्कपट निश्छल स्नेह से सराबोर थे। मधु तुम गलत मत समझना - "प्रेम न उद्दाम वेग है, न आत्म विस्मृति का चरम क्षण, मेरा प्रेम तो? थककर चूर निःस्पन्द बड़ी अनुकम्पा व अथक परिश्रम और विकलता से माथे पर उभरी श्वेत बूंदों से शीतल ऊँगलियों का छुअन है प्रेम"। या उसे ऐसे समझ लो "ठिठुरती ठंड में जलती हुयी आग को तापने की ललक में प्रतीक्षारत दृष्टि है

प्रेम''। एक दिन स्त्री मन ही तो? अपने आप से अस्मिता की तलाश में कहीं बेबाक, कहीं कोमल प्रसंग में उलझी थी, उसी क्षण मानस अप्रत्याशित रूप से मेरे सामने खड़े थे, मैं उनसे स्व प्रसंग में राय मांगी, उन्होंने कहा सेल्फमेड हो खुद निर्णय लो आगे जो कुछ होगा ''मैं हूँ न''। उनका यह वाक्य मन को छू गया हृदय ने स्वीकार किया मेरे निमित्त ईश्वर ने मानस को माध्यम बनाया होगा? फिर क्या था मैं निडर भाव से परिस्थिति जन्य निर्णय लेने लगी मूल रूप से आत्मबल और ज्यादा बढ़ गया। मेरे मन में अपने स्वभाव के अनुकूल परिवर्तन आया और मानस का अपना स्वभाव ''स्वभाव उसी को कहते हैं जो किसी भी परिस्थिति में न बदले''—जैसे-चन्दन का स्वभाव है सुगन्ध चाहे उसे सूंघो, चाहे घिसो, चाहे अग्नि में जलाओ, चाहे टुकड़े-टुकड़े कर डालो वह सुगन्ध देगा ही। चन्दन तो अपने पेड़ को काटने वाली कुल्हाड़ी को भी सुगन्धित कर देता है, वैसे ही पुरुष का स्वभाव है सुगन्ध देना''। बिल्कुल मानस परा-अपरा शक्ति के मूल भाव से ओतप्रोत है। दया, करूणा, क्षमा, शील, प्रेम, भाईचारा मानस का विशेष गुण है, मुझसे आत्मीयता का यह भी एक कारण था। क्रमशः घनिष्टता बढ़ती गयी तो वह और तरस खा गया होगा कि एक अकेले नारी का संत्रास क्या होता है? प्रभा खेतान के स्त्री उपेक्षिता का अंश मात्र तो नहीं है मानस ने शायद सिमोन द बोऊआर की 'द सेकेण्ड सेक्स' का अध्ययन किया होगा ताकि उसके भावों-विचारों में नारी का एक रूप परिलक्षित होता है। वह नारी मन का बड़ा सानी है। उसे रंच मात्र उपेक्षित नहीं कर सकता अपितु उसे भावों के अंक में भर लेने मात्र से रोमांचित हो जाया करता है तथा उसकी महत्ता अपने से कई गुना ज्यादा समझता है। अरे! मधु मैंने तो मानस के प्रतिबिम्ब से तुम्हें साक्षात्कार करा दिया, और तुमने कोई खण्डन नहीं किया, मधु ने कहा मानसी अभी परिभाषा पूरी कहाँ हुयी, अभी तो दैविक गुणों को सुनाया दैहिक तो सुनाओ? अरे हाँ उनकी अपनी गृहस्थी है, भरा-पूरा परिवार सम्मानित पद पर आसीन मानस अपने जीवन शैली से पूर्ण संतुष्ट भौतिकता के बादशाह हैं। उन्हें किसी जमानी आस्था से कोई सरोकार नहीं है। परन्तु मेरा मन उनके ही इर्द-गिर्द घूमता नजर आता है। मैं अपने को बहुत जब्त करती रही जुबान खोलने की हिम्मत नहीं की क्योंकि दिल की बात जुबान पर आ जाती है तो वह परायी हो जाती है, यह भय था मुझे।

बावजूद इसके हम दोनों में घनिष्टता बढ़ती जा रही थी। संयोगवशात् एक शहर में होने के नाते हम दोनों किसी न किसी बहाने मिलते और समसामयिक विषयों पर रोज ही विचार विमर्श करते। जाने-अनजाने मिलने जुलने का तारतम्य बना ही रहता था। अक्सरतः मैं अपनी विगत की बातें मानस से बांट लेती थी और वह एक आह भरकर मुझे संबल प्रदान करते थे। एक दिन अचानक कहा आज मेरे घर चलोगी, मैंने हाँ में सिर हिला दिया, यह कठिन परीक्षा थी मेरी, मैं दूरी तय करना चाहती थी और वह भावनाओं से अनभिज्ञ नजदीकियां बढ़ा रहे थे किसी कारण वश नहीं यूँ-ही मेरी ढेर सारी बातें सुनने के लिए खैर............. मैं घर गयी मेरा परिचय बड़े ही अपनत्व भाव से अपनी डॉ0 पत्नी से कराया मैंने देखा बड़ी निश्छल सुन्दर सी भावभंगिमा वाली जीवन संगिनी का साथ है। अतिशय सुन्दर प्यारे से दो बच्चे उनके हृदय के टुकड़े हैं। विलक्षणता से सम्पूरित स्व में खुश मानस का अपना पूरा परिवार है। मैं खड़ी-खड़ी अपने को संयत की और भाभीजी सम्बोधन से नमस्ते कर बैठ गयी। पारिवारिक भाव प्रवणता एवं मनस्विता के फलस्वरूप धीरे-धीरे मैं उनके परिवार का हिस्सा बन गयी, रोजमर्रा के दिनचर्या में वह शामिल सा हो गया। मैं भी निश्चिन्त हो गयी अच्छा हुआ अब मानस के रिश्ते को मैं बिना बोले भी निभा पाऊँगी, यह मेरा निर्णय था। अचानक एक दिन बड़े भावुक होकर मानस ने कहा आजकल मुझे तुम्हारी कुछ ज्यादा ही याद आती है, एक दिन नहीं मिलती हो तो लगता है कई दिन से नहीं मिली हो। मैं सुनकर मन ही मन खुश हुयी अच्छा हुआ जो बात मेरे मन में कब से जनम ले चुकी थी उसको मानस अमली-जामा पहनाने का जिम्मा अपने ऊपर ले लिये। अब क्या था अन्तर्मन में एक दूसरे की तड़प लिए चुपचाप विषयगत चर्चा में मसगुल मानस ने कहा तुम अपनी क्षमता का उपयोग लेखन में करो कुछ लिखो, मैंने कहा जरूर लिखेंगे और मैंने लिखना शुरू कर दिया वह बहुत खुश थे। हम लोग अकेले कभी नहीं मिलते हैं, काश एक दिन वह समय आ गया वे मेरे कंधे पर हाथ रखकर बोले अब मैं खुश हूँ, तुमने मेरी बात मान ली, मैंने तपाक उत्तर दिया तुम मेरी बात कब मानोगे, उनका उत्तर था जब तुम कहो, लेकिन एक बात ध्यान में रखना मैं कभी अपने परिवार से विलग नहीं हो सकता, और किसी भी दायित्वों से समझौता नहीं कर सकता। मेरा परिवार मेरे जीवन का

मूल उद्देश्य हैं। मैं विचार को प्राथमिकता देता हूँ भाव की पूजा करता हूँ फिलहाल मुझे जो अच्छा लगता है वही करता हूँ- तुम भी सुन लो? "जिस हृदय में विचार और विवेक का दीपक जलता हो वह हृदय मंदिर के समान है। विचार शून्य व्यक्ति उचित-अनुचित-हित-अहित का ध्यान नहीं रखता है। ऐसे व्यक्ति को ब्रह्मा भी सुखी नहीं कर सकते। विचार का अर्थ सिर्फ सोचना नहीं मन और संस्कारों को प्रभावित करना भी है। विचार पूर्व रूप है तो भावना उत्तर रूप है। जीवन निर्माण में विचार-चिन्तन और भावना का समीकरण हो जाय मानसी तो हम अभ्युथान के पथ प्रर्दशक बन जाय"। तुम साथ दोगी न? उन्हें डर रहा होगा कहीं मैं अनर्गल प्रलाप न कर बैठूँ नारी जो ठहरी। पुरुष प्रधान समाज में नारी की परिभाषा अबला, असहाय, कुंद बुद्धि, अविवेकी व्याख्यायित कर दोयम दर्जे की मान्यता दी गयी है। लेकिन ऐसा सोचना शायद स्त्री के साथ बेमानी होगी क्योंकि भगवान ने शारीरिक रूप से नारी को पुरुष से कमजोर जरुर बनाया है परन्तु उसमें अदम्य साहस, धीरता, सृष्टि सृजन की अद्भुत क्षमता दी है। नारी अथाह सागर है उसमें विष और अमृत एक साथ रखने की दैवी क्षमता है। वह अपने गरिमामयी उपस्थिति के कारण काली, सरस्वती, लक्ष्मी स्वरूपा है। सदा पौरूष मन को सीचनें का जिम्मा उसने स्वयं लिया है। वह सृजन एवं प्रकृति की सहचरी है, सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति है। वेद शास्त्रों से लेकर समकालीन दार्शनिकों एवं विचारकों ने "यत्र नारी पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता" या "नारी के सहभाग बिना हर कार्य अधूरा है" उक्ति को चरितार्थ किया है। बहरहाल समस्त सार गुण के बावजूद सारी दुनिया में नारीवाद लोगों को चौंका रहा है। स्त्री के प्रेम, द्वन्द, बौद्धिकता की खोज ज्ञान मीमांसा के संजाल में फंसी है। यही कारण रहा होगा मानस मुझसे कहीं न कहीं भयभीत थे। खैर उन्हें मैं स्त्री विमर्श में सम्मिलित नहीं कर सकती कहीं उनको मेरी बात बुरी न लग जाय पौरूष जगने में क्षण भर तो लगता है? सम्मान को ठेस पहुँच जाती है। मैंने अपने को संयत किया सिर्फ एक वाक्य में अपनी बात कह दी, अरे! मुझे लेकर इतने विकल क्यों हो? मैं अपनी सीमा रेखा में आबद्ध हूँ मानस? अनबूझ पहेली की तरह जिन्दगी बसर करने की अभ्यस्त हूँ, यह भी एक घटना है जो मेरे ही साथ घट गयी, स्त्री प्रेम की पराकाष्ठा जानते हुए भी एक स्त्री के प्रेम में ही मेरे द्वारा सेंध मारी गयी वह पात्र मैं खुद

हूँ! सोचकर मन काँप गया, परन्तु संतोष भरा जीवन जीने के लिए आध्यात्मिकता का सहारा लेना पड़ेगा अन्यथा मेरी तुम्हारी दोस्ती अभिशाप बनकर रह जायेगी जिसमें तुम कहीं दोषी नहीं हो सारा दोष मेरा है। फिर भी मैं तुम्हारे स्नेह की ओट में रहना चाहूँगी। इस विषय को न तुम समझ सकोगे न मैं तुम्हें समझा पाऊँगी तुम मेरे जीवन में इस कदर प्रवेश कर जाओगे न मैंने कल्पना की थी न तुमने, फिर भी यह एक आध्यात्मिक मिलन है यहाँ से वापस जाना दुष्कर है खैर यह मेरा निजत्व है। इस विषय में न तुम मुझसे कुछ पूछोगे न मैं तुम्हें कुछ बताऊँगी-"कहो मेरी बात मानोगे न"। मानस निर्निमेष भावपूर्ण दृष्टि से देखते रहे पुनः झटके से मुड़े चल दिये। मैं अवाक्? मानस अति संवेदनशील प्रशासनिक अधिकारी जो ठहरे, प्रति उत्तर देना उनकी शान के खिलाफ है, वे जो कर रहे थे सिर्फ मेरी खुशी के लिए अन्यथा मानस का जीवन तो खुशियों का भंडार था वे सामाजिक अनुबन्ध के अनुरूप पौरूष क्षमता, स्त्री विमर्श पारिवारिक यथार्थ परक अनुभवों को कसौटी पर खूब कसा था।

एक दिन मैं अपने आप को अकेली महसूस कर रही थी। सामने वागार्थ पड़ी थी पढ़ने लगी। एक कहानी बड़ी ही मर्मान्तक या उसे यह कह लें कि बड़ी शोकान्त थी ठीक उसी समय दूरदर्शन के चैनल पर अमृताप्रीतम का साक्षात्कार आ रहा था अमृताजी कह रही थीं "मेरे जीवन में स्त्री का कोई संत्रास नहीं है! न जीवन की कोई प्यास अधूरी है? मैंने जिन्दगी में जो चाहा वही किया जैसे चाहा वैसे जीया, जीवन के रस को जी भर के पीया"। यह वाक्य सुनकर मेरे रोंगटें खड़े हो गए। क्या? ऐसा भी होता है, दुनिया में ऐसे लोग भी हैं। मैं तो मन से जो चाह लूँ वहां विप्लव आना तय है चाह की राह में अभी भी प्यासा मन स्वाति नक्षत्र की एक बूँद की तड़प लिए आकुल है। जाने-अनजाने चाहे-अनचाहे भले ही अद्‌भुत कोई क्षण जीने के लिए मिल गया हो, जिन्दगी का अमोघ रस पीने मात्र से विगत को भुलाकर वर्तमान को जी लिया हो किन्तु भविष्य की परिकल्पना न करके निर्झर रूपी जीवन को बहती नदी के धारे में डाल दिया मैंने। पुनः एक बार विगत की यादों में खो गयी। कुछ वर्ष पहले की एक घटना मुझे अन्दर तक हिला दी थी, उससे उबरने के लिए मैंने वर्षों भटकाव में गुजार दिए निरुद्‌देश्य। जीवन भर एक ललक जीने की चाह लिए दूसरे को जीवन जीने की कला सीखाने का स्वांग

भरती रही, शायद यह मेरी छटपटाहट थी। मधु मैं अपनी यह कहानी भी तुम्हें बता ही देती हूँ। मानसी एक बारगी अपनी सारी बातें दुहराने लगती है। मधु मेरा वैवाहिक जीवन एक दुःखान्त नाटक जैसा है मुझे कुछ भी याद नहीं है। जैसे बच्चे को सोने में ही उठाकर कुछ खिला दीजिए खाकर वह पुनः सो जाता है और सुबह उठने पर उसे कुछ याद नहीं रहता बिल्कुल वैसे ही मेरी शादी हुयी थी। मुझे मालूम तब चला जब एक शादी में मैं गयी थी बड़ी भव्य बारात आयी, हाथी, घोड़े लाव लश्कर बैण्डबाजे भारतीय परम्परा का निर्वाह करते दुल्हा-दुल्हन, अप्रतिम उत्साह पुनः विदा की घड़ी आयी उस रुदन में भी प्रणय निवेदन देखने लायक था। मैंने अपने रिश्ते के भाई से पूछा मेरी तुम्हारी शादी कब होगी, उसने कहा तुम्हारी शादी हो गयी है मैं चुप! पूछा किससे हुयी है? चलो कल जब स्कूल चलेंगे तो बता देंगे किस लड़के से तेरी शादी हुयी है। वह क्षण मैं कभी नहीं भूला पाती हूँ। उन्मुक्त भाव विचार वाली लड़की चुपचाप सिर झुकाए एक कमरे में जाकर सो गयी। रात भर सोचती रही वह कौन है? जिसे मैं आजतक जानती ही नहीं, कल देखूँगी? इसी उधेड़बुन में उलझी दिन वर्षों में बीते वह घड़ी आ ही गयी, जब पता चला यही मेरे पति परमेश्वर हैं। मानो हृदय में तूफान हो, लज्जा युक्त उत्सुकता थी, कब मैं पूँछू आपको पता है मैं आपकी पत्नी हूँ? खैर समय सब कुछ अपने आप बता देता है तुम कौन हो? जब हम एक दूसरे से मिले प्रथम परिणय सान्ध्यि, उनका आगमन मन भावों से भरा था जीवनसाथी के एहसास से जीवन की गति बदल जाती है, ऐसा सोच ही रही थी तब तक एक आवाज सुनाई दी। मानसी एक बात अच्छी तरह समझ लो मेरा सब कुछ तुम्हारा है तुम इस घर में राजरानी की तरह रहो तुम्हें किसी भी तरह का कष्ट कभी नहीं मिलेगा तुम राज करो किन्तु मैं तुम्हारा नहीं हूँ मैं तुम्हें कभी छू नहीं सकता। मैं क्या बोलती यह उनका अन्तिम निर्णय था, न कोइ सवाल था न कोइ जबाब। किसी ने न कुछ जानना चाहा न मैंने बताना चाहा। मैं जगत के सामने एक सुहागन अच्छे पति की पत्नी मालकीन की हैसियत से नाटक की पात्र की तरह जीवन यापन करती रही। उन्हें भी जिन्दगी से कोई गिला-शिकवा नहीं था क्योंकि वह एक सुन्दरी बाला से प्रेम करते थे ज़गजाहिर था सिर्फ मुझे ही बाद में पता चला खैर उनकी अपनी चाह है .... अचानक एक दिन खबर लगी वे नहीं रहे। मैं निःशब्द वेदना

से द्रवित जी भर कर रो भी नहीं सकी लोग क्या सोचेंगे? उसके बाद मैं एक अबला असहाय निर्बल नारी की जिन्दगी बिताने को अभिशप्त हो गयी। मन में अनेकानेक भाव जागृत होने लगे मैं उसी प्रथा की शिकार हो गयी जो आजकल समाचार पत्रों, रेडियो, दूरदर्शन पर प्रचारित हो रहा है। बाल विवाह, दहेज प्रथा, रूढ़िवादिता यह घोर अपराध है। इस पर देशभर में चर्चा हो रही थी राजनीतिक रोटियां सेकी जा रहीं थीं। यह विचार मेरे मन और हृदय को मथ रहा था। आंखों से नींद कोसों दूर थी। थकी हारी टूटी औरत की कहानी बन गयी, महादेवी वर्मा की प्रसिद्ध पंक्ति याद आ गयी—

"विस्तृत नभ का कोई कोना
मेरा कभी न अपना होना"।

मैं नीरभरी दुःख की बदली बन अपने स्त्री जीवन के असंख्य क्लेषों का इतिहास अपनी ही जुबानी आज तुम्हें सुना रही हूँ, यह बताने में रंच मात्र संकोच नहीं रहा कि मेरी भावनाओं एवं भोगे हुए यथार्थ का आज के परिवेश में कोई स्थान नहीं है, क्योंकि व्यवस्था में स्त्री अपने देह की अधिकारिणी नहीं होती है, वह पूरी दुनिया पुरुष के आंख से देखना और भोगना चाहती है। क्योंकि उसके जन्म और मृत्यु के जितने भी आयाम हैं, केवल (हां) और (ना) के बीच जीते और भोगते दिखाई देते हैं। उसका छोटा सा उदाहरण शादी का निमंत्रण कार्ड - लड़के के नाम के आगे 'चिरंजीवी' और लड़की के नाम के आगे 'सौभाग्यकांक्षी' लिखा जाता है। उसका सम्पूर्ण जीवन सौभाग्य के साथ ही जन्म लेता है और सौभाग्य के बिना उसका मरना तय है जीती जागती लाश बन जाती है स्त्री। उसकी अस्मिता खतरे में पड़ जाती है, क्योंकि सौभाग्य और चिरंजीवी दोनों एक ही पुरुष हैं। स्त्री का अस्तित्व मात्र उसकी देह है। बात देह से शुरू होती है, देह के साथ ही समाप्त हो जाती है। मांग का सिन्दूर, पायल, बिछिया, चूड़ी, बिन्दी, पतिव्रत और पूजा अनुष्ठान में बंध कर वह समर्पित हो जाती है तथा मोह पास में अपने को बांधकर मोहाविष्ट खेल को अपना सौभाग्य मान लेती है। स्वयं से प्रशन-उत्तर के द्वन्द में उलझ कर भी स्वयं को जानने का साहस नहीं जुटा पाती है और अपने मन में बसी हजार-हजार इच्छाओं को उकेरने के लिए उद्वेलित है। स्त्री स्वयं से विमर्श भी करे तो क्या? अकेले अपने सरीखी सरंचना को जन्म दे सकती है। आखिर स्त्री के अस्तित्व का

वजूद क्या है, वह सुनसान रास्ते पर अकेले आवारा मसीहा बनकर चल सकती है? आखिर स्त्री जीवन की छटपटाहट, सामाजिक बन्धन का उत्पीड़न, रूढ़िवादिता की जकड़न, सभ्य समाज का सबसे बड़ा प्रश्नचिह्न है और इन्हीं विचारों में जन्मी नारी अपने जीवन के हर सोपान पर चढ़ती-उतरती सुबह से शाम करती है। इसी दुनिया के सुःख-दुःख और संघर्षों के विमर्श में उलझती नारी का चिन्तन भी उसकी स्वयं के पीड़ा को दर्शाता है। स्त्री होने का दंश एक अनकही कहानी के तरह है और सभ्य समाज का अपना मापदण्ड उसे अलग-अलग परिभाषाओं एवं मान्यताओं में बांध रखा है। लेखकों और विचारकों की दृष्टि में नारी विमर्श के कई उदाहरण मिलते हैं। जैसे-क्यूसीडायडोज के विचार में स्त्री "जिस प्रकार किसी सभ्य स्त्री का शरीर उसके मकान के अन्दर बंद रहता है, वैसे ही उसका नाम भी बंद रहना चाहिए"। इसी प्रकार सुकरात यह मानते थे कि "नारी सभी बुराइयों की मूल है, उसका प्यार पुरुषों की घृणा से भी अधिक भयावह है"। अरस्तू के अनुसार-"नारी की तुलना में पुरुष स्वभावतः श्रेष्ठ होता है, क्योंकि नारी इच्छाशक्ति में निर्बल, नैतिकता में शिथिल और विचार विमर्श में अपरिपक्व होती है"। मनु के अनुसार-"स्त्री के लिए पति सेवा ही गुरुकुल में वास और गृहकार्य अग्निहोम है"। पुरुष प्रधान समाज की सारी व्यवस्था उपरोक्त अवधारणा के इर्द-गिर्द चकरघिन्नी के तरह घूमती नजर आती है। इसी सोच की त्रासदी से नारी अपने को उबार नहीं पाती जिसके कारण उसका मन, हृदय आन्दोलित है। इसका प्रभाव इतना अधिक पड़ा कि वह स्वयं से अपने हृदय को पत्थर बना देती है और तयशुदा मान्यताओं की चादर ओढ़कर अपना जीवन बसर करना भाग्य की संतुष्टी मात्र है, क्योंकि पुरुष उसे हर हाल में संतुष्ट देखना चाहता है। "पीड़ा सहने का माद्दा अगर स्त्री में है तो वह सम्पूर्ण स्त्री है" सबसे दुःखद बात तो यह है कि पुरुष प्रधान समाज उसके सोच की शक्ति को कुचलकर देह से ही उसका अस्तित्व शुरू कर देह पर ही उसका इति मानता हैं। जीवन के सारे ताने बाने देह को केन्द्र में रखकर बुने गये और वह भोग्या बनकर स्वयं से भी प्रश्न पूछने में डरने लगी है। स्त्री विमर्श की चर्चा में एक समस्या स्त्री मन को कचोटती है, उसकी अस्मिता की पहचान जब भी अपने सुसुप्त चेतना को झकझोरती है तो हम सत्य को जान पाते हैं, मेहनती, कुशाग्र और ईमानदार स्त्री

के गुण कभी-कभी उसके अवगुण बन जाते हैं। सच्चाई और नैतिकता का दामन पकड़े वह जिस रास्ते पर चलना चाहती है उसमें बहुत से व्यवधान आते हैं फिर क्या है वह देह और दुनिया के सारे खेल देखकर रिश्तों को साधन नहीं साध्य मानकर अस्मिता को बचाने की छटपटाहट लिए असमंजस की स्थिति में संवेदनाओं के सहारे पुनः पुराने सम्बन्धों में अपनों को आबद्ध कर देती है। कभी स्वयं की चिन्ता, कभी बच्चों एवं परिवार की चिन्ता, समकालीन समय में जो जीवन मूल्यों में परिवर्तन आया है, वह स्त्री जीवन को ज्यादा प्रभावित किया है। मधु मैं भी मानस को जाने अनजाने कहीं ठेस पहुँचायी है तभी तो वह चुपचाप चला गया बिना बोले स्त्री मन को बिना तकलीफ दिये। मधु ने पूछा फिर कभी तुमने मानस को मनाया नहीं पत्र नहीं लिखा? नहीं! मधु? मानस अति संवेदनशील है मैं उनसे कुछ नहीं बोल पाऊँगी। वह आज के सभ्य समाज की धारणा से विरत अपने स्वविचारों के पुरोधा है। उन्हें नारी के तरक्की में ही संतोष है, वह मुझे उन ऊंचाइयों पर ले जाना चाहते है जो उत्कर्ष की पराकाष्ठा है। मेरा चरम उत्कर्ष पर पहुँचना ही उनका माधुर्य पूर्ण श्रृंगारिक प्रेम है। आज मैं उन्हें पत्र के माध्यम से जरूर बता दूंगी-मानस जो चाहते हो मैं उसके अनुरूप चलूँगी- "मानस कैसे हो? विगत की कुछ और बात थी न कभी कोई चीज बुरी लगती थी न अच्छी, सब यूं ही चल रहा था, मन की विवशता या विकलता जो भी मानों, एक बात बता दूँ मानस तुम्हें मैं अपना मानकर सोचती रही, तुम्हारा नाम समय सीमा में आबद्ध नहीं है, तुम स्वनाम से चाहे जो हो पर मेरे मन ने मानस को स्वीकार किया है तुम सिर्फ मेरे थे, मेरे हो और मेरे ही रहोगे। भूत में तुम्हारा नाम कुछ और रहा होगा जो मुझे अब याद नहीं है मैं विगत भूलकर वर्तमान में जीना चाहती हूँ जो अतिशय सौन्दर्य परक है, भविष्य मेरा सपना है, काल्पनिक सुन्दर वैविध्य पूर्ण स्वप्न जो जीवन जीने के लिए पर्याप्त है। इससे ज्यादा मेरे को क्या चाहिए? सिर्फ तुम्हारा आलम्बन। दोगे ना? मानस मैं तुम्हें कुछ भी नहीं दे सकती, पर मेरा निश्छल प्रेम कभी झूठा नहीं होगा, कभी मलीन नहीं होगा आज जितनी तीव्रता है, उससे ज्यादा आगत में दिखाई देगी क्योंकि प्रेम कम नहीं होता प्रेम क्रमशः पलता हैं नजदीकियां उसे पुष्पित-पल्लवित करती हैं। प्रेम वासना नहीं प्रेम त्याग है, प्रेम उत्सर्ग है। प्रेम क्षण भर सुःख देता है आजीवन दुःख देता है।

तब भी प्रेम ही शाश्वत है, अजर है, अमर है। मानस मैंने जीवन के लाल रंग से वंचित विविध विद्रूप रंगों में अपने को अनजाने या भाग्यवश सींचा है। लेकिन जब तुम्हारा साथ मिला तो मन श्रृंगार रस में डूबकर भावनाओं के नाव पर चाँदनी रात में नौका विहार कर रहा था, यह खेल बिल्कुल वैसे ही था जैसे बुझते हुए दीपक में तेल डाल दिया जाता है और वह लौ पूरे जोश के साथ जलती है बल्कि प्रथम बार के जलने की अपेक्षा अधिक प्रज्वलित होती है बिल्कुल तुम्हारा प्रेम उसी दीया जैसा है। मेरे साथ विडम्बनाएं जुड़ी हैं। जिन्दगी की गाड़ी स्वचालित यन्त्र की तरह चलती है। गन्तव्य तक पहुँचने की न कोई उत्कण्ठा थी न ही कोई लक्ष्य। किसी का लक्ष्य अपना लक्ष्य मान लिया किसी का सदन अपना गन्तव्य। आत्म स्वीकृतियों का कथ्य, शिल्प, अभिव्यक्ति का यथार्थ परक चित्रण तुम्हारे सामने तो कर सकती हूँ? तुम मेरी समीक्षा करना सीमा रेखा के दायरे में क्योंकि नैतिकताओं और मूल्यों को तोड़ना कितना मुश्किल होता है, रागात्मक कहानी स्त्री जीवन के विविध पक्षों को उजागर करती है, उसमें संघर्ष, विद्रोह, नाराजगी और तिक्तता, प्रेम, घृणा, पश्चाताप के भाव का रंग अधिक गहरा है, उसकी भागीदार केवल स्त्री ही नहीं होती, स्त्री पुरुष दोनों ही होते हैं। किन्तु जब प्रेम असफल होता है तो कठघरे में स्त्री को ही खड़ा किया जाता है। अपितु अन्यान्य तर्कों के बावजूद भी स्त्री पुरुष के जीवन में प्रेम का निषेध नहीं है। दैहिक भूख, शारीरिक थकान-संत्रास और पीड़ा का बोध प्रेम के बदलते स्वरूप के कारण जीवन्तता से दिखायी दे रहा है क्योंकि समाज को विसंगति स्वीकार नहीं है। हर बार स्त्री का ही अस्तित्व खतरे में पड़ जाता है। मानस आत्मीय सम्बन्ध में सम्बोधन प्रेम की रक्षा नहीं करेगा? रिश्ते को नाम देकर नहीं सींचा जा सकता, प्रेम का दूसरा नाम समर्पण है जो जीवन को गतिमान बनाता है। प्रेम तो सभी करते हैं और प्रेम में विभोर कर देने वाले क्षणों का उपयोग भी सभी करते हैं किन्तु जवाब देही केवल स्त्री की है और वह पाप की भागीदार बनती है स्त्री को इस पाप से कभी मुक्त नहीं किया जा सकता। जबकि प्रेम की पहली शर्त है? मुक्त करना और मुक्त होना। परन्तु कभी ऐसा हुआ नहीं। अनिश्चय की स्थितियाँ भावानुकूलताओं के घेरे से निकलने नहीं देती है। अपमान का घूँट पीकर भी क्या स्त्री इस दंश-संत्रास से मुक्त हो पायी है? काश हम जितने भावप्रवणता और गम्भीरता से प्रेम को

सींचते हैं उतने ही गम्भीरता से अपने कार्यों को करें तो बहुत कम परिश्रम में पूरी दुनिया नापी जा सकती है। वस्तुतः नारी मन जहां हृदय से काम लेना होता है वहाँ बुद्धि को कमरे में कैद कर देती हैं और जहाँ बुद्धि से काम लेना होता है वहाँ हृदय के सारे दरवाजे खोल देती है। अगर इसी क्षण वह हृदय को कैद कर ले तो सफलता उसके हाथों में होगी। अच्छा? मानस मैंने क्या-क्या कह दिया तुम भी सोचोगे मुझे पत्र लिखा है या समकालीन कहानियों की समीक्षा लिख दी या स्त्री विमर्श का भाषण? जो भी समझो! पर इतना जरूर समझना कि जिस प्रेम की परिणति सुखान्त हुआ करती है वह ही आज हमारे सामने है और हम जी रहे हैं। हम जितने पास है उतने दूर हैं और जितने दूर है उतने पास हैं ऐ मेरे दोस्त एक दिन तुमने मुझसे यही कहा था कि तुम इसे सच मानोगी तभी मैं एक कदम आगे बढ़ाऊँगा। यह मेरे प्रेम की अद्भुत गाथा ही सम्पूर्ण जीवन का एक स्वप्न है। आह! कितना सुखद भावों से भरे जीवन को तुमने एक आकृति दे दी उसमें रंगभर श्रृंगारिक वर्णन करने के लिए आम जन को विवश कर दिया। मानस? साथ न रहकर भी तुम स्नेह के अथाह सागर हो, जिसमें मैं हरपल डूबती-उतराती रहती हूँ। तुम मुझे बहुत स्नेह करते हो, अतिशय .... मेरे शब्द चूक गये मानस तुम फिर आना पुनः उसी प्रक्रिया में मुझे जाग्रत करने के लिए सारी ऊर्जा लगा देना, लगा दोगे न?............ शायद फिर .... एक बार फिर मानस हम और तुम, तुम और हम पुनः कई बार वाद्य यन्त्रों से खेलेंगे, कृत्रिम यन्त्रों वाद्यों और खिलौनों से क्षणिक सुःख के खातिर............ यथार्थ की सार्थकता.......... मानस मन की अपनी जीवन दृष्टि.........

□□□

आज का अर्जुन

आज प्रातः काल उठी चाय की पहली घूँट पी ही थी कि फोन की घंटी बजी मैंने फोन उठाया अनजानी सी भारी-भरकम आवाज सुनायी दी, आप डॉ0 साहिबा बोल रही हैं। मैंने जी, बोलकर उत्तर दिया उन्होंने तुरन्त कहा आप कब ज्वाइन कर रही हैं। आपका पत्र डाक द्वारा भेज दिया गया है। परन्तु आप आज चलकर कल पहुँच सकती हैं। आपकी सीनियारिटी मायने रखती है। मैं आप से यही आग्रह करूँगा कि जितनी जल्दी आ सकती हैं, आ जाइए। मैंने जी, धन्यवाद कहकर फोन रख दिया। पुनः चाय पीने लगी मन बार-बार जाने के लिए उद्यत हो रहा था। परन्तु घर में सबसे राय मशविरा करना था फिर टिकट का इंतजाम वगैरह लम्बा सफर था। बहुत लोगों ने मना कर दिया, अरे इतनी दूर एक तो अपने से एकदम कटा हुआ राज्य, आवागमन का उचित प्रबन्ध नहीं है। भाषायी कठिनाई अपने आप में एक विकट समस्या है। परन्तु मेरी घनिष्ट मित्र ने कहा अरे यार तुम जरूर ज्वाइन करो नैसर्गिक आभा बिखेरता शहर अपनी मनोरम छटा से सबका मन मोह लेता है। प्रकृति के इतने करीब रहने का मौका हाथ से मत खोने देना अवसर बार-बार नहीं आते हैं। तलहटी की अतल गहराइयों में जीने से अच्छा है। प्रकृति के गोंद में जीने का आनन्द उठाया जाय। कभी तुमने इस विषय में सोचा कि अपनी कोई जिन्दगी होती है, अपने लिए खुशियों का पल कहाँ से बटोर लाँऊ सिर्फ किताबी ज्ञान से जिन्दगी नहीं चलती है। स्थान परिर्वतन का महत्व तुम नहीं समझ सकती, अपने लोगों के ही परिवेश में जीने की अभ्यस्त होती जा रही हो या इसे यह मान लो कि अपने को गुमनामी में रखते हुए संकरी गलिओं में चलते हुए जिन्दगी के आयाम पूरे करने का मन बना रखा है। नहीं? दीक्षा नहीं? कर्म और भाग्य का जब समन्वय होता है, तभी सुअवसर मिलतें हैं। दीक्षा बोली तो चलो मैं तुम्हारा टिकट करा दूँ उस रास्ते का उसे ज्ञान था आने-जाने की

अभ्यस्त थी, कइयों बार पर्यटक की हैसियत से जाती रही है। और आज मुझे जिन्दगी शुरू करने के सुअवसर प्राप्त हैं। मैं उन्हीं क्षणों के उधेड़ बुन में जाने की तैयारी में लग गयी, अगले दिन मेरी ट्रेन थी कंचनजंघा। मुझे भाई बन्धु छोड़ने आये, सभी के मन में एक भय समाया हुआ था, देश, काल, परिवेश या यह कह लीजिए क्षेत्रवाद का, खैर वह समय आ ही गया ट्रेन चल पड़ी हम एक दूसरे से विदा लिए, विदा शब्द अपने आप में हृदय को विदीर्ण कर देता है, परन्तु क्षण भर में ही मेरा मन छूटते स्थान और आत्मीय जनों के सूत्रवाक्य तथा भाव को भूलकर आने वाले स्थान, व्यक्ति वातावरण विश्वविद्यालय परिसर व्यवस्था की तरफ खींच गया मैं बार-बार सोचने लगी नितान्त अकेली सुदूर अनभिज्ञ जगह बदला हुआ परिवेश कहीं मेरे जीवन शैली को बदल दे तो लोग क्या कहेंगे? कहीं ये वक्त मुझ पर भारी न पड़ जाय? परन्तु मन को सन्तुलित किया और सोचने लगी कैसे बताऊँ किसको बताऊँ मैं आ रही हूँ। मेरी कोई अपनी जान पहचान नहीं है। इसी उधेड़ बुन में दिन-रात चलकर मैं गन्तव्य तक पहुँच गयी स्टेशन के ही रिटायरिंग रूम में अपना सामान रखकर फ्रेस हुई, तैयार होकर सीधे स्टेशन के बाहर आकर टैक्सी लिया और चल पड़ी सिक्किम युनिवर्सिटी टैक्सी वाले को रास्ता पता था, वह सीधा चल पड़ा। ज्योंही मैदानी क्षेत्र छोड़कर पहाड़ी क्षेत्र में प्रवेश किया मेरा मन भय से काँप गया इस भयानक रास्ते कंकरीली पथरीली चट्टाने अगर गिर गयी तो? कहीं गाड़ी नदी में चली गयी तो? मैं तो नहीं बचूंगी कोई खबर देने वाला भी नहीं है। सुगम सरल रास्ते पर चलने की अभ्यस्त थी अचानक वह भी अकेले विषम रास्ते का अनुभव बड़ा पीड़ादायक था 4-5 घन्टे लगे जैसे-तैसे टैक्सी अब कुछ दूरी पर पहाड़ों पर बसे कस्बे टाइप बाजार में पहुँच गयी थी। ड्राईवर ने गाड़ी रोकी कहा मैडम आप यहाँ कुछ नाश्ता कर लिजिए भूख तो महसूस हो रही थी मैंने रात में भी ठीक से भोजन नहीं किया था तब तक वह हाथ में एक दोना लिए आकर मेरे हाथ पर रख दिया मैंने पूछा यह क्या है उसने कहा ममोज खाइए स्वादिष्ट है। मैंने खाया बड़ा ही सुपाच्य भोज्यपदार्थ था मैंने चाव से खाया खाने पीने की शौकीन हूँ सोचा चलो खाने को तो अच्छी भली चीजें मिल जायेगी उसनें भी नाश्ता किया पुनः गाड़ी चल पड़ी वह पहाड़ी घुमावदार रास्ते से हमें विश्वविद्यालय के गेट पर उतार दिया, मैंने उसे पैसे चुकते किए।

चुपचाप खड़ी यह सोचने लगी सामान कहाँ रखूँ, तब तक एक सज्जन शक्ल सूरत से सौम्य सुदर्शन बड़े ही आत्मीय भाव से बोले नमस्कार आप आ गयीं मैं थोड़ी देर के लिए सकुचायी परन्तु नमस्कार के मुद्रा में हाथ जोड़े मैं उनके सामने खड़ी थी उन्होंने अपने ड्राइवर से कहा सामान गाड़ी में रखो और मुझे अपने साथ गाड़ी में बैठने को कहा मैं यन्त्रवत गाड़ी में उनके पास बैठ गयी, बैठते ही मैंने पूछा आप मुझे कैसे पहचानते हैं, उन्होंने तपाक उत्तर दिया बिना जाने ही मैंने आपको फोन किया था मैं अवाक् यह वही सज्जन हैं। फिर मैं चुप हो गयी। वह विभाग ले गये। मेरा परिचय एच.ओ.डी. से कराया ज्वाइनिंग हो गयी मैं एक दूसरे से बातचीत में मसगूल हो गयी सभी फैकल्टी एक दूसरे से परिचय कर रहे थे तथी उन्होंने कहा कि मैं अपने विभाग जा रहा हूँ शाम को आऊँगा कहते हुए चलते बने आगे न मैंने कुछ पूछा न उन्होंने कुछ बताया मानो ऐसा लगा जैसे की संवेदना का पुट आत्मीयता का भाव इतना गहरा है कि इसमें कुछ कहने सुनने की जगह ही नहीं है। सब कुछ नया, मन प्रफुल्लित था बहुत ही अच्छा परिवेश प्रकृति के गोंद में बसा गैंगटोक शहर अद्भूत छटा बिखेर रहा था। जुलाई के महीने में बारिश होती ही है उस पर ठंडा प्रदेश हर 10-15 मिनट में बारिश होती रहती थी बर्फ पड़ने लगते थे। चारों तरफ हरी कोपलें आंखों को ठंडक प्रदान कर रही थी। मुझे पानी में भींगना बहुत अच्छा लगता था लेकिन पद के गरिमा का ख्याल और अनजान अजनबी लोग बाग, वातावरण, आह भरता मन एक उच्छ्वास भर कर रह गया। समय तो अबाध गति से चलता रहता है, हमारा आपका इंतजार नहीं करता सभी लोग अब घर निकलने की प्रक्रिया में थे क्योंकि वहां शाम जल्दी हो जाया करती है। एक-एक कर लोग निकलते गये मैं और विभागाध्यक्ष ही बाकी थे, चपरासी क्लास रूम बन्द करके चैम्बर के पास आकर खड़ा हो गया, उसे देखते ही एच.ओ.डी. ने कहा थापा जी पांच मिनट रूको मैडम के जाने के बाद तुम कार्यालय बन्द करके चाभी पहुँचा देना, अच्छा मैं चलता हूँ मैं अभिवादन में हाथ जोड़कर खड़ी हो गयी, सवाल भरी निगाह से देखा उन्होंने शायद कुछ भांपा होगा, तुरन्त बोले अरे आप बैठिये अभी डॉ. माथुर आते ही होंगे। उनका कहना और साथ ही डॉ. माथुर का प्रवेश। क्षमा कीजियेगा काफी देर हो गयी! आपको इंतजार करना पड़ा दरअसल एक जरूरी मीटिंग थी। अच्छा तो कैसा रहा आज

का दिन मैंने संक्षिप्त सा उत्तर दिया ठीक ही रहा उन्होंने मेरी तरफ देखा फिर बोले बहुत उदास हैं लगता है कुछ खाया पीया नहीं है। चलिए आपको पहले गैंगटोक शहर घुमाता हूँ फिर गरमा-गरम चाय पिलाता हूँ, कहते हुए चल दिए सामने कार खड़ी थी हम दोनों पीछे के सीट पर बैठ गये अंधेरा हो गया था। यहाँ बाजार जल्दी बंद हो जाती है। ड्राइवर को नेपाली में जगह का कोई नाम बताया फिर तेज ड्राइव करने को कहा मैं घबरा रही थी मेरे रहने का कोई प्रबन्ध नहीं है, रात हो गयी है, मैं कहां रहूंगी। गेस्ट हाउस के लिए कोई चर्चा ही नहीं की। न ही किसी ने पूछा कहाँ रूकियेगा। मैं इसी उधेड़बुन में लगी थी कि अचानक उन्होंने कार का दरवाजा खोलकर कहा आइए मैडम यहाँ का मशहूर रेस्तरां है और गैंगटोक शहर की वी.आई.पी. मार्केट। हम दोनों ने चाय पी और समोसे खाये अच्छा लगा यहां भी बंगाल की तरह ही समोसे मिलते हैं। पुनः गन्तव्य की ओर चल पड़े जो मुझे पता नहीं था ड्राइवर से यह कहते हुए सुना की रानीपुर रूमतेक चलो। मेरी ओर देखते हुए बोले गैंगटोक से करीब 12 किलोमीटर की दूरी पर गांव की एक बाजार है रानीपुर, ऐसा मुझसे बताने लगे मैं चुपचाप अनमने मन से सुन रही थी तकरीबन आधे घंटे में कार रानीपुर पहुँची फिर दायें बाएं करती एक निर्जन जगह में गाड़ी रूक गयी अब तो मेरी जान सूखने लगी अन्तरमन भयग्रस्त होने लगा ईश्वर आगे क्या होगा दूर-दूर तक एक भी व्यक्ति दिखाई नहीं दे रहा था मैं बिल्कुल घबराई थी तब तक एक मधुर आवाज सुनाई दी अरे भाई साहब आपका कब से हम लोग इन्तजार कर रहे थे ... लो मैं आ गया और आप हैं डॉ. बिन्दुजी, नमस्ते दीदी। मैंने भी नमस्ते किया। चलिए-चलिए फिर वही मधुर आवाज और हम पीछे-पीछे चल दिये डॉ. माथुर ड्राइवर को आदेश दे रहे थे कि सामान उतार कर घर में पहुँचा दो मैं समझ गई ये डॉ. माथुर का घर है। आज मुझे यहीं रहना होगा और वह भी मेरे साथ चल दिये। सड़क से तकरीबन 50-60 सीढ़ियां चढ़नी पड़ी पहाड़ पर घर था यहाँ के गांव पहाड़ों पर बसे हैं। और एक पहाड़ पर एक ही घर। उपर जाकर देखा तो मानो आंखों को विश्वास ही नहीं हो रहा था। बिल्कुल आलीशान बंगला घर के बाहर एक छोटा सा शिव मंदिर, भरा पूरा परिवार दिखाई दे रहा था। सभी एक दूसरे से परिचित थे मैं ही एक अजनबी सभी ड्राइंगरूम में एक साथ बैठे एक दूसरे से औपचारिक परिचय का

सिलसिला चला जो नीचे लेने गयी थी पहला परिचय मेरा उनसे कराया डॉ. माथुर ने कहा आपका नाम तो मैं तुम्हें बता दिया पर तेरा नाम तो मैडम को बताया ही नहीं। आप है डॉ० निधि शर्मा यहाँ के राज्यपाल की पी.ए. और इस घर की बड़ी बेटी, सभी भाई-बहन नौकरी में हैं, माता-पिता सभी से परिचय कराया। मेरी तरफ देखकर कहा आप रहिए मैं जा रहा हूँ। यहाँ आपको कोई तकलीफ नहीं होगी, परिवार की तरह आप रह सकती हैं यूनिवर्सिटी में आवास मिलने पर आप वहाँ चले जाइएगा तब तक निश्चिन्त होकर नौकरी कीजिए, और इस जगह का नाम रूमतेक है। तब मुझे पता चला कि यह इनका घर नहीं है। अच्छा मैं चलता हूँ, विदा लेते हुए डॉ० माथुर का जाना जैसे लगा मन पर कोई भार छोड़ गया या मन से कोई कुछ कह गया...... शायद यह मेरा स्त्री मन स्त्री पुरुष सम्बन्धों की सार्थकता तलाशने लगा और मोहाविष्ट होकर डॉ० माथुर के बारे में क्षणभर मूल प्रवृतियों पर सोचने लगा जो अभी-अभी घटित हुई थी, तब तक निधि ने आवाज दी दीदी चलिए मैं आपका कमरा ठीक कर दी हूँ और मेरा सामान लेकर आगे बढ़ गयी ड्रांइग रूम से एक कमरे के बाद मेरा कमरा सुन्दर सा बेड सफेद चमकती चादर और तकिया जरूरत की हर एक चीज मेरे कमरे में रखी थी, मानो ऐसा लग रहा था मैं अपने घर में हूँ, मैंने सामान खोला कपड़े निकाले फ्रेस होकर खाना खाने एक मंजिला अन्डर ग्राउन्ड नीचे जाना था वहाँ माँ पिताजी का कमरा है, बैठकर बड़ा ही स्वादिष्ट भोजन किया भाषायी समस्या होने के कारण बात नहीं हो पा रही थी केवल हिन्दी में निधि और विमल ही बातें कर रहे थे सभी लोग नेपाली में बोल रहे थे। वह ब्राह्मण नेपाली परिवार था धार्मिक लोग थे घर में मंदिर होने के नाते भोग आरती संध्यावंदन रोज की प्रक्रिया में था। मैं और निधि एक ही बिस्तर पर सोयी उसका कमरा मेरे कमरे के ठीक सामने था परन्तु वह मेरे पास इसलिए लेटी कि कभी-कभी यहां सांप निकल आते हैं और आकर बिस्तर पर बैठ जाते हैं। ऐसा उसने बताया मैं डर के मारे कांप गयी मैंने उससे पूछा काट लेगा तो? नहीं दीदी मैं बोल देती हूं यहां से चले जाओ वे चुपचाप उतर कर चले जाते हैं दीदी आज जानवर इंसान से ज्यादा ईमानदार एवं संवेदनशील हैं। पहाड़ों पर ऐसा कभी कुछ होता नहीं इसीलिए मैं आप के साथ सोऊंगी फिर खूब ढ़ेर सारी बातें हुयी बोली, भइया ने आपके बारे में मुझे सब कुछ बता

दिया है, बड़ी तारीफ कर रहे थे। यह भी बताया कि उसके लिए घर का तत्काल इंतजाम करना पड़ेगा बड़ी स्वाभिमानी है, पता नहीं कब यहां से उकता कर इस्तीफा देकर चली जाय इसके पहले मुझे पूरा समुचित प्रबन्ध करना पड़ेगा... मैं कुछ पूछ न सकी की वह मेरे लिए इतना क्यों कर रहे हैं या वह मुझे कैसे जानते हैं। बस इतना पूछा निधि यहाँ से विश्वविद्यालय जाने के लिए क्या साधन है, मैं कल कैसे जाऊंगी। अरे दीदी इसकी क्या चिन्ता हम सभी लोग एक साथ घर से निकलेंगे और आप को छोड़कर सबको अपनी-अपनी जगह उतारते हुए मैं अपनी गाड़ी लेकर कार्यालय चली जाती हूँ आते समय सबको जगह-जगह से लेती आती हूँ मेरे जीवन में कार्य दायित्वों का निर्वाह सर्वोपरि है। भाई साहब मेरे बारे में कुछ नहीं बताये क्या....? नहीं मुझे तो पता ही नहीं था कि मैं कहां जा रहीं हूँ। वे लोग कौन हैं परन्तु यहां तुमसे मिलकर अपार हर्ष हो रहा है। एक अनजान शहर में मेरा कोई इतना करीबी होगा यह तो मैंने सोचा ही नहीं। अच्छा सो जाइए सबेरे जल्दी उठना होगा...... वह सो गयी मुझे रात भर नींद ही न आये एक तो नई जगह दूसरे सांप का डर और तीसरा मुद्दा डॉ. माथुर का इस कदर मेरे जीवन में प्रवेश। खैर मैंने घर में फोन करके बता दिया कि मैं ठीक ठाक हूँ मेरे रहने का प्रबन्ध हो गया है मैं एक परिवार के साथ रह रही हूँ आगे जैसा होगा बताऊंगी। सुबह उठी गरम पानी और चाय की केटली मेरे सिरहाने रखी थी। उठने की आहट निधि को लग गयी तब देखा वह नहा धोकर चन्दन का टीका लगाए बालों से पानी टपकाती मेरे कमरे में आकर बोली दीदी चाय लिजिए मैंने पूछा आओ तुम भी साथ पिओ मैं भी आपका ही इंतजार कर रही थी दीदी हम पहाड़ के लोग जल्दी सोते हैं जल्दी उठते हैं। आप मैदानी लोग देर से सोते है देर से उठते हैं। इसलिए मैंने जल्दी चाय बना ली खैर हम दोनों ने गरम पानी पिया फिर बड़े कप में चाय ढाल ली और चाय की चुस्कियां लेने लगी। हमारी और निधि की बातें आध्यात्म से शुरू हुयी और भारतवर्ष के वर्तमान परिदृश्य की चर्चा पर आकर टिकी। तार्किक बहस शुरू हो गयी मुझे लगा लड़की बड़ी ही मेधावी है। कम उम्र और इतना पक्का अनुभव...आध्यात्मिकता से सराबोर अति सुन्दर बाला है। मैं बहुत प्रभावित हुयी, फिर तैयार होकर मैं सबके साथ कर्मक्षेत्र के लिए निकल पड़ी वह दृश्य भी देखने लायक था एक ही घर के सब लोग एक

साथ नौकरी करने हेतु जा रहे थे 3 भाई-बहनें, भाभियां और मैं। रोमांचित करने वाला क्षण था खैर मैं अपने विभाग आई आज मुझे क्लास लेना था क्लास का नया अनुभव होगा आदि-आदि। मैं सीधे विभागाध्यक्ष के कमरे में गयी वह मुझे टाइमटेबुल पकड़ाते हुए बोले कोई परेशानी नहीं होनी चाहिए फिर भी अगर होगी तो मेरे से कहियेगा आपका 101 नं. में क्लास चलेगा और 9 नं. आपका चैम्बर है। अब क्या वही रूटीन शुरू हो गया मैंने क्लास में सबसे परिचय किया बच्चों के नाम बड़े जटिल थे याद करने में मुश्किल हो रही थी, मैंने सोचा यह नवीनता ही तो आकर्षण का केन्द्र बिन्दु है। धीरे-धीरे सब ठीक हो जायेगा। यह विश्वास बनता जा रहा था उसके बाद मैं अपने चैम्बर में आयी ताला खोला सब साफ सुथरा था मुझे अलग से कुछ करना नहीं था। थोड़ी देर बैठी ही थी कि फोन की घंटी-बजी देखा इण्टरकाम पर फोन आया मैंने सोचा एच.ओ.डी. ने फोन किया होगा मैंने हैलो कहते ही कहा जी सर, उधर से आवाज आयी नमस्कार मैं डॉ. माथुर बोल रहा हूँ आप कैसी हैं, आप कैसे हैं? मैंने प्रति उत्तर में कहा उधर से आवाज आइ मैं दस मिनट में आपके पास आ रहा हूँ। अब वह पल बड़ी उत्सुकता भरा होते हुए भी कई सवालों के घेरे में था लोग क्या सोचते होंगे मैं कुछ भी नहीं जानती ये मेरी सारी व्यवस्थाएं स्वयं करते हैं। जैसे कोई मेरा गार्जियन हो और मैं भी बिल्कुल तटस्थ भाव से बिना किसी पूर्वाग्रह एवं सहानुभूति की विशिष्टता लिए हुए दर्शक की भांति सबकुछ बिना बोले देख रही थी और इसी श्रृंखला की कड़ियों में आधुनिक युग बोध से सम्पृक्त होकर डॉ. माथुर का इंतजार करने लगी हृदय भावों से भर गया परन्तु उपरी भाव भंगिमा को विचलित न होने का स्वांग भरती रही तब तक डॉ. माथुर ने चैम्बर में प्रवेश किया मेरे सामने वाली कुर्सी पर बैठते हुए बोले मैडम के बिना इजाजत हक से मैं सामने बैठ गया हूँ। कहिए सब ठीक है न? घर की याद तो नहीं आ रही बड़ी गुमसुम बैठी हैं। मैंने कहा नहीं-नहीं अभी काम समझने और व्यवस्थित होने में टाइम लगेगा धीरे-धीरे सब ठीक हो जायेगा। आप जैसे सहयोगी मिल जाय तो बड़ी से बड़ी मुश्किलें आसान हो जाती हैं। लेकिन मैं अचम्भित हूँ इस सरोकारी सम्बन्ध से तब तक डॉ. माथुर ने कहा अरे ऐसा नहीं है मैडम मैं आपको बहुत पहले से जानता हूँ मैं चुप। बड़ी हिम्मत जुटाते हुए पूछा कैसे जानते हैं। मुझे भी तो एहसास होना

चाहिए इस घनिष्टता का अगर उचित समझे तो मुझे भी उस घटनाक्रम से अवगत करा दें, अरे! आप क्यों परेशान हैं। समय धीरे-धीरे सब कुछ बता देता है। यह तो मन की अनवरत प्रक्रिया है। मानव स्वभाव है भाव विचार एक जैसे हो तो घनिष्टता बढ़ ही जाती है, अच्छा हम चलते हैं, अगर आप साथ चलेंगी तो अच्छा लगेगा मैंने बिना कुछ कहे अपना सामान बैग इत्यादि समेटा और साथ चल दी। उन्होंने पूछा दर्शनपूजन हेतु मंदिर चलूं या फिर यहां की प्राकृतिक सुषमा का बखान करते आपको सुनने का मन बना लूं। अरे! मैं क्या बखान करूंगी आपने प्रकृति की गोद में जन्म लिया है रग-रग आपका भींगा होगा जो आप कर सकते हो मेरे जैसे अकिंचन प्राणी से दुर्लभ है। मैं विज्ञान का आदमी सार्थकता की तलाश करता हूँ। कल्पना जगत में तो कवि ही विचरण करते हैं। मुझे पता चल गया हमारा और उनका विषय एक नहीं है केवल विश्वविद्यालय एक है जिसके नाते हम एक दूसरे से मिलते हैं। आपस में इतनी सीं बात हुयी और गाड़ी आकर गैंगटोक पार्क के सामने रूकी इतना खूबसूरत पार्क चारों तरफ विभिन्न प्रजातियों के फूल बहुरंगी छटा का वर्णन जितना किया जाए कम है। मेरा मन मुग्ध हो गया शाम की मधुरिमा उस पर से हल्की सी ठंडक मनमोह ले रही थी। दूर पहाड़ियों पर बर्फ पड़ी थी मानों सामने हिमालय दिख रहा हो। मैं एक-एक पौधे को अहर्निश अपलक एकटक निहार रही थी तब तक मेरे सामने खड़े होकर बोले इन पौधों के बीच मैं भी एक पौध हूँ, नेह वर्षा कर सिंचित कर दें। फूल फल आपके पूजा के काम आयेगें। हास्य विनोद पूर्ण वाक्य मन के तार को झंकृत कर गया और हम दोनों एक साथ हंस पड़े। मैं कुछ ज्यादा खुश हो गयी थी लगा विगत मेरे सामने खड़ा है। फिर दोनों एक बेंच पर बैठ गए, ऐसा भान हो रहा था जैसे बादल छू-छू कर अठखेलियां कर रहा हो। बातचीत का सिलसिला गैंगटोक शहर के आसपास के सुरम्य घाटियों का वर्णन बौद्ध मठों, मंदिरों की चर्चा करते-करते अचानक पूछ बैठे बिन्दुजी आपने अभी तक शादी क्यों नहीं की अचानक अपना नाम सुनते मुझे कुछ नया सा लगा सम्बोधन के नाम पर मैडम डॉ. साहिबा ही सुना था खैर मन को रोका और मैंने कहा नहीं की शादी। अब क्या रीजन था क्यों था कैसे था मैं व्याख्यायित नहीं कर सकती, इतना जरूर बता देती हूँ मैं सिर्फ अकेली हूँ। भाई-बहन, माता-पिता सभी घर में हैं, परन्तु मेरा

जीवन अपने आप में सारी दुनियां समेटे हुए टेढ़े-मेढ़े रास्ते से गुजरता अपने संगीत साधना में रत सुर और ताल मिलाता हुआ अनोखे अंदाज में जीने का आदी हो चुका है। कुछ कभी भा जाता है, खूब हँस लेती हूँ, कुछ बुरा सा लगता है, खूब रो लेती हूँ, फिर यन्त्रवत क्रमशः अग्रिम राह में अपने कार्यों में लिप्त बिंदास भाव से दायित्वों का निर्वाह करती हूँ। सर वक्त चाहे जितना दुरूह हो गुजर ही जाता है। अगर व्यक्ति धैर्यवान हो तो सफलता कदम चूमती है, खैर यह लम्बी बहस है। विषय परिवर्तन करना ही सुखकर होगा। मैंने देखा वह चुपचाप दत्त चित्त मेरी बातें सुन रहे थे, आंखों में सागर सी गहराई थी बड़े ही भावुकता से मेरे कंधे पर हाथ रखकर बोले "मैं हूँ न" इतना अधीर न हो ईश्वर ने मिलाया है तो कुछ नया जरूर होगा मैं हर सुःख दुःख में आप के साथ हूँ। क्षणांश मात्र का स्पर्श जीवन के सुखद पल की याद दिला गया। आँखों की भाषा बड़ी सशक्त होती है हम दोनों ने एक दूसरे को निमिष मात्र देखा और चल दिये। दोनों दो दिशा में, अलग-अलग दो छतों के नीचे रहते हैं। वह मुझे रूमतेक छोड़कर तब घर जायेंगे ऐसा ड्राइवर को बता रहे थे, फिर गाड़ी में बैठते वक्त मैंने पूछा आपको किस रास्ते जाना है। उन्होंने कहा पैक्यूम? मैं कुछ भी नहीं जानती थी सिर्फ सुन लिया पुनः बोले एक दिन घर ले चलूँगा पत्नी से मिलाऊँगा मेरे दो बच्चे हैं एक बेटा और एक बेटी। ये बात उन्होंने बड़े प्यार से बताई उनकी यह अपनी कहानी थी, कितने आसानी से कह गये। तब तक मेरे घर का रास्ता आ गया आज वह सड़क से ही उतर कर चले जाने को कहा और मेरा हाथ पकड़ कर बोले बुरा मत मानना कोई परेशानी हो तो जरूर फोन कर देना वैसे निधि तुम्हारा ख्याल रखेगी, बड़ी ही दिलेर लड़की है, उसके कार्यदक्षता की चर्चा पूरे गैंगटोक शहर में है। मुझे भी बहुत मानती है। अच्छा चलता हूँ। एक नजर मैंने देखा फिर न देख सकी मन में भाव उत्पन्न हो गया कि उनका अपना परिवार है। अपनी दुनिया..... मैं घर पहुँची निधि इंतजार कर रही थी बड़ी बेशब्री से फिर हम दोनों ने चाय पी साथ-साथ खाना खाया सोने के लिए उपर आई आज फिर निधि मेरे पास सो गई। और मुझसे अपने भाई साहब की तारीफ में एक लम्बी फेहरिस्त गिना गई मैं तो उन्हें बचपन से जानती हूँ बड़े नेक और ईमानदार इंसान हैं दूसरे के लिए कुछ भी करने को तत्पर रहते हैं। मैं तो उन्हें बड़ा भाई मानती हूँ मेरे अपने

भाइयों पर भरोसा नहीं है लेकिन भाई जी पर तो मैं आंख बन्द करके भरोसा करती हूँ। दीदी आप कुछ बोल नहीं रहीं हैं मेरी बात सुन तो रही हैं न, हाँ-हाँ मैं क्या बोलूँ मेरा और डॉ. साहब का परिचय मात्र दो दिन का है। अरे? भाई साहब तो कह रहे थे मैं पहले से जानता हूँ मेरी बड़ी करीबी हैं। तुम अपने साथ रखना आपकी बड़ी तारीफ कर रहे थे। मैंने इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया फिर हम दोनों सो गये। अब धीरे-धीरे रहन-सहन एवं कार्यों का रूटीन बन गया। सभी एक परिवार जैसे रहने लगे सारे भाई-बहन, भाभी, माँ-पिताजी बेटी की तरह व्यवहार करते थे और निधि तो काफी अंतरंगता से पेश आती थी जैसे वह मेरी हर विधा या मुद्रा से परिचित है। डॉ0 साहब-अपने कामों में व्यस्त होते हुए भी दिन में दो चार बार बातें करना और एक-दो बार मिल ही लेते थे। विषय भिन्नता होते हुए भी विषयगत चर्चा होती रहती थी। समय हमारा आप का इंतजार नहीं करता उसकी अबाध गति है। काफी समय गुजर गया तमाम विसंगतियां होते हुए भी भावनात्मक रूप से हम दोनों एक थे। एक दिन अचानक डॉ. माथुर घर पहुँचे मुझे न देखकर निधि से कहा बिन्दुजी कहाँ है? निधि उनका हाथ पकड़ छत पर ले गयी और बोली देखिए वो बैठी है अक्सरतः तिस्ता नदी के किनारे पानी में पैर डालकर देश दुनियां से बेखबर न जाने क्या तिस्ता में खोजती हैं? घर के सामने से ही नदी गुजरती है फिर डॉ0 साहब और निधि दोनों चुपचाप आकर मेरे अगल बगल बैठ गये मैं अपने दर्द को छुपाते हुए मुस्कराकर पूछी इस समय और आप? यही प्रश्न मैं आप से पूछ सकता हूँ। क्यों नहीं! तिस्ता के कल-कल में अपने को डूबो कर देखिए। और आप उस दर्द की दास्ताऩ लिख डालिए कितनी अच्छी भाषा है विषय पर पकड़ है। आज कितनी कवितांए लिखीं सुनाइए? मैं हतप्रभ! अच्छा आज तक कितनी कविताएं लिखी होंगी मैंने कहा 100-150 के आसपास उन्होंने कहा आप प्रकाशित करा दीजिए। मैं टालती रही परन्तु मुझे दिलाना याद उनके दिनचर्या में शामिल हो गया जब मिलते पूछते आज आपने क्या लिखा मैं कभी बताती कभी टाल जाती। एक दिन आकर मेरे पास बैठे और बड़ी शिद्दत से कहा आप मुझे आज परिभाषित कीजिए कविता के माध्यम से। क्या आप मेरा इम्तहान लेना चाहते हैं। मेरी ये जुर्रत आप को आपकी कहानी सुनाऊँ। यह सुनकर वह जोर से हंस पड़े ये साहित्य वाले खूब बढ़िया बना लेते हैं। जब

चाहे आसमान पर बिठा दे जब चाहे जमीन पर पटक दें आखिरकार मैं कर ही क्या सकता हूँ। आप मेरी बात नहीं मानेंगी क्या? सचमुच दर्द नहीं महसूस करती मेरी हर धड़कन में आपका ही नाम है कैसे भुला दूँ आपको। मैंने कहा आप भी अच्छी कविता कर लेते है वैज्ञानिक कवि। कभी-कभी पुरुष अपने बुद्धि की पराकाष्ठा के पीछे हजारों दर्द छिपाए जीता है और वहीं स्त्री कोमल, नाजुक, भोली-भाली या समर्थ ऊर्जावान धैर्यशाली हो तो भी वह पुरुष के बाहों में अपना हर दर्द भूल जाना चाहती है। उसे बहुत खुशी होती है जब उसके दर्द की कद्र की जाती है और वह पुरुष कद्र करें जो उसको अतिप्रिय हो तो दुनिया की सबसे भाग्यशाली लोगों में अपनी गणना करने लगती है। अरे डॉ. साहब दर्द की परत की अभिव्यक्ति स्त्री पुरुष में न करके बल्कि व्यक्ति में करनी चाहिए संवेदना का जन्म स्त्री में अलग और पुरुष में अलग नहीं होता। हमारी संवेदनाओं को नहीं मालूम कि स्त्री और पुरुष का मूल भाव क्या है। फिलहाल आप भी जानते हैं। दिल का कोई मौसम या परिधान नहीं है, जो वक्त पर अपने स्वरूप में दिख जाएगा। ये दिल उस बारिश की तरह है जो वक्त बेवक्त वर्षा करते हैं और बराबरी से सबको भिंगोते हैं चाहे वह स्त्री हो या पुरुष अब आप समझ गये होंगे मेरे दर्द मेरे अफसाने इतना कहकर मैं उनकी तरफ देखी वह सामने नहीं थे, इधर-उधर देखा कहीं नहीं दिखे अचानक मेरे दोनों कंधो को झंकझोरते हुए कहा मैं तेरे पीछे खड़ा हूँ। मैं सकुचाई वह कहने लगे मैं बारिस की बूँद बनकर बेवक्त बरसना चाहता था तेरा दर्द पीना चाहता था। वाह रे समय यह भी मेरे सामने से गुजर गया और मैं पी न सका। अब मैं नितान्त असहाय सा महसूस कर रहा हूँ। मैंने कहा आप अपने को यूँ ही परेशानी में डाल रहे हैं, मैं बिल्कुल ठीक हूँ दर्द की अपनी दास्तान है जो एक राम कहानी की तरह हर वक्त मेरे परछाई की तरह मेरे साथ चलती है, अच्छा तो बिन्दु जी आप मुझे विषयान्तर न करें मैंने कहा न कविता में व्याख्यायित करें मेरे अपने दर्द को वह कितने समय में पूरा करेंगी आज ही तय कर लीजिए यह मेरा अन्तिम निर्णय है मुझे आपकी अब कोई बात नहीं सुननी है, एक मात्र किताब को छोड़कर। अपने दायित्वों को पूरा करने के साथ ही मैंने दोनों नई पुरानी कविताओं को इकट्ठा करके प्रकाशक को दे दिया वह बूटिया था भाषाई समस्या के बाद भी वह हिन्दी प्रूफरीडर से ठीक कराने की बात कहा और फिर

तीन-चार दिन बाद मुझे बताया मैडम इसे मैं छापूँगा, आप मुझे अपनी एक फोटो और एडवांस पैसे दे जाइए। मैंने उसे बुलाकर पैसे और फोटो दे दिये बात कुछ करना ही नहीं था क्योंकि हिन्दी भाषी लोगो के लिए वहां का यह सबसे बड़ा संकट है। सिक्किम जैसे पूरे राज्य की आबादी 8 या 10 लाख होगी जिसमें तीन जातियां निवास करती हैं जैसे बूटिया, लेप्चा और नेपाली और हिन्दी भाषी लोग या तो बाहर से आकर व्यापार करते हैं या सेन्ट्रल कार्यालयों के कर्मचारी अधिकारी हैं जिनकी संख्या न्यूनतम दस हजार के आस-पास है मुझे भाषा का प्रकोप झेलना पड़ता था। अब धीरे-धीरे मैं नेपाली समझने लगी थी क्योंकि निधि के घर में सभी लोग आपस में नेपाली में बात करते थे मुझसे वे हिन्दी सीखते थे और मैं उनसे नेपाली। मैं और डॉ. माथुर साइंस के विद्यार्थी होते हुए हिन्दी में बात-चीत करते थे, लेकिन उन्हें बूटिया, नेपाली, अंग्रेजी, हिन्दी, बांग्ला, असमी, खासी और उड़िया सभी भाषाओं का अच्छा ज्ञान था। अंग्रेजी में महारत हासिल थी और वे हिन्दी बहुत अच्छी बोलते और लिखते थे, मेरी घनिष्ठता का एक सशक्त माध्यम हिन्दी भाषा का होना भी था। मैंने उन्हें किताब छपने की बात बताई यह भी बताया की मैंने प्रकाशक को पैसे दे दिए डिजाइन इत्यादि बातें आप कर लीजिएगा क्योंकि भाषाई समस्या की वजह से मैं उसे अपनी बात नहीं बता पा रही हूँ। वह बहुत खुश हुए बोले इतना अधिकार तो समझती हो। तब सचेत हुयी मैं अपने सम्बन्धों के प्रति इतना आग्रह और अधिकार अनायास अपने पैरों चलकर मेरे पास आ गये और एक दूसरे को खबर ही नहीं लगी अपितु इस दो-चार महीनों में ही हम दोनों बिना कुछ बोले इतने करीब थे कि हर पल विचारों और भावनाओं से एक दूसरे के साथ थे। साथ रहना चाहकर भी दोनों की अपनी-अपनी मजबूरी थी, मैं पल भर उनसे विलग नहीं हो पाती थी। एक दिन अचानक हम दोनो विभाग से निकलकर प्राकृतिक सौन्दर्य की गोद में क्षणभर बैठने के लिए निकल पड़े, आज ड्राइवर नहीं था डॉ0 माथुर स्वयं ड्राइव कर रहे थे, मैं अगली सीट पर बिल्कुल उनके निकट बैठी थी। यह मेरा पहला एहसास था, मन की घुलन दिल और दिमाग दोनों को ठंडक पहुँचा रही थी, लगता था जो मैंने कईयों वर्ष पहले जीया था कहीं वहीं तो रसपान नहीं कर रही हूँ एक आह सी निकली। तब तक सुनसान सी जगह एक दो लोग कहीं दूर

पहाड़ियों पर दिख रहे थे, वहीं पर डॉ0 माथुर ने गाड़ी रोकी और उतर कर मेरा हाथ पकड़ते हुए एक समतलनुमा मंदिर में ले गये, वहाँ हम दोनों ने दर्शन किया सामने लगे पटियादार पत्थरों पर बैठ गये, दूर दो पहाड़ियों के बीच एक नदी दिखाई दे रही थी बोले देखो यह मेरा खेत है वहीं जो झोपड़ी दिख रही है, वह अपने लिए बनवाई है, मैंने पूछा इस पहाड़ को आप खेत कह रहे हैं। हां ये बालू की पहाड़ियां हैं इसी पर घर भी बनता है और खेती भी होती है। झोपड़ी यहाँ क्यों? कभी-कभी घर परिवार में रहकर भी व्यक्ति अकेला महसूस करने लगता है, तब उसे एकान्त चाहिए उसी दिन का इन्तजार कर रहा हूँ, कैसा लगा? आज तो नहीं किसी दिन उसको तुम्हें नजदीक से दिखाऊँगा, आज सिर्फ तुमसे बात करना चाहता हूँ जी भरकर और मेरे अतिनिकट बैठकर बोले बिन्दु केवल एक ही अपेक्षा करता हूँ तुमसे सब कुछ भुलाकर लेखन पर ध्यान दो कहानी, कविता निबन्ध और संस्मरण चाहे जो लिख सकती हो लिखो, छपवाने की जिम्मेदारी मुझे सौप दो मैं शिवानी की तरह मशहूर लेखिका के रूप में तुम्हें देखना चाहता हूँ इसके लिए तुम्हे दृढ़ संकल्पित होना होगा, यह मेरी इच्छा है पूरी करोगी न? मैं वह सब करना चाहता हूँ तुम्हारे लिए जो तुमसे पीछे छूट गया है। मैंने कहा क्या मैं लेखिका बन सकती हूँ। हाँ लेखिका तुम अभी भी हो यह कहो कि चर्चित लेखिकाओं में तुम्हारा नाम कब लिखा जाएगा मैं हँस पड़ी आप क्या-क्या सोचते रहते हैं, बिल्कुल सच कहा तुमने मैं 24 घंटें में 4-5 घंटे सिर्फ तुम्हारे बारे में ही सोचता रहता हूँ। परिवार की जिम्मेदारी मेरी पहली प्राथमिकता है। अपने रिश्ते को छोड़कर एक पल भी मैं नहीं जी सकता यूं कहने को रिश्ते ही मेरी जिन्दगी हैं उसके बावजूद मैं तुम्हें स्नेह करता हूँ जिसका अक्षय स्रोत कभी चूक नहीं सकता। क्या आपको अपने पर इतना भरोसा है। मेरे अपने इतिहास को जाने बिना आपका यह निर्णय कहीं गलत साबित हो जाय तो हम दोनों को अतिशय पीड़ा होगी और अब जो पीड़ा जन्म लेगी उससे उबर पाना नामुमकिन है। खैर मैं इतना जरूर कहूंगी कि जो लेखनी मृतप्राय हो गयी थी उसे पुनः जाग्रतावस्था में लाकर साहित्य की दिशा में एक सार्थक रचना कृति समाज को सौपूंगी आपकी इच्छा भी पूरी हो जायेगी मेरी कल्पना को एक रूप भी मिल जायेगा बशर्ते मैं जितना या जो कुछ जानती हूँ व मात्र रेत के घरौंदे की तरह ही ओजपूर्ण है जो

नहीं जानती वह सामने ज्ञान का अथाह सागर है यह जानते हुए अपनी प्रबल प्रेरणा के साहित्यिक विधा को समझने की दिशा में आगे बढ़ रही हूँ और धीरे-धीरे ऐसा महसूस होने लगा है कि मैं अपने को जितना बांधने की कोशिश कर रही हूँ उतना ही मुक्ति का एहसास तीव्र होता जा रहा है। डॉ. माथुर मेरी बात लगता है बड़े ध्यान से सुन रहे थे तुरन्त पूछे कैसी मुक्ति? यह शब्द चौंकाने वाला है तुम स्पष्ट करो। मैंने कहा आपका सम्बोधन अच्छा लगा बिन्दुजी से आज आप अपनत्व भरा शब्द तुम का प्रयोग करके मुझे अपने करीब ला दिये मन स्वीकार करने लगा है क्या? हम दोनों एक दूसरे के अन्तरंग है। अपने नई प्रणय की इस थाती को संभाल पायेंगे, हां बिन्दु संभाल पायेंगे अगर तुम साथ दोगी तब मैंने चुप रहकर सहमति जता दी। अब क्या क्रमशः जिन्दगी के आायम बदलते चले गए किताबें छपने लगी उन्होंने मेरी एक किताब का अनुवाद नेपाली में किया ताकि हिन्दी भाषी लोगों के अतिरिक्त सिक्किम प्रान्त के लोग मुझे जानने समझने लगें, मेरी प्रगति के वह साधक बन गए मेरी चर्चा आम होने लगी। एक दिन बड़े भावुक होकर बोले आज मेरे घर चलो मेरे हां और ना कहने का सवाल ही नहीं खड़ा होता, वह तुरन्त निधि को बुलाए और अपने घर के लिए रवाना हो लिए शहर से 30-40 कि.मी. दूर पक्यूम एक जगह थी छोटा कस्बा वहां वैसी ही पहाड़ियों पर बसा शहर था, वहीं उनका घर था। रास्ते में बारिश होने लगी अति वृष्टि की तीव्रता बढ़ती जा रही थी बिजली कड़कने लगी ओले पड़ने लगे गाड़ी रूकी मुझे बारिश में भींगना अच्छा लगता है। मैंने तुरन्त निधि से पूछा मैं नीचे उतरकर ओले बीन लाऊँ उसने कहा दीदी भींग जायेंगी ठंड ज्यादा है। वहां के लोगों के लिए वृष्टि आम बात है। ये सुनकर डॉ. माथुर ने शीशे के बाहर हाथ निकाल कर ओले उठा लिए और अपने हाथों को मेरी तरफ बढ़ा दिया मैंने ओलों से खेलना शुरू किया जैसे एक अबोध बाल मन अपने खेल में रम जाता है। सबसे बेखबर डॉ. माथुर निधि से कह रहे है निधि दीदी को देखो बच्चों वाली हरकत उसे भींगने दो पानी में, उसकी इच्छा एक बार पूरी तो हो जाने दो घर पर कपड़े बदल लेगी उसके कपड़े का पैकेट गाड़ी में है। उसने अभी-अभी खरीदा है। मैंने कोई सफाई न देकर गाड़ी का दरवाज़ा खोलकर बाहर आ गयी खूब खेला बारिश में। डॉ. माथुर गाड़ी से नीचे उतर कर बोले अब चलोगी भी और करीब आकर

बोले मन को मैंने भिंगोया था तन को इन्द्रजी ने तन-मन भींग गया कहते हुए मेरे गालों पर एक चपत लगा दी। यह उनका प्रणय अभिनय मेरे अन्तर्मन को छू गया मैं एक बारगी सिहर उठी। गाड़ी चल दी, घर आ गया हम तीनों उतरे ऊपर वही पहाड़ी सीढ़ियां बिल्कुल निधि जैसा घर यह पहाड़ का दूसरा घर था जिसमें मेरा जाना हुआ ऊपर पहुँचते रंग बिरंगी फूलों का बाग फलों के पेड़, हरियाली ही हरियाली मानो पूरे गैंगटोक शहर की हरियाली एक जगह एकत्रित कर ली गयी हो बड़ा ही मनोरम दृश्य मैं बहुत खुश थी तब तक एक बड़ी ही सुन्दर सुसज्जित सुघड़ सी महिला दिखी बोली आइए बिन्दुजी मैं तो इनको कितने दिनों से कह रही थी आपको बुलाने को लेकिन वही इनका समयाभाव ये घर में ही मेहमान की तरह आते हैं। बहुत अच्छा लगा आपसे मिलकर डॉ. साहब आपकी बहुत तारीफ करते हैं हम दोनों ने हाथ जोड़कर नमस्ते किया और सोफे पर बैठ गयी संकोच का भान हो रहा था क्योंकि मैं बिल्कुल भींग गयी थी। डॉ. माथुर घर में कपड़े बदलने चले गए ऐसा महसूस हुआ अन्दर से सफेद कुर्ता पायजामा पहनकर ड्राइंग रूम में प्रवेश करते ही बोले (अपनी धर्म पत्नी से) वीणा बिन्दुजी का सामान गाड़ी में है, नौकर से मंगवा लो ये भींग गयी हैं तब तक नौकर पैकेट लेकर आ ही गया मैं पैकेट पकड़ कर खड़ी हो गयी वीणाजी बोली आइए आप यह मेरा घर है। ये मेरा कमरा, यह बच्चों का कमरा, ये डॉ. साहब का कमरा, पहला कमरा डॉ. साहब का है मैं उन्हें देखी वे समझ गयी पूछ रही हूँ मैं कपड़े कहां बदलूं वे डॉ. साहब के कमरे में ले गयी बाथरूम का दरवाजा खोलकर बाहर चली गयी। मैंने बाथरूम में पैकेट खोला उसमें मेरी साड़ी का पूरा एक सेट तैयार था इतना ही नहीं मेकअप के भी सामान थे मैं मन ही मन मुस्कराई खैर जल्दी से साड़ी बदलकर बाहर निकली जैसे यह मेरा ही घर है और अपने ड्राइंगरूम से तैयार होकर आई हूँ। निधि ने तपाक से बोला दीदी बहुत प्यारी साड़ी है और मैचिंग की लिपिस्टिक भी, मैं हंसकर टाल गयी। अब हम दोनों का परिचय, तकरीबन सभी पहले से परिचित थे देखा देखी आज हुयी एक गरमा गरम चाय पीने की पेशकस वीणा जी ने किया सभी राजी हो गए काफी ठंड थी यहां के लोग तो इस मौसम के अभ्यस्त हैं मुझे ही अभी एडजस्ट करने में दिक्कत महसूस हो रही थी। तब तक नौकर ड्राइंगरूम में चाय रखा हम चारों ने खूब इन्ज्वाय करते हुए चाय

पी, डा0 साहब उठे घर के अन्दर जाने लगे और वीणा जी से कहा ये मेरी खास मेहमान है इन्हें अपना घर दिखा दूँ। डॉ. साहब मैं आपको अपना घर दिखा चुकी हूँ आज प्रसिद्ध लेखिका को अपना घर दिखाऊँगी। आइए बिन्दुजी आप मेरे साथ चलिए मैंने प्रवेश किया घर नहीं यह तो किला था पहली बार मैंने सोचा यह तीन चार कमरे का फ्लैट है। एक से एक बेशकिमती सामानों से सजा भारतीयता का बोध कराता पुस्तकों का संग्रह यह बता रहा था कि डॉ. माथुर बहुत पढ़ते हैं और अन्य विषयों के प्रति विशेष रुचि है। एक आदमकद प्रतिमा विवेकानन्द और मालवीय जी की थी यह देखकर मन प्रसन्न हुआ तब तक देखा रविन्द्र नाथ टैगोर की प्रतिमा और एक बड़ा सा हाल जिसके बाहर लिखा था? रविन्द्र नाथ संग्रहालय? मैंने अन्दर प्रवेश किया जैसे लगा मैं शान्तिनिकेतन के प्रांगण में खड़ी हूँ बंगला साहित्य भरा पड़ा था एक कमरे में संगीत शास्त्र के बहुतायत वाद्य थे मैंने पूछ ही लिया वीणाजी आप की रुचि किसमें है लिखने या गाने बजाने में वे कोई उत्तर न देकर डॉ. साहब को देखने लगी, डॉ. साहब ने कहा इनकी रुचि का अन्दाजा तो मैं इतने साल साथ रहकर नहीं लगा पाया आपको एक दिन में कैसे लगेगा। तपाक से निधि बोली दीदी भाभी की रुचि सिर्फ भइया में ही रहती है। इनको जो पसन्द है वही इनकी पसन्द बन जाती है। उन्होंने हमसे भी पूछ लिया बिन्दुजी आपको क्या पसन्द है। गाना गाना और गाना सुनना सभी लोग हंस पड़े एक को गाना गाना था दूसरे को गाना सुनना था दो श्रोता और भी है। फिर संगीत सभा बैठ ही जाय वीणाजी बहुत अच्छा बोलती हैं। मेरा मन कैसिनों को देखकर अपने को रोक नहीं पाया प्रणय निवेदन कर ही बैठी- तुमको हो जो पसन्द वही बात करेंगे, दिन को दिन और रात को रात कहेंगे। अब सुनने की बारी आयी! डॉ. माथुर को गाना था वह थोड़ा सकुचाये मेरी तरफ नजर बचाकर देखा शायद मेरे भाव को पढ़ना चाहते थे क्योंकि अति संवेदनशील व्यक्ति हैं। फिर गाया - कहीं एक नाजुक मासूम लड़की बहुत खूबसूरत मगर सांवली सी ....
तोरा मन दर्पण कहलाए .... गाना सुनते-सुनते मेरे आंसू निकल आए बहुत ही कशमकश सुर और ताल में भरे थे काश हम दोनों अकेले होते यह एक सपना था। सभी ने तालियां बजायी मैं चुपचाप देखती रह गयी निधि ने पूछा क्या सोच रही हैं दीदी तब तक वीणाजी ने कहा यह कवि और लेखिका

का कोई ठिकाना नहीं है। कब सो जाते हैं, कब जग जाते हैं, कब दिन को रात कह दें, कब रात को दिन कह दें, जब चाहे चांद और सूरज को बुला लेते हैं। जब चाहे चांद पर पहुँच जाते हैं। बस, बस करो वीणा तुम तो साहित्यकारों की समीक्षा करने लगी। अरे? मेरी आज अतिथि हैं बिन्दुजी और तुमने आतिथ्य का कोई इंतजाम नहीं किया। मैंने कहा इस महल के मालिक का यह शब्द किस आतिथ्य से कम है जो खुद ही सत्कार कर रहा हो। सब हंस पड़े अब हम लोगों को चलना चाहिए क्योंकि अतिथि अगर देर तक रूकते हैं तो आगत-स्वागत में कमी आने लगती है और वीणाजी उकता सी जायेंगी। वीणाजी ने कहा नहीं-नहीं मैं तो अभ्यस्त हूँ मास्टर की पत्नी हूँ ऐसे भी इनका स्वभाव मैं जानती हूँ ये मेलजोल कम लोगों से बनाते हैं पर जिनसे बन जाता है बिल्कुल घरेलू व्यवहार हो जाता है। और आप तो हम लोगों से अलग हैं ही नहीं, आप के बारे में मेरे बच्चे भी जानते हैं। डॉ. साहब ने कहा कि वीणा बिन्दु से मेरे पूर्वजन्म के रिश्ते हैं ऐसा मुझे लगता है। मैंने कहा जरूर भाभी कुछ ऐसा ही होगा नहीं तो यहाँ मैं किसी को जानती पहचानती तक नहीं थी, कोई मेरा अपना इस शहर में है ही नहीं उसके बाद भी मुझे कोई परेशानी नहीं हुयी लगा आप मेरे गार्जियन हैं निधि तो बिल्कुल छोटी बहन की तरह हर समय परछाई जैसे साथ रहती है। बड़ी विद्वान है बिल्कुल आध्यात्मिक इसके साथ मैं धर्म कार्य में विरत हो जाना चाहती हूँ निधि का साथ तो मुझे जीवन देगा यह सच में मेरी निधि है। अच्छा बहुत देर हो रही है अब हमको चलना चाहिए। डॉ. साहब ने ड्राइवर को बुलाया और चलने के लिए उद्यत हो गये वीणा तुम भी चलो बिन्दुजी को छोड़ आते हैं। सभी एक साथ निकले परन्तु डॉ. साहब मेरे साथ थे धीरे से पूछा आज रूकोगी नहीं? मैंने उनकी तरफ देखा उनकी आँखों में आंसू थे बहुत मायूस थे विदा करना उनकी मजबूरी दिख रही थी मैंने कहा रोना मुझे चाहिए और रो आप रहे हैं। वेदना एक महाकाव्य है जो विक्षोह को सहन कर सकता है उसका नाम अजर और अमर है। जैसे बुद्ध, कबीर, तुलसी आदि। वे दोनों प्राणी हम दोनों को छोड़कर चले गये। बातचीत में निधि ने कहा दीदी भइया आपको बहुत मानते हैं। मैं चुप थी वह बार-बार कहकर मुझसे क्या जानना चाहती है। मेरे मन में भारतीयता और आधुनिकता का जो संघर्ष चल रहा था वह मनःस्थितियां सूक्ष्म जटिल संवेदना है जो विशिष्टता और

मौलिकता में आज भी अकेली है। क्या इस प्रणय को क्लासिकी परिवेश, उदात्त भाव बोध या रोमाटिंक दृष्टि के आन्तरिक संगीत का नाम दिया जा सकता है, नहीं? मध्यम वर्गीय समाज की यह सबसे बड़ी त्रासदी है। सौन्दर्य से लबरेज प्रणय को भी मानवीय प्रवृत्तियां अस्पृश्य बना देती हैं। वैयक्तिक कुण्ठा और सामाजिक समस्याएं बढ़ जाती है जब एक स्त्री अकेली हो तो उसके जीवन में नीरसता और व्यर्थता की अभिव्यक्ति को लोग मान्यता देते हैं वैसे भी नारी को देवी, दासी और एक खिलौना से ज्यादा क्या समझा जाता है। यह आम धारणा है। आज युग परिवेश बदल रहा है धीरे-धीरे विद्रोह के स्वर मुखर हुए हैं, फिर भी मैं तो बन्द जुबान एक सभ्य समाज की उड़ान भरने वाली पद प्रतिष्ठा परक नारी हूँ। यह मैं निधि को कैसे समझा सकती हूँ वह अविवाहित प्रतिष्ठित पद पर रहते हुए बहुत संघर्ष करके परिवार को प्रतिस्थापित किया है। एक दिन मैंने कहा निधि मैं अब अकेले रहूँ सभी लोग परिचित हो ही गए हैं गैंगटोक ही शिफ्ट हो जाती हूँ। दीदी आप क्या बोल रही हैं, मैंने तो यही सोचा कि चलो दीदी का साथ मिल गया मेरा भी अकेलापन दूर हो गया और मुझे एक पथ प्रदर्शिका का सरंक्षण प्राप्त हो गया दीदी आप से अलग मैं नहीं रह सकती आप भले ही अलग होने की सोच लो। फिर मेरे गोद में सिर रखकर खूब रोने लगी अन्त में मैंने कहा चलो आज के बाद मैं कभी नहीं कहूंगी और हम साथ-साथ रहेंगे। अच्छा? चुप हो जाओ इतने समय में कभी निधि को रोते नहीं देखा था चलो युनिवर्सिटी चलना है। तुम्हें भी अपने ऑफिस जाना है हम दोनों निकल पड़े, आज क्लास लिया बच्चों ने एक्स्ट्रा क्लास लेने को कहा मैडम आपकी कई किताबें आ गयी है। एक तो नेपाली में छपी है मैंने पढ़ी। एक लड़की उठकर बोली मैडम आप मेरे घर चल सकती हैं मेरी मम्मी आप से मिलना चाहती हैं मैंने पूछा क्यों उसने कहा आपकी एक कहानी पढ़ीं थी उसमें नारी पात्र का जो चित्रण है वह उनके किसी मित्र की कहानी है। अच्छा फिर कभी चलेंगे यह कहते हुए हमने बात समाप्त की। बाहर आयी देखा डॉ. माथुर बाहर खड़े मेरा इंतजार कर रहे थे फिर हम दोनों एकसाथ घूमने निकल गए। आज उन्होंने कहा चलो कहीं दूर चलते हैं आज ड्राइवर साथ नहीं था गाड़ी स्वयं चला रहे थे। मैं कार की अगली सीट पर बैठी थी मैंने कहा बड़ी दरियादिली दिखाई बिना बताए चुपके से खड़े थे क्या बात

है। उन्होंने कहा आज रात नींद नहीं आई, बहुत देर तक एक रिसर्च पेपर लिखता रहा फिर तुम्हारे बारे में सोचता-सोचता सो गया और अभी उठा हूँ तो सीधे तुम्हारे पास चला आया क्यों आप विभाग नहीं गए नहीं...... बहुत जोर देकर यह बात कही, मैं हंस पड़ी। बोले चलो नथुला चलते हैं। मैंने कहा नथुला एक शहीद की कहानी सुनी है क्या सच है। उन्होंने कहा हाँ सच है। उस शहीद की आत्मा आज भी निवास करती है वह चीन की लड़ाई में मारा गया था लोग आज उसका दर्शन करने जाते है। सरकार का लाखों रुपया आज भी उसके ऊपर खर्च होता है। एक कमरे में कुर्सी पर उसकी प्रतिमूर्ति को ड्रेस पहनाकर बिठाया गया है। नाश्ते खाने का उचित प्रबन्ध होता और साल में एक बार बाई एयर उसको उसके गांव ले जाया जाता है। हेलीकाप्टर से जवान जाते हैं। फिर कुछ देर रुक कर आते हैं। सोचो उसकी सच्ची देशभक्ति उसे अजर अमर कर गयी अरे हाँ एक किवदन्ती भी कही जाती है अगर किसी के पैरों में दर्द हो तो वह जो चप्पल जूते पहन कर जाय उसे वहीं छोड़कर चला आए तो उसके पैर का दर्द ठीक हो जाता है। फिर हम दोनों चुप हो गए गाड़ी ज्योंही नथुला क्षेत्र में प्रवेश करने वाली थी डॉ. माथुर ने दूसरी तरफ मोड़ ली मैंने कहा क्या हो गया अरे वह डाक्टर का सर्टिफिकेट चाहिए तुम्हारे लिए परमीशन लेना पड़ता है। शारीरिक रूप से तुम स्वस्थ हो कि नहीं वह तो तुमने कराया नहीं चलो हनुमान टांक चलते है। फिर हम दोनो ने हनुमान मंदिर का दर्शन किया और एक पार्क में बैठ गए मैंने पूछा हम दोनों के बारे में लोग क्या सोचते होंगे इस विषय को छोड़ दो लोग कुछ भी सोचें तुम मेरे परिप्रेक्ष्य में क्या सोचती हो यह मेरे चिन्ता का विषय है। तो सुनो! देश दुनिया से बेखबर होकर मैं आपको एक नया नाम देना चाहती हूँ क्योंकि आपका पुराना परिचय बहुत कुछ याद दिला देता है जो मन को भेदता रहता है। आपने अज्ञेय को पढ़ा है, उनका जन्म का नाम सच्चिदानन्द था उनके पिता का नाम हीरानन्द था बाद में उनको लोग सच्चिदानन्द हीरानन्द बोलने लगे कम उम्र की आयु में उनका उपनयन संस्कार किया गया जिसमें उनका नाम सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्सायन हो गया अब क्या इस नाम से बड़ी ख्याति प्राप्त हुयी उन्होंने स्वतन्त्रता की लड़ाई में बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया। एक उनके परम मित्र ने उनका एक लेख हंस में छापने के लिए प्रेमचन्द को दिया प्रेमचन्द ने उनसे पूछा किस नाम से

छपेगा उन्होंने कहा अज्ञेय नाम से छाप दीजिए तब से आज तक सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्सयासन 'अज्ञेय' हो गये और अब सिर्फ लोग अज्ञेय ज्यादा पुकारते, समझते और बोलते हैं। इतना बड़ा नाम लघु आकार में प्रसिद्धि प्राप्त कर लिया, तो तुम मुझे क्या कहना चाहती हो मैंने कहा अर्जुन। बड़ा प्यारा नाम है अब मेरी जीत होगी तुम तो सचमुच प्रसिद्ध लेखिका के रूप में जानी जाओगी तुम्हारी किताबों को मैं कई भाषाओं में अनूदित कराऊँगा और सुनो तुम लिखो किरातार्जुनीयम संक्षिप्त परिचय क्योंकि यही वह जगह है जहां की कहानी उक्त पुस्तक में वर्णित है, अगर किरात जन्म स्थान का पता चल जायेगा तो वह तीर्थ स्थल के रूप में प्रमाणिक प्राचीन सुप्रसिद्ध आध्यात्म नगरी होगी। तुम्हारा नाम सिक्किम प्रान्त में तो प्रसिद्धि प्राप्त करेगा ही देशभर में एक महान लेखिका के रूप में चर्चित हो जायेगा। मैं चुपचाप उनके चेहरे का भाव देख रही थी मेरी इतनी चिन्ता। अधिकतर पुरुष स्त्री को आगे बढ़ते देखना पसन्द नहीं करते। वह अपने छत्रछाया में पलते बढ़ते देखकर गौरव का भान करते है। अद्‌भुतं आश्चर्य एक मेधावी पुरुष मेरे नाम मेरी उन्नति के लिए इतना लालायित है। जैसे यह सब उसकी अपनी शोहरत हो। काश आपका यह सपना मैं पूरा कर पाऊँ फिर क्या था मैंने किरातार्जुनीयम की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि लिख कर जानी मानी लेखिकओं की श्रेणी में आ गयी साहित्य के क्षेत्र में लब्ध प्रतिष्ठित कथाकार समीक्षक के रूप में जानी पहचानी हस्ती हो गयी यह मेरी अनुपम कृति थी जो साहित्य के क्षेत्र में अलग काम था। प्रसिद्धि मिलती है तो व्यक्ति उतना ही झुक जाता है। बंगाल की खाड़ी से नथुला की ऊंचाइयों तक हिन्दी साहित्य में बहुत कम काम हुआ था बंगाल में बंगला साहित्य में अपना नाम अमर कर चुके रविन्द्र नाथ टैगोर के अलावा शरतचन्द्र, बंकिम चन्द्र चटर्जी के बाद की शृंखला महाश्वेता देवी प्रभाखेतान हिन्दी में अपना नाम कर चुकी थीं उसके बाद की श्रेणी में बिन्दुजी की चर्चा होने लगी परन्तु सिक्किम प्रान्त की साहित्यिक दशा बड़ी दयनीय थी यहां प्राकृतिक संपदा की कमी न थी प्राकृतिक सुषमा सुरम्य वातावरण सीधे-साधे लोग बाग, पहाड़ियों पर जैसे भगवान इन्द्र ने खुद बाग बगीचे लगा रखे हों और उसे प्रतिदिन सींचने का कार्य स्वयं अपने हाथों में ले लिया हो वैसे यहां एक प्रचलित कहावत है कि सिक्किम का दूसरा नाम इन्द्रकील है। बड़ी ही रमणीक

मोहक सुख और शान्ति का अद्भुत केन्द्र था सिक्किम परन्तु साथ ही हम हिन्दी भाषी लोगों के लिए मन में एक डर समाया हुआ था यहां कब क्या हो जायेगा कुछ कहा नहीं जा सकता। भूकम्प आना, बर्फ पड़ना, घरों का टूटना आम बात थी। यहां आग और पानी से खेलना घरवालों की चिन्ता बनी रहती थी वे मुझे हमेशा पत्र लिखते थे तुम वापस आ जाओ। मैं उन्हें अपनी बात कैसे बता पाती की यहां मेरी नौकरी भर नहीं हैं जो मैं छोड़कर चली आऊँ यहां मेरी जिन्दगी है। मेरा नाम किताबों में ही जीवित रहेगा जिसके प्रणेता का घर इन पहाड़ों पर बसे बाजारों में है मुझे तो सारा जहाँ यहीं नजर आता है। जैसे हिमालय पर जा कर साक्षात शिव का दर्शन होता है और वह व्यक्ति आध्यात्मिक यात्रा वही पूर्ण मानता है। वैसे ही मेरी पूर्णता के प्रतीक अक्षय शिलाखण्ड सम्पूर्ण आकाश से आच्छादित घनघोर घटाएं, ये नदियां, ये फूलों के बाग ये शिक्षा के विविध आयाम कलात्मकताओं से पूर्ण यह प्रान्त मेरी उन्नति मेरा जीवन मेरे सुख का अन्तिम पड़ाव है। जो मुझे भावनात्मक संबल देकर सुख के सागर में डुबो देता है। एक लेखक के लिए उसका नाम और प्रशंसा उसके जीवन का सम्पूर्ण उत्सर्ग हुआ करता है हम उत्सव धर्मी लोग है। हर क्षण को उत्सव में जीना चाहते हैं। आज मैं बहुत खुश थी यहाँ सनातन धर्म की परम्परा का एक किरात मंदिर स्थापित होगा जो बिल्कुल लुप्तप्राय (जाति एवं नाम) से हो गया था। समकालीन परिदृश्य में प्रमाणिकता का मिशाल बन गया। अभी मेरे पास कइयों बधाई पत्र आये थे जिसको मैं अकेले नहीं पढ़ना चाहती थी अर्जुन की प्रतीक्षा थी यह नाम हमारे उनके बीच की एक कड़ी नहीं बल्कि जीवन रेखा थी। आम जन एवं शोहरत के आगाज से आबद्ध डॉ. माथुर का प्रवेश, अरे! आप अचानक कैसे आ गए मैं अभी यह सारे पत्र इकट्ठे कर रही थी आपको पढ़ाने के लिए। अच्छा लेखिका जी अब तो आप सेलिब्रेटी हो गयी हैं। आज फुर्सत के क्षण है क्या? चलो आज तुम्हें पूर्व से पश्चिम सिक्किम, तमांग, सिंगताम, जोरथॉग घुमा लाता हूँ फिर हम दोनों लम्बी यात्रा पर निकल पड़े मैंने कहा निधि को साथ ले लें डॉ. माथुर ने कहा आज हम और तुम तीसरा कोई नहीं मैं हंस पड़ी उन्होंने पूछा क्या बात है? मैंने उत्तर दिया जिस तीसरे व्यक्ति से आप बचना चाहते हैं वे ही तीसरे व्यक्ति के रूप में जीना है। आपका यह खेल कहीं आप को थका तो नहीं देगा। नहीं तुम ऐसा

कैसे सोच सकती हो। साहित्यिक गतिविधियों से मानव का उन्नयन हो तो परिष्कार स्वयं हो जाता है। जीवन को उत्सव मानकर खेल भाव से जीवन जीना ही व्यक्ति की उद्दाम इच्छा होनी चाहिए। आप अज्ञेय को ध्येय में रखकर मुझे प्रसाद के नाटकों का लेखा-जोखा समझा रहे हैं। काश ऐसा ही होता जो आप अभी-अभी बोले अज्ञेय भी परिणय से प्रणय की ओर बढ़े थे और आप भी अगर परिणय से प्रणय के पथ पर चल रहें हैं तो पीछे छूटती जिन्दगी का पश्चाताप तो नहीं करोगे। मेरा प्रणय परिणय को सींचेगा। अज्ञेय को परिणय से विरत होना पड़ा प्रणय के साथ चलने के लिए। तो आप यह मानते हैं कि मैं इन विचित्रताओं में जीऊँगी। हाँ यह बिल्कुल सच और उसी तरह सच है जैसे चांद और सूरज, हवा और पानी। क्यों? आपको मेरे पर इतना भरोसा है। नारी मन है स्त्री परक सोच है। कभी इतर जीने लगूंगी तो........... नहीं कभी ऐसा नहीं होगा मैं तुम्हे भली-भांति जानता हूं तुम भी अपना परिणय प्रणय की खातिर छोड़ा है और जो प्रणय बन्धन तुम स्वीकार नहीं कर पायी उसके पीछे तुम्हारा धर्म, संस्कार, नैतिकता, सभ्य समाज की वह सारी अवधारणाएं तुम्हारे सामने मुँह बाए खड़ी थी जिसका सम्मान तुमने अपने सनातनी विचारधारा की चादर ओढ़कर किया। अपने अन्तस में प्रेम दीप की ज्योति जलता हुआ देखकर भी बाह्यान्तर से बिल्कुल निष्कलुष, निष्कपट, निष्चल, भाव से प्रणय को परिणय में बंधते देखा था मैं उसका साक्षी रहा हूँ। अचानक मैं फफक-फफक कर रो पड़ी वह मेरा हाथ थामे अपने पास बिठा लिये बोले आज तुम खूब रो लो मैं तुम्हे संभाल लूंगा बहुत आंसुओं को तुमने पीया है, आज मुझे पीला दो मैं वह सारा पानी सोख लूंगा, जैसे तपती धरा पर आकुल मेघ की अनवरत जलधारा भी कम पड़ जाती है। तुम्हारे मन में पल रही दिग्भ्रम की वह सारी लड़िया मैं एक-एक करके तोड़ देना चाहता हूँ। अपने जीवन को रेगिस्तान बना कर भी विनोदी स्वभाव से क्या मिला तुम्हें? लोगों को भ्रम था कि इस रेगिस्तान के बीच भी इतनी हरियाली और पानी की चमक है। इस भार से तुम्हें मुक्त करना चाहता हूँ, कुछ हद तक मैं अपने लक्ष्य को पूरा कर लिया तुम्हारे नाम की चर्चा अब आम हो गयी है लोग तुम्हें एक लब्ध प्रतिष्ठित साहित्यकार की श्रेणी में मानते हैं। आगे और उपाधियों से नवाजेंगें क्यों कि यह सृजन की अपनी उपादेयता है। यह एक अनवरत प्रक्रिया है। इस

यात्रा में अनन्त संभावनाओं की खोज पूर्णता का प्रस्फुटन है, जो रचनात्मकता की भूख को तृप्त करता है, हम सृजन के बीज को बिम्बों में नहीं बांध सकते उसका पर नहीं काट सकते कल्पना की उड़ान को नहीं रोक सकते क्योंकि कल्पना यथार्थ की विरोधी नहीं (एक्सटेंशन) बल्कि उसका विस्तार है। अगर हम मन से यह न सोचे होते कि इन पक्षियों की तरह मेरे पंख होते तो मैं भी उड़ सकता था कवियों की कल्पना संगीत में साकार रूप से दिखती है, पंख होती तो उड़ आती रे ....कल्पना परक मन सपने न बुना होता तो आज हवाई जहाज का आविष्कार नहीं होता। आज मेरे तुम्हारे विषय में जानने सुनने की प्रक्रिया का अद्‌भुत कुशलता पूर्वक व्याख्या कर गया मुझे खुद पर आश्चर्य हो रहा है। यह कहते हुए मेरे चेहरे को अपने दोनों हथेलियों में भरकर ऊपर उठाने लगे मैं बिल्कुल निढाल सी पड़ी थी। उठ बैठी न चाहकर भी कई प्रश्न मेरे मन मस्तिष्क में बिजली की तरह कौंध रहे थे। वे कांप गये मेरी आँखो में झांकते हुए बोले कुछ पूछना चाहती हो, कुछ सुनना चाहती हो तो सुनो! मैं 1985 में तुम्हें उस दिन देखा था शिलांग में जिस दिन तुम प्रणय का अप्रतिम उदाहरण लग रही थी तुम्हारे बारे में मेरे को फूकन दा ने बताया, फिर वही पिछली कहानी........................मेरा मिलना मेरा बिछड़ना एक संवेदनशील व्यक्ति के लिए दुखान्त नाटक जैसा है। प्रणय परिचय का मोहताज नहीं होता। तुम्हारा मेरा कृष्णा का परिचय फूकन दा के घर में हुआ था। तुम चली आयी परन्तु मैं कृष्णा एक अच्छे दोस्त बन गये। फूकन दादा से मेरी बहन की शादी हुई है मैं छुट्टियां अक्सरतः वहीं बिताता था। मैंने जब सारी बाते कृष्णा की जुबानी सुनी तो ह्रदय कांप गया शरीर थरथराने लगा मन ही मन सोचा काश इसकी जगह मैं होता तो तुम्हें अपने पास से कभी जाने न देता यह कैसे सब हो गया। तुम जानती हो मैं तुमसे शादी करना चाहता था जब कृष्णा की शादी हो रही थी मैं उसी दिन तुमसे बताना चाह रहा था किन्तु तुम मुझसे कभी बात नहीं की थी तुम मुझे पहचानती तक नहीं थी। उसके दोस्तों की एक लम्बी फेहरिस्त थी उसी भीड़ का मैं एक आदमी था और मेरी आँखे उस भीड़ में सिर्फ तुम्हें तलाश रहीं थी। परन्तु न जाने कब और कहाँ किसके साथ तुम चली गयी मैं खोजता रहा मन की बात कभी जुबान पर नहीं ला पाया। 5-7 साल गुजर गये घर वालों ने बहुत दबाव बनाया मैंने शादी कर ली .... फिर वही

राम कहानी मेरी नियुक्ति सिलचर यूनिवर्सिटी में हुयी थी, फिर मैंने सिक्किम ज्वाइन किया मैं सलेक्सन कमेटी का मेम्बर था सभी विषयों के फार्म एक बार सामने से गुजरते हैं। तुम्हारा फार्म मेरे सामने ज्यों आया मैं फोटो देखकर एक बारगी उछल पड़ा तुम्ही हो यह विश्वास नहीं हो रहा था फिर भी तुम्हारा फार्म नं0 विभागाध्यक्ष को दे दिया था। तुम इण्टरव्यू देने आयी परन्तु मैं न मिल सका दूर से देख लिया था अभी भी मन मानने को तैयार नहीं हम दोनो इतने दिन बाद मिलेंगे। नियुक्ति के बाद मैंने फोन से कृष्णा को बता दिया वह मुझसे क्या कहा सुनोगी डॉ0 माथुर तुम उसका ख्याल रखना बहुत जिद्दी और अक्खड़ स्वभाव है। वह अपने ही हाथों अपने खुशियों का गला घोट देती है। लेकिन स्नेह के एक पल को वह कभी नहीं भूल सकती उस स्नेह के सागर में डूबते चले जाना उसका मूल स्वभाव है मेरे से ज्यादा उसको कौन जान सकता है मेरे दोस्त तुम मेरी थाती को सम्भाल के रखना मैं तुम्हारा ऋणी रहूँगा। मेरा गला रुंध गया अवरूद्ध कंठ से अभिव्यक्ति सम्भव नहीं थी कि बिन्दु तुम्हारी थाती नहीं मेरी अपनी श्रद्धा है उससे मैं अगाध प्रेम करता हूँ। बिन्दु सुन रही हो ना सुनो सुनो........मैं कुछ कहने सुनने की स्थिति में नहीं थी सिर्फ मैंने इतना ही कहा सुन रही हूँ बेहद सृजनशील व्यक्ति निकले खुद को बदल देने की अद्भुत क्षमता है। निरन्तर गतिशील और परिवर्तित होने की इस कला के आगे सम्पूर्ण कलाएं बासी जान पड़ती हैं। मनोभावों का मानवीकरण सभी सीमाओं का अतिक्रमण करता हुआ भी सभ्य मानव समाज की उच्चता का प्रतीक है। उच्चकोटि के सर्जक अनुभवी रणनीतिकार खुद को चुनौती देते हुए अलीबाबा से अर्जुन की भूमिका बखूबी निर्वाह किया। सम-सामयिक युगीन परिस्थितियों के युग पुरुष युग प्रवर्तक आपसे मैंने बहुत कुछ जाना परखा सीखा। मानव ईश्वर को क्यों पूजता है क्योंकि वह जानता है कि मेरे अच्छे बुरे की पहचान तथा कमियों को दर्शाने का कार्य रोज ईश्वर ही किया करते हैं और उसे नित नवीन पुनीत कार्य करने की प्रेरणा भी ईश्वर के द्वारा ही मिलती है। पूर्वजन्म के रिश्ते क्या ईश्वरीय देन हैं जो आप अधूरे व्यक्तित्त्व को बदलकर पूर्णता प्राप्त करने का मन बनाया अपितु यह जरूरी नहीं कि वह सम्पूर्णता को प्राप्त कर ही जाए। महत्वपूर्ण यह है कि वह जोखिम भरा कदम उठाने का साहस और परिकल्पना की पराकाष्ठा जिसके हारने जितने का गम नहीं बल्कि

हर चुनौती को स्वीकार करना उसकी अपनी दृष्टि है। यह जानते हुए कि जब-ज़ब सुख अपनी मुट्ठी में बन्द करना चाहा वह मुझे धता बताकर छूमंतर हो गया और मैं चुपचाप संवेदना की दुहाई देती थक हार कर मोम जैसे मन को लौह रूपी कवच का संरक्षण देकर एक रस समभाव से बनावटी फूलों की खुशबू का जी भरकर आनन्द लिया खूब जिया-खूब जिया अर्जुन आज भी वही खुशबू, वही खुशी, वही एहसास। बस बदला तो स्थान, व्यक्ति, विचार जो हम आज जी रहें हैं, कल जीयेगें विशुद्ध कल्पनाओं के साथ जीर्ण कोरे कागजों में नितान्त अकेले जल बिन मछली की तरह तड़पते हुए।

□□□

जिन्दगी और दर्द

कुछ क्षण आते हैं, जातें हैं, कुछ क्षण अनन्त बन जाते हैं। आज अकेली मैं बैठी थी, अचानक याद आया कविता से मिलना है। मैं चल पड़ी। छुट्टी का दिन था कविता और उसके पति घर पर ही थे मैंने कालबेल बजायी नौकर ने गेट खोला मैं ड्राइंग रूम में बैठी तब तक कविता ने अपने बेडरूम से लावाज लगायी इधर ही आ जाओ मैं पहुँची वह किसी से फोन पर बात कर रही थी मेरी भी बात करवायी, हम एक दूसरे से परिचित हुए। बातचीत अक्सरतः हो जाया करती थी। आज प्रातः मैं कान्ता भारती का उपन्यास "रेत की मछली" पढ़ रही थी, उसमें जो नारी पात्र का चित्रण था वह हमसे मेल खाता था मैं भाव विभोर? उपन्यास पढ़कर ही ऊँठूंगी। ऐसा सोचकर पढ़ने में मग्न हो गयी, भाषा इतनी सशक्त थी कि घटनाएं आँख के सामने हो ऐसा भान हो रहा था, पुरुष पात्र का कथन भ्रामक होते हुए भी समकालीनता के निकट था। मैं पुनः विगत की यादों में गुम हो गयी। एक दिन छत के मुंडेर पर बैठी, मैं, इन्दिरा, विभा, पुष्पिता चाय पी रही थी, तभी गेट मैन ने आवाज लगायी बहन जी आपका फोन आया है। मैं दौड़कर कामन रूम में गयी, फोन उठाया एक अजनबी की आवाज कहिए कैसी हैं नमस्कार मैं थोड़ी सकुचाई फिर उन्होंने रोज बात करने की अपील की, मैं भी मान गयी, हम दोनों बात करते थे। सितम्बर के महीने में एक दिन मैं और कविता दिल्ली जा रहे थे। रास्ते में फोन आया आप अकेले हो या बड़े गुरु जी (यानि कविता) साथ हैं। मैंने फोन रख दिया। तब से बातचीत बन्द। मैंने दिल्ली की कार्यवाही पूरी की और वापस इलाहाबाद आ गयी। रूटीन के कार्यों में लिप्त एक कविता संग्रह लिख रही थी। ऑफिसियल कार्यों की व्यस्तता के बाद मन को एक जगह सपाट बयानी करने की खुली छूट थी, कविता के माध्यम से। उसी वक्त कहीं दूर दराज से एक रोमानी आस्था ने आवाज लगायी मैं तुम्हें बहुत स्नेह करता

हूँ, मैंने पूछा ओ कैसे उसके पीछे की कहानी मिलकर बताऊँगा। अब बात आगे बढ़ गयी थी। एक रात फोन की घंटी बजी, और लगातार बजती ही रही न चाहते हुए भी फोन रिसीव करना पड़ा प्रणय पीड़ा की मधुर वाणी से मेरा रसासिक्त मन भावों से भर गया, सोची जी भर के देखूँ लोग कैसे जीवन को पीते हैं। मैं ओशो के दर्शन से प्रभावित हो गयी और दूरसंचार के तरंगों में ओशो की प्रसिद्ध पुस्तक संभोग से समाधि तक पढ़ डाली, अब क्या था? सारे बन्धन टूट गये और गूढ़ता का प्रसंग मन में हिलोरें लेने लगा। पौरूष मन भला क्यों चूकता विदेश के गलियों में भ्रमण पर निकला यायावरी तबीयत और मिजाज का बादशाह बड़ी दृढ़ता से बोला मैं आज ही तुसमे मिलने आ रहा हूँ। मैं अचम्भित उच्छवास भरने लगी यह क्या हो गया लोगबाग क्या कहेंगे? पास पड़ोस गली मोहल्ले वाले मुझे कहीं देख न लें। मेरे सम्मानित जीवन शैली पर समाज की क्रूर दृष्टि न पड़ जाय। परन्तु बात बन सी गयी कविता उस समय शहर से बाहर थी मैंने कह दिया कोई मेरे से मिलने आ रहा है तुम्हारे घर में रहेंगे लेकिन यह नहीं बताया कि कौन आ रहा है। खैर वह क्षण आया जब वह आये हम दोनों एक साथ अनजानी सूरत और सीरत से परिचित हुए लेकिन बार-बार यह लग रहा था कि हम दोनों एक हैं और न जाने कितने दिनों से साथ रह रहे हों शाम ढ़ल चुकी थी रात अपने पांव पसार चुकी थी मैं छत पर उन्हें बगीचा दिखाने गयी वहाँ पूजा घर था वह मेरा हाथ पकड़े और भगवान के सामने बैठ गये अपने हाथ से प्रतीक चिन्ह की तरह प्रतीक भावों का सिन्दूर मांग में भर दिया और आदेश दिया पैर छूओ मैं उठी और पांवों के तरफ झुक गयी- स्पर्श मात्र से सारा शरीर रोमांचित हो उठा था क्या यह सच है यह कोई मानव है या देवता जिसने कुछ जाना नहीं पहचाना नहीं और जीवन का यह अक्षुण्ण भार ढ़ोने को उद्यत है और मैं विरोध भी दर्ज नहीं करा पायी, बड़े जद्दोजहद के बाद मन एवं आत्मा की आवाज सुनाई देती है। शायद इसी दिन के लिए विगत की कहानी गढ़ी थी ईश्वर ने पुनः मैं एक बार जीवन के पिछले सोपानों पर चढ़ने लगी तब तक उसने आवाज दी जीवन में जो कुछ नहीं मिला था वह मैं सब कुछ तुम्हें दूँगा प्रेम रस से सीचूँगा जड़ों तक। मैंने कहा सूखी टहनियों में कितना जल डालोगे जो हरी कोपलें निकलेंगी। एक बार तूफानी हवाएं जिस जड़ों को अन्दर तक हिला देती है वह दिन प्रतिदिन सूखता ही

जाता है। नव पुष्पित पल्लवित होते बहुत कम देखा है। उसने तपाक उत्तर दिया तुम उसी कम में से एक हो। मैंने तुमसे कहा था न कि चाहे जैसा मैं रहूँ तुम्हें स्वीकार करना होगा तुम चाहे जैसी रहो मैं स्वीकार करूँगा। फिर यह बहस क्यों कर रही हो सब आगे के हालात पर छोड़ दो। मैं चुप? दो दिन में हम दोनों ने दो वर्ष जी लिया ऐसा मुझे भान हो रहा था असीम प्यार था बड़ा उत्सर्ग बड़ी कल्पना भावों के रेतीले बालुओं के खेत में सुगन्धित फूलों की हजारों पौध लग गये हों जिसकी सुगन्ध से सम्पूर्ण धरा सुवासित थी। पुनः विदा की घड़ी आयी, जीवन जीने की कला सिखायी। कई तुक बन्दियों को माध्यम बनाकर शब्दों का आदान प्रदान करेंगे। यूँ ही दिन कटते रहे कविता यात्रा से वापस आ गयी मैं मिलने की उत्कण्ठा से लबालब भरी हुयी उससे मिलने गयी मुझे उसे वह सारी बातें बतानी थी, क्योंकि पहले जान पहचान उनसे उसी की थी, मैं मिली और पूरी बात बता दी वह बहुत परेशान हुयी, परन्तु कारण जानकर खुशी हुयी वह भी मुझे बहुत स्नेह करती थी मैं भी उसे? इस बीच लोगों का कहना था कि क्या बात है दीदी आज कल कविता के साथ ही बातें करती हैं और बस फोन। हम लोगों के पास रह कर भी दूर हैं। मेरी एक शिष्या अवन्तिका हर दिन डायरी लिखती है। मैं अपने समय का कितना हिस्सा किताबों और शिष्यों के साथ बिताती हूँ और कितना कविता दीदी और यवनिका दीदी के साथ। हम दोनों ज्यादा बातें इसलिए करते थे कि बीच में उनकी बातें प्रेम के उत्सर्ग रस से भरी थी। उनके मिलने के बाद का प्रथम त्योहार दिवाली आ रही थी एक दिन कविता बोली इस बार हम लोग खूब धूमधाम से दिवाली मनायेंगे मैं भी मान गयी क्योंकि मेरा मनपसन्द त्योहार दिवाली है। कविता ने कहा मनपसन्द स्थान बताओ कहाँ चलोगी? मुस्कराते हुए मैंने कहा प्रिय का बसेरा ही सम्पूर्ण जहाँ हुआ करता है कविता? तो फिर अल्मोड़ा चलते हैं! एक दूसरे को देख हम दोनों हँस पड़े पर मन स्वीकार कैसे करें? न वे बुला सकते हैं न मैं जा सकती हूँ। खैर बात वहीं खत्म नहीं होती कविता बोली यह तुम्हारी पहली दिवाली है तुम कहो तो मैं उन्हें अपने घर बुला लूँ सारे जहाँ की सैर करा दूँ मैं सारी खुशियाँ तुम्हारी झोली में डाल देना चाहती हूँ और उसनें फोन करके दीवाली का आमंत्रण दे दिया वे अनजान की तरह मान भी गये दीवाली में पुनः उसके घर मैं मिली उसने परिचय कराया यह

नाटक था। बात धीरे-2 समझ में आ ही जाती है। उसके पति ने कहा लगता है तुम इन्हें बहुत दिनों से जानती हो कविता को सब पता था। हम (तीनों) एक साथ सोये और नवागन्तुक अकेले, प्रातः अलसुबह मैंने एक अद्‌भूत क्षण देखा वह कविता के बेडरूम के दरवाजे पर खड़े हैं। मुझे बहुत दुःख हुआ कच्चेपन के सम्बन्ध पर यह भी क्या जिन्दगी है, क्षण भर में ही मैंने आवाज दी आइये-आइये आप वहाँ क्यों खड़े हैं। अद्‌भुत दृश्य एक ही बिस्तर पर सब एक थे अच्छा लगा सम्बन्धों की प्रगाढ़ता का अद्वितीय आख्यान पौराणिकता लिए। अभी मन यह स्वीकारता तब तक खुशनुमा संगमरमर का महल धराशायी होता दिख गया मैं काँप गयी बिना कुछ बोले एक झटके में मैं कमरे से बाहर आ गई हृदय खण्डित हो गया क्या यह वही पौराणिक पुरुष हैं जो कविता के गोद में सर छुपाये चुपके-चुपके प्रेम का इजहार कर रहा था। नहीं ऐसा नहीं हो सकता? यवनिका की याद आयी यह बात किससे कहूँ! तब तक वह पुरुष संकोचवश मेरे पास आकर कई मनगढ़न्त बहाने बनाकर नयी कहानी सुनाने लगे मन तो औरत का ही न मैंने सोचा शायद यही सच हो और मैं धीरे से सहमति जताते हुए इस कहानी का पात्र बनने को तैयार हो गयी परन्तु मन कहीं न कहीं विकल था अन्तस जल रहा था। शायद मैं थकी-हारी, टूटी औरत थी जिसके मन पर बर्फ दर परत जमती जा रही थी, जिसे पिघलाने के लिए उसने जी तोड़ मेहनत की, पर मन को कैसे समझाऊँ, यवनिका से थोड़ी बातचीत की परन्तु क्या बोलूँ क्यों बोलूँ कविता से कुछ कहा नहीं, मेरे भावों के आरोह अवरोह से परिचित यवनिका पूछी क्या बात है आप परेशान हैं? उसे क्या समझाऊँ कि रेगिस्तान के तपती जमीन पर चलने वाले मुसाफिर को बूंद भर जल बावड़ी का भ्रम पैदा करें तो इसमें उसका क्या दोष? वह यही कहेगी इस भवंर में आप कैसे फंस गयी? अच्छा तो अब आई न रास्ते पर-त्रिया चरित्र .... वह तो पुरुष का होता है औरत मूर्ख बनती है, निष्कपट संवेदना के कारण। पर तुम तो चेतावनी दे सकते थे भीतरी सच..................। एक भयानक सच से कविता के घर पर मुलाकात हुयी थी, वेदना से विकल रात भर सोचती रही क्योंकि कल उन्हे जाना था निर्णयात्मक भूमिका में मैं नहीं थी, वह कविता के साथ पल भर जीने को लालायित थे। मैं अवाक? गूढ़ आत्मा का लहू जैसे पानी हो गया है। उस हालात को मुस्कराकर स्वीकार कर रही, बार-बार

यवनिका के शब्द मेरे कानों में सुनाई पड़ते रहे, "पुरुष और उसका छद्म वेश कभी साबूत रहने देगा औरत को" ....। आदमी अमानवीयता के कार्य से आत्मा का खून चूस लेता है और औरत पाल लेती है घोर कुण्ठा और हताशा। जानती हूँ? यवनिका से कहूँगी तो बहुत जोरों से हंस पड़ेगी - जरा सी चूक हुयी नहीं कि गिर पड़ी चारों खाने चित्त ....फिलहाल मैंने कह ही दिया सुनो! यवनिका जीवन के टेढ़े-मेढ़े रास्ते पर चलते हुए कोई असावधानी नहीं हुयी? - मैं यवनिका के आँखों से सच उगलवाने की कोशिश कर रही थी ....और तुमसे? हुयी थी कई बार परन्तु आपकी तरह नहीं कि जो जरा सी आंच पाते ही पिघलने लगे ...वाक्य पूरा कर यवनिका टॉमब्वाय के स्टाइल में खड़ी हो गयी। खैर रात गयी बात गयी। धीरे-धीरे मन शान्त हुआ समय से समझौता करते हुए मिलने मिलाने की कड़ी बढ़ती ही गयी अगले पड़ाव पर हम दोनों नहीं बल्कि हम तीनों मिले मैं अपने महत्ता का चादर ओढ़े परिकल्पना का पहाड़ बनाती रही जिसकी खाई में स्वतः दबती चली गयी। आगमन का एक क्षण भी नहीं बीता कि विधि ने अपना खेल खेलना शुरू कर दिया परकीया भाव से संयोग रस में डूबकर पौराणिक पुरुष ने खूब गोते लगाये और कविता अपनी वेगवती धारा में नौका विहार का आनन्द लेकर उसे खूब छकाया - मैं अन्तहीन निराशा लिए स्वयं दर्शक थी आनन्दातिरेक की अवस्था में व्यक्ति समाधिस्थ हो जाता है। मैंने दोनों को जगाया अपने ही हाथों से चाय पिलाया चाय की चुस्कियां मेरा मजाक उड़ा रही थीं और मैं केवल नई कहानियों का बखान करते अघा नहीं रही थी - रात का अन्तिम प्रहर आज वह पैंतरा बदल गया कवि ने नायिका बदल दिया सिर्फ दिखावे के लिए नायिका ने निष्ठा और विश्वास के साथ शिशु की तरह वात्सल्य रस की बरसात करनी शुरू कर दी। और वह अपने आगोश में भर उद्देश्य पूर्ण शिक्षा देते हुए अर्ध चेतनावस्था में फिर नींद के आगोश में ...... अचानक 2 या 3 बज रहें होंगे जागकर मुझे झकझोरा उठो! जाओ कविता को बुला लाओ मैंने स्वप्न देखा है? कविता के आँख में आंसू हैं मैंने बहुत समझाया पर नहीं माने अन्ततोगत्वा मुझे उसके शयनकक्ष से कविता को बुलाना पड़ा पर इस बार मेरी अन्तरात्मा मुझे धिक्कार रही थी, मेरा अन्तरमन रो पड़ा विगत की यादें मानस पटल पर एक रील की तरह चल रहीं थी, आह भरता हृदय तड़प उठा और दिल की

बात होठों पर आ गयी - अरे दिव्य? तुमने मुझसे कहा था, एक दिन प्रेम की भीख मांगोगी क्योंकि तुमने मेरे प्रेम को ठुकराया है? नहीं! कभी नहीं! तुम्हारा प्रेम जब तक प्रेम था मैंने स्वीकार किया जीया जब तुम आत्मा से नहीं देह से प्रेम करने को तत्पर थे तो मैं खुले आकाश में खड़ी हो गयी और तुम्हें मुक्त कर दिया मनवांछित जीवन जीने के लिए और मैं तपिस भरा जीवन जी ही रही थी कि अचानक मेरे लिए एक वीर पुरुष जो अति सुदर्शन, मेधावी, महान कलाप्रेमी, सच्चा देशभक्त आजीवन कुँआरा रहने की भीष्म प्रतिज्ञा करता जीवनभर साथ रहने का संकल्प किया था? यह सच है, पर मैं छली जाऊँगी इसका मुझे भान तक नहीं हुआ। तुम तो जानते हो? औरत को सारी जिन्दगी लिहाफ की तरह ओढ़ने में वह सुख कहाँ जो कभी-कभी बड़े इंतजार के बाद औरत रूपी शराब क़ी बोतल को बंद होठों से पीने में है। दिव्य? मैंने उन आँखों से पल भर पीने के बाद जीवन भर उन्हीं में डूबने का फैसला कर लिया यह मेरा भाग्य दोष था, क्योंकि मैं भाग्यवादी हूँ, यहीं से मेरे प्रेम की धारा बदल गयी एक दूसरे पर आरोप-प्रत्यारोप, वाणी में माधुर्य का अभाव, जाने अनजाने हृदय विगलित हो गया निगाहों में भय व्याप्त था। ओज एवं गाम्भीर्य के लिए प्रसिद्धी प्राप्त, नीति परक सिद्धान्तों का प्रणेता, कुशल रणनीतिकार मुझसे छल क्यों किया? परिणय सूत्र की पवित्रता और भावनात्मक बन्धन का मजाक उड़ाना भारतीय सभ्यता संस्कृति पर एक प्रहार है। यह अपमान मैं बर्दाश्त नहीं कर सकती विरोध करूँगी किन्तु मेधा का धनी मुझे परास्त करने का उसका अपना अनोखा अंदाज है। दिव्य मैं क्या करूँ? तुम शापित न करो मुझे माफ कर दो मैं उसके बिना एक पल भी नहीं रह सकती, अब उसके लिए मुझे फिर एक आहुति देनी होगी, सुनो - वह मेरे से जिन वचनों को निभाने का संकल्प लिया था, वह मेरे अनुपस्थिति में कविता को बता दिया। मेरे साख्य भाव के आड़ में परकीया नायिका प्रेम उन्हें संयोग-श्रृंगार रस से ओतप्रोत कर देता है, जीवन की एक छोटी सी भूल जिन्दगी का नासूर बन जाती है साथ रहकर भी बहुत दूर हो गये थे, इसकी एक खास वजह मानसिक विसंगतियां थी। निजी बातें मैं उनसे शेयर नहीं करती हूँ। क्या दिव्य? मुझे अभिशापित जीवन जीना होगा एक खण्ड़ित औरत की तरह......नहीं-नहीं! तुम भी मुझे ताना दोगे मैं तुमसे कुछ न कहूँगी। कविता भी बहुत बदल गयी है। जो सारी

खुशियां मेरी झोली में डालना चाहती थी अब उसे अपनी खुशी कम लगने लगी है मेरे प्रति उसकी बदली नजरिया है। आपसी तानेबाने में भी जमानी आस्था का उदाहरण देकर मेरी संवेदना को चोट पहुँचाती है। मुझे साईकेट्रिक तक की संज्ञा से नवाजती है, हो सकता है? किसी दिन मुझे पागल करार कर दे। दिव्य तब तुम मेरा साथ मत देना मुझे देखने मत आना मेरा हाल मत पूछना सारी वेदना मैं तुम पर उड़ेल सकती हूँ, उसने तो वह भी अधिकार छिन लिया है? मेरे प्रेम को भाषण की संज्ञा दी है और अपने भाषण को प्रेम की मैं पुनः 20 वर्ष पीछे का जीवन जी रही हूँ दिव्य! तुम जिस हालत में विदा हुए थे ठीक उसी रूप में मैं तुमसे मिलूँगी-आज पूरी रात पागलों की तरह रोती रही हूँ आँसू भी साथ नहीं देते रोके से भी नहीं रूकते यह मेरा पत्र समझ लेना दोस्त। यवनिका का साथ मुझे बड़ा संतोष देता है। पुनः उसी धार में बह जाऊँगी लेकिन अभी समय लगेगा। एक बार मैं उस महा व्यक्तित्व से अपनी सारी बातें कहूँगी। कथनीय अकथनीय सारी बातों से भरी डायरी अवश्य भेंट करूँगी और उसके अहसासों का प्रतिबिम्ब उसके ही अहसास से चित्रित करूँगी, उसको ही उसमें रंग भरने को मजबूर करूँगी, मेरी आत्मा भरी नहीं मन भरा है। फिर उसके आंखों में आंखे डाल ढ़ीठ बनकर पूछूंगी क्या? भीष्म पितामह प्रतिज्ञा पूरी कर ली, छद्म वेश धारी प्रेम के पुजारी, क्या मैं तेरी पूजा करूँ या जिस्मानी आस्था का तर्क देकर वितृष्णा से मन, शरीर, आत्मा को सम्पृक्त कर तुमसे मुक्त हो जाऊँ, कहो क्या करूँ- बोलो- एक बार छद्म मुक्त होकर बोलो पश्चाताप करोगे- जरूर करोगे आह!। मैं तुम्हें .... मेरे पास शब्द नहीं है, भाषा एवं भाव चूक गये, मैं थक गयी हूँ। सब्र करना पिघली हुयी बर्फ को जमने में थोड़ा समय तो लगेगा न........।

□□□

लड़की बोली

जय चौधरी बहुत ही होनहार मेधावी छात्र था इलाके में उसका बड़ा नाम था बेरोजगारी के जमाने में उसे बी0एस0सी0 करने के बाद तुरन्त ही बैंक की नौकरी मिल गयी। नौकरी पाकर वह अतिशय खुश था पारिवारिक जिम्मेदारियों को निभाने में सक्षम हो गया था उसकी अपनी एक दुनिया थी पढ़ना-पढ़ाना उसका शौक था अब वह उसे भलिभांति कर पायेगा संयोग कह ले या भाग्य वश उसकी पहली पोस्टिंग जयपुर में हो गयी। वहाँ की खूबसूरती का क्या कहना (पिंकसिटी) पहचान की मोहताज नहीं है। जय का मन लगने लगा अपने लोगों से दूर रहकर भी वह साहित्यिक गतिविधियों में इतना डूब गया था कि उसके दो साल कैसे गुजर गए पता ही नहीं चला। जय के नौकरी की खबर उसके सगे सम्बन्धियों में लगते देर नहीं लगी। आज के जमाने में नौकरी दा लड़के की शादी के लिए लोग वैसे ही मंडराते हैं जैसे मधुमक्खी के छत्ते पर टिड्डे। इतना दबाव बनता जा रहा था, कि उसके पिता सीताराम चौधरी बेटे की शादी को लेकर चिन्तित थे। माँ को तो रात दिन यह चिन्ता सताये जा रही थी की जय शादी की बात मानेगा भी कि नहीं या कहीं बहक कर फिल्मी दुनिया की तर्ज पर शादी कर लेगा? हम लोग समाज को कौन सा मुँह दिखायेंगे तथा समाज में मेरी इज्जत कम हो जायेगी। पिता सीताराम चौधरी जब जय से शादी की चर्चा करते वह टाल जाता। इधर पिता सीताराम चौधरी कितने ही लड़की वालों को ना-ना करते-करते थक गये थे। एक दिन एक गांव बिसुनपुर से लड़की वाले आये उनकी बेटी पढ़ी-लिखी थी जय को बिना बताये उनके यहां रिश्ता पक्का कर दिया और बेटे को बैंक के पते से पत्र द्वारा सूचित कर दिया। उसका छोटा भाई अजय चुपके से दुल्हन की फोटो और पता तथा भाभी शुचि के नखसिख का वर्णन लिखकर उसी लिफाफे में डाल दिया साथ ही उसके खानदान के बड़प्पन की एक फेहरिस्त भी पत्र में डालकर पोस्ट कर दिया।

जय को पत्र मिला पढ़कर वह बहुत खुश हुआ उसको अपने मन की मुराद मिल गयी थी। इस खुशी को वह रोक नहीं पाया और पता होने के कारण उसने शुचि को प्रथम पत्र लिख डाला और पत्र के अन्त में होने वाली पत्नी के भाव विचार, रहन-सहन जानने के उद्देश्य से कुछ ऐसा लिखना चाहता था जो यादगार बन जाये। उसने अंत में निर्णय लिया पत्र में मन की बातें लिखकर डाक में डाल आया। शुचि को ज्यों ही पोस्टमैन ने पत्र दिया उस पर प्रेषक (होने वाले पति) का नाम देखकर वह उछल पड़ी मन ही मन उसके दिलेरपन पर बहुत खुश हुयी इतनी खुश हुयी कि उसे कैसे पत्र लिखे क्या सम्बोधन करे? मन की बातों को कागज पर लिपिबद्ध करना आसान काम नहीं है। इसको कैसे अंजाम दिया जाय इसी उहापोह में वह अपने प्रिय दोस्त दिव्या को पत्र दिखलाया और दिव्या ने एक ही सांस में पूरा पत्र पढ़ डाला अन्तिम पंक्ति बड़ी ही जोरदार थी जिसको वह जोर-जोर से पढ़ने लगी।

मेरी प्राण प्यारी, मेरे दिल की मल्लिका जब से तुम्हारी तस्वीर देखी है, मेरा दिल मेरे बस में ही नहीं है। मैं हर क्षण तुम्हें ही याद करता हूँ किसी काम में मन लगता ही नहीं। बैंक में अगर महिला कर्मचारी नहीं होती तो मेरा जीना दूभर हो जाता और इतने समय में तो मेरी दुर्दशा निश्चित रूप से हो गयी होती। लौटती डाक से पत्र का उत्तर लिखना तुम कैसी हो? दिव्या ने पत्र पढ़कर शुचि को भर अंक पकड़ कर चूम लिया अरे? तुम्हारे पति की पसन्द का क्या कहना बेइंतहा प्यार करने वाला हँसमुख इश्क मिजाज आदमी, वो तो तुम्हारे प्यार में अभी से दिवाने बने घूमने लगे हैं। ऐसा बड़े दिल वाला हँसीन और जवान दिलेर पति मिलना बड़े नसीब की बात है। दिव्या को मनोविज्ञान की क्लास करने जाना था वह आह भरती निकल गयी, अब शुचि की सांसे उनकी याद में और तेज होती जा रही थी दिल की धड़कन इतनी तेज थी कि मानो जय की कहानी सांसों की महक में हो ऐसा भान हो रहा था दिव्या दुबारा जब आयी तो शुचि बेसुध सी पड़ी दिव्या से पत्र लिखने का आग्रह कर रही थी जिसके कारण दिव्या ने जो पत्र लिखा उसकी चर्चा जय चौधरी के कार्यालय में जोरों पर था मित्रों के बीच तो यह विषय हंसी का हथ गोला बना हुआ था, दिव्या ने पत्र यूं लिखा—

प्राणनाथ, दीनानाथ, दीनबन्धु, पति परमेश्वर आप की तरह मेरी भी

हालत बनी हुयी है, मैं तो अपनी पीड़ा किसी से बता ही नहीं पा रही हूँ। आप के पास तो मेरी तस्वीर है, मेरे पास तो आपकी तस्वीर भी नहीं है। भला हो कॉलेज के मास्टर साहब का बड़े अच्छे लोग हैं। जब से मेरी शादी तय हो गयी है, सभी लोगों को खबर लग चुकी है क्योंकि मेरे पड़ोस की सहेलिया कॉलेज में यह खबर पहुँचा चुकी है जिसके कारण क्लास में सहपाठी और मास्टर साहब चुहलबाजी करते रहते हैं ये आपकी कमी नहीं खटकने देते। दोनों तरफ एक जैसी बीमारी पल रही थी, अपने भावी जीवन के प्रति आशा एवं अभिलाषा को जीवन्त बनाने का प्रयास करना दोनों अपनी जिम्मेदारी समझने लगे थे, भावी सुःखमय संसार की कल्पना में दिन-रात गुजारते हुए शादी के ख्वाब में खोए रहते थे। इसकी भरपाई कॉलेज के मास्टर साहब एवं सहपाठी, सखी-सहेली, दोस्त, पास-पड़ोस के लोगों से रसिक चर्चा करके जीवन का आनन्द उठाकर सुःखमय जीवनानुभूति स्वर्ग सुःख की कल्पना करके मन ही मन वैवाहिक जीवन के भौतिक, दैहिक, मानसिक सुःख से ओत-प्रोत डूबते उतराते जीवन को जी भर कर पीते रहना उनका सच्चा आनन्द था। जिस किसी को मिलता है वह उसके लिए गूंगे के खाये मीठे फल के स्वाद जैसा होता है।

□□□

मन की हार

यह नवीन कौन है? सरीन ने पूछा। पता नहीं यार, डाकिया किसी दूसरे की चिट्ठी यहां दे गया। अजीब बात है, पता तो यहीं का है पर तुम्हारे घर में यह नवीन कहां से आ गया। यार सरीन तुम मुझसे बड़े हो तुम जानो मेरी समझ में नहीं आ रहा है। मैं सामने वाले घर में से पूछ के आता हूँ।

उसके जाने के बाद मैंने लिफाफे को उल्टा-पुल्टा कर के देखा भेजने वाले का नाम पता नहीं, डाकखाने की मुहर से डाकघर का नाम भी पता नहीं चल पाया तारीख स्पष्ट दिख रही थी। इसी माह की 8 वीं तारीख को पोस्ट किया हुआ पत्र और आज 15 तारीख है। आज से 7 दिन पहले का लेकिन यह पत्र किसका है मैं अभी उहापोह में पड़ा सोच ही रहा था तभी सरीन ने आकर बताया तहसीलदार साहब के छोटे बेटे का नाम है। घर का बड़ा होने के नाते लोग इस नाम से नहीं पुकारते थे, बचपन में वह अजीब तरह का लड़का था, बहुत कम लोगों से मिलता जुलता स्कूल से घर और घर से स्कूल और फिर किताबों में डूब जाना यही उसकी दिनचर्या थी। इण्टरमीडियट में कालेज में प्रथम स्थान पाने की वजह से सभी लोग उसे उत्तम दर्जे का विद्यार्थी समझने लगे थे उसकी दिनचर्या में परिवर्तन नहीं हुआ वह किसी के बुलाने पर भी कहीं नहीं जाता। वह बैचलर नहीं था बल्कि शादी-शुदा था। हालांकि उसके बारे में निश्चित रूप से कुछ कह पाना मुश्किल है। बहुत देर तक उसके बारे में दोनों बतियाते रहे पत्र में क्या है? उस अजीब लड़के के बारे में यह जानने की उत्सुकता बढ़ती जा रही थी और वह इस समय घर पर है नहीं तो उस पत्र को फेंकने से अच्छा है, देखा जाय इसमें क्या है। लिफाफा फाड़ने के बाद उसमें तीन चार पृष्ठों की इबारत कौन पढ़े। मैंने सरीन से कहा तुम ही पढ़ो उसने कहा मैं जोर-जोर से पढ़ रहा हूँ सुनो, उसने पढ़ना शुरू किया प्रिय! इसके बाद वह चुप हो गया। क्यों चुप हो गए सरीन। बस यूं ही पहले मैं पढ़ लूं तुम बाद में पढ़ना। ठीक है मैंने कहा।

बीस मिनट के बाद सरीन ने पत्र मुझे थमाया। उसका चेहरा बिल्कुल निर्विकार हो गया था। क्या बात है। सरीन कुछ नहीं पढ़ लो तब बात करूंगा। मैंने फिर से आगे पढ़ना शुरू किया—

मैं हार गई नवीन। जानती हूं तुम पास होते तो मुँह फुला लेते तुम्हारा सारा बदन कांपने लगता और आश्चर्य नहीं कि अपना सर लड़ा देते कमरे की दीवार से। लेकिन तुम इस क्षण मेरे पास नहीं हो और मैं तुम्हारी प्रतिक्रिया देख नहीं सकती। और सच पूछो तो तुम्हारी इन प्रतिक्रियाओं की मैं आदी हो चुकी हूं पहले बड़ी चिन्तित हो जाया करती थी। तुम्हारी अवस्था देखकर लगता था जैसे मैं एकदम अपराधिनी बन गई हूँ। पर जयों-ज्यों समय बीतता गया जैसे-जैसे मैं तुम्हारे मन की अश्लीलता से परिचित होती गयी। समझ में आने लगा कि तुम्हारी सारी प्रतिक्रियाएं एक खूबसूरत भुलावे के सिवा कुछ भी नहीं। तुम तो उस छद्म मानसिकता में जीते रहे। नवीन तुम्हारा विद्रोह छद्म विद्रोह था पूरी की पूरी व्यवस्थाओं को बदल देने वाले विचार पहले सुनने में तो बड़े अच्छे लगते थे स्वयं पर मैं फख्र करती थी कि इस तरह के क्रांतिकारी विचार तुम्हारे मन में पल रहे हैं और मुझमें अपनी संभावनाओं की तलाश करते हो बड़ा अच्छा लगता है सोचकर कि मैं तुम्हारे विचारों की मूल प्रेरणा हूँ। पर नवीन? मैं एक भुलावे में जी रही थी। उस समय मुझे पता नहीं था तुम्हारे विचार अश्लीलता और अहं से उपजे कुण्ठाग्रस्त विचार थे, मैं तुम्हें पाकर और अपने को तुम्हें देकर बेहद खुश थी। मेरी इस सोच के पीछे एक औरत से ज्यादा एक माँ का मन सहसा जाग उठा था! पर ऐसा कुछ भी नहीं हो पाया। तुमने त्याग किया हालांकि वह तुम्हारा छद्म त्याग ही था, और तुम उसका फतवा देकर बराबर मुझे आक्रान्त किये। नवीन तुमने मेरे मातृत्व के पलड़े पर अपनी कुण्ठा को तोलना चाहा बड़े ही निकृष्ट रूप से। तुम्हारी विद्रोही वाणी अचानक इस ख्याल पर आकर खामोश क्यों हो गई?

जानती हूँ ये सभी बातें तुम्हारे लिए निरर्थक होंगी। क्योंकि तुम्हारे विद्रोह में कला, भावना, भावुकता का कोई स्थान नहीं, तुमने बार-बार रोटी की बात कहीं है, चेग्वारा का नाम न जाने कितनी बार तुम्हारे जुबान पर आया है। सारी व्यवस्था तुम्हें खोखली लगती थी। धर्म, सड़ी-गली मान्यताएं रूढ़ियां अंधविश्वास फालतू रिश्ते आग विद्रोह...ये सारे शब्द तुम्हारी जुबान पर रहते थे। जानती हूँ

तुम्हारा यथार्थ बड़ा लिजलिजा था तुम्हारी कल्पना रूमानियत के सिवा कुछ नहीं थी।

वाकई नवीन तुम बहुत कमजोर साबित हुए तुमने केवल किताबें पढ़ी जीवन के पढ़ने का कभी प्रयत्न नहीं किया। तुम्हारी कथाओं के चरित्र ऊपर से देखने में तो बड़े सजीले लगते पर उनके खोखलेपन की तस्वीर तुमने शायद कभी न देखी होगी। बहुत सारी संभावनाओं को एक साथ पकड़ने के फेर में तुम किसी भी संभावना का स्पर्श तक नहीं कर पाए क्योंकि तुम्हारी पूरी सोच एकांगी थी। अधूरी थी। प्राप्ति अप्राप्ति के बीच तुम इधर उधर भटकते रहे क्योंकि तुम्हारी निगाह में बीच का कोई रास्ता नहीं होता। पर सच यह है कि इसी बीच के रास्ते पर पूरे जीवन तुम चलते रहे....तुम अपने को छल सकते हो? मुझे नहीं? कम जानती हूँ मगर जितना भी जानती हूँ पूरा जानती हूँ।

कल तुम्हारी खबर मिली थी किसी तीसरे आदमी के जरिये। तीसरे आदमी वाला दर्शन तो तुम्हें मुँह चिढ़ाता था न बार-बार? लेकिन तुम क्या जानो तुम सदा तीसरे आदमी बने रहे मेरे लिए... कभी भी तुमने दूसरा आदमी बनने की कोशिश नहीं की क्योंकि तुम्हारा प्रचण्ड अहंकार वैसा करने की अनुमति / इजाजत नहीं देता। सोचा था शायद तुम्हारे भीतर अभी भी थोड़ी सी वैचारिकता शेष बची होगी और मैं ही गलती पर थी, जानते हो नवीन? जिस तरह ये परम्परावादी धारणाएं जल्दी नहीं मिटती उन्हें मिटाने के लिए कई युगों को अपनी पहचान की बलि देनी पड़ती है। ठीक उसी तरह तुम्हारे भीतर घर कर गई तुम्हारी छद्म वैचारिकता की जड़े भी बड़े गहराई तक जमी हुयी है उन्हीं संस्कारों में....।

जब तुम मुझे मिले थे मैं स्वयं में सिमटी यही समझती थी कि एक औरत की जिन्दगी इतनी ही होती है। सारी परिस्थितियों को स्वीकार कर मैं हारी नहीं थी तुमने अपने शब्दों से मुझे निहाल कर दिया था। सारा बदन बर्फ की तरह ठंडा हो गया था तुम्हारी ही कथनों का विश्वास कर मैंने अपनी सोच और मान्यताओं को त्याग दिया था। तब मैं भी सोचने लगी थी जीवन की हर अवस्था एक संभोग होती है और यही कारण है कि मेरा स्वयं का निर्मित अधूरापन अब खलता नहीं। जीने के अर्थ व्यक्तित्व के विकास के सारे आयाम मेरे सामने प्रकट होते चले गये थे धीरे-धीरे। तुम तो कहा करते थे न कि इन

पत्थरों की मूर्तियों ने इन्सान को जितना पीछे ढकेला है कोई भी गुलामी उसे इतना पीछे नहीं ढकेल सकती। पर तुमने यह कभी नहीं सोचा कि इन मूर्तियों के पीछे श्रद्धा तत्व क्या है। मेरी तुम पर भी इतनी ही आस्था रही और सच कहूं तो तुम भी उन प्रस्तर प्रतिमाओं से कम नहीं निकले। इन मूर्तियों के प्रति श्रद्धा रखने पर भी ये कुछ नहीं देती लेकिन एक आस्था का संचार करती है और तुमने तो मेरे अन्तरमन में किसी तरह की आस्था का संचार होने ही नहीं दिया। जब तुम इन्हें तोड़नें की बात करते हो तो मैं यह सोचती रहती हूँ कि तुम भी उतने ही झूठे हो उतने ही छली, उतने ही मिथकीय जितनी ये मूर्तियां हैं। क्योंकि तुममें और इनमें कोई खास फर्क नहीं दिखता।

तुम्हारी वाचालता का सम्मोहन और तुम्हारे शब्दों के छिछलेपन का भान मुझे उस वक्त तो नहीं हुआ लेकिन ज्यों-ज्यों तुमने अपनी तथाकथित समर्पण की कीमत वसूलनी शुरू कर दी त्यों-त्यों मेरे मन को झटका लगता चला गया। मुझे तुम ऐसे चालाक समाजसेवी लगे जो शुरू में अपने को स्थापित करने के लिए अपने त्यागी होने की घोषणा करता है।

सच तो यह है नवीन कि तुमने अपने खुशी को ही सर्वोपरि समझा तुम्हारा त्याग निःस्वार्थ नहीं था, तुमने उन तत्वों के विरूद्ध ही संघर्ष करने की बातें कहीं जो तुम्हारी खुशी में रोड़े बन गये थे। तुमने आदमी की सम्पूर्णता की दुहाई देकर उसे एक गहरे दलदल में ढकेलने की साजिशें रची। हाँ इतना सच है कि तुमने मुझे निःस्वार्थता का जो छद्म एहसास दिलाया था उसी एहसास को सच मानकर मैं आगे बढ़ती गई और इतना आगे बढ़ी जहाँ तुम पहुँचने की कल्पना भी नहीं कर सकते थे। मेरे मन में कोई गांठ नहीं थी। इसका मुख्य कारण यही था कि अपनी लड़ाई मैंने खुद लड़ी इस विश्वास के साथ की तुम मेरे साथ हो तुम्हारे साथ होने की कल्पना ने ही मुझमें इतनी शक्ति जताई कि मैं फिर उस टूटते बिन्दु पर पहुँचने का ख्याल तक नहीं किया। यह मेरा सौभाग्य था कि मैंने तुम्हें कभी-भी अपनी लड़ाई में शामिल नहीं किया यह मेरे हक में अच्छा हुआ। तुमने अपने विचारों की प्रतिमूर्ति बनाना चाहा था कभी? मैं तो बन गई, पर तुम मेरा लक्ष्य कभी नहीं बन पाए। हमारा लक्ष्य अपने होने से इतर था और इसी स्तर पर तुम अपनी कुंठा से आबद्ध हो गए।

मैं हार गई नवीन जीवन से नहीं? तुम्हारी छद्म वैचारिकता से, अब तुम

पर गुस्सा भी नहीं आता क्योंकि मैं जानती हूं अपनी कुंठाओं का चोट खाया हुआ तुम्हारा दर्प तुम्हें स्थिर नहीं रहने देगा। बार-बार तुम मेरी अपराजेय मानसिकता को झकझोरते रहोगे और तुम्हारी लिजलिजी मान्यताओं पर मैं हारती रहूंगी। नवीन मेरी हार मेरे मन की हार नहीं, यह हार मेरी उस भावना की है जिसके तहत मैंने तुम्हें सम्पूर्णता में देखना चाहा था बेदाग निष्कलुष। जानती हूँ मेरी कोई प्रत्यक्ष छवि तुम्हारे मन में अब भी नहीं बन पाई होगी। हाँ यदि अपनी कल्पनाओं में मेरी कोई छवि बनाना ही चाहो तो नीलकण्ठी शिव से मिलती जुलती कोई छवि बना लेना लेकिन जिसके सिर पर न तो कोई चांद होगा न कोई गंगा बस होगा खुला आसमान और होगी जिसकी मुठ्ठिओं में दबी शून्य सी विकरालता.......

तुम्हारी

पत्र खत्म करने के बाद मैंने सरीन की तरफ देखा वह गुमसुम बैठा परेशान सा दिख रहा था मैंने पूछा कुछ कहोगे सरीन? उसने कहा जानते हो अनजाने ही गुमनाम पत्र पढ़ने के बाद मुझे लग रहा है मैं ही नवीन हूँ मैंने मुस्करा कर कहा यार सरीन नवीन तुम ही नहीं मैं भी हूँ न जाने कितने लोग हैं किसी न किसी रूप में हम सभी नवीन है और यही हमारी त्रासदी है।

□□□

सदमा

बिहार के चम्पारन जिले के रतनपुर गांव में हँसी-खुशी का माहौल था क्योंकि यहाँ के मुखिया ठाकुर धरमदास जी के पुत्र विश्वजीत की शादी की तैयारी हो रही थी। गाँव के चारों तरफ ब्याह गीतों की ध्वनि गूँज रही थी। घर के सामने बैठक में ढ़ोल-नगाड़ा बजाने वाले बजनियां ढ़ोल-नगाड़े बजा रहे थे शादी का शुभ ध्वनि शहनाई बजाई जा रही थी भांट एवं भाटिन गीत गाते हुए नाच रहे थे। और गांव जमात के लिए ठाकुर धरमदास जी दरवाजे की शोभा बढ़ा रहे थे तथा सबका स्वागत करने में व्यस्त थे और नात रिश्तेदारों का मान मनौव्वल मनुहारों का एक दौर जैसा चल रहा था और एक तरफ सासाराम, सोनबरसा के मशहूर (एडवोकेट) जमींदार कश्यप सिंह के यहाँ बारात ले जाने की तैयारी हो रही थी। रतनपुर से सासाराम, सोनबरसा की दूरी तय करने के लिए हाथी, घोड़े, गाड़ियों को सजाने का कार्य बड़े सलीके से किया जा रहा था रेशमी चमकते धागे एवं मोरपंखियों के डिजाइन से गौरबन्ध बांधे जा रहे थे, गाड़ियां रंग-बिरंगी फूलों से लकदक सजाई जा रही थी। बारात में चलने वाले बाराती पद के अनुरूप परम्परागत वेशभूषा पहने तैयार थे। ऊधर माँ अपने लाडले बेटे को विधि विधान से सजाकर गांव के निकट रखवाली करने वाली सत्ती माँ एवं काली माँ तथा ब्रह्म बाबा की पूजा करके गाँव में कुछ दूर के शिव मंदिर पर जाकर बेटे की आरती उतारी और बहनें भाई की बारात विदा करते हुए पैसे और मोहरें लुटायी और लकदक सजी गाड़ी में बिठाकर दुल्हे राजा को काजल लगाया ताकि नजर न लगे फिर दुल्हे को विदा किया।

रतनपुर गांव से हाथी घोड़े का काफिला सासाराम, सोनबरसा के लिए कूच कर गया तथा चम्पारन की घनघोर विराट जंगलों, गांवों और रेतीले कंकरीले रास्ते को पार करते हुए सासाराम के सीमा में प्रवेश से पहले ठाकुर कश्यप सिंह को बारात पहुँचने की सूचना दे दी गयी। बारात के पड़ाव के लिए

गांव के बाहर बगीचे में यथा संभव व्यवस्था की गयी थी मानों एक गांव बसा दिया गया हो, विश्राम करने के लिए समुचित व्यवस्था की गयी थी। और बारात में लाये गये हाथी, घोड़े भी पेड़ों में बांध दिए गये थे ताकि वे भी विश्राम करलें। बगीचे के पास तालाब था जिसके किनारे बारातियों के लिए खाना बनाया जा रहा था और दूसरी तरफ बारात आने की सूचना गांव के नाई एवं नाइन द्वारा पूरे गांव को दी जा रही थी और घराती एवं बाराती उपहार में माला पहनाकर एक दूसरे को गले लगाकर मनुहार कर रहे थे। तत्पश्चात घर का एक विशिष्ट व्यक्ति बारातियों के तरफ से नाई के साथ विश्वजीत का लग्न लेकर कश्यप सिंह के दरवाजे पर पहुँच गया उसके आने की सूचना जब घर में मालकिन यानी बेटी की मां को मिली तो वह लग्न बांधने के लिए बेटी के बाप को पगड़ी बांधकर भेजा फिर दोनों ने इस रस्म को पूरा करके बारातियों को बांधने की रस्म अदायगी की। तैयारियां शुरू हो गयी उधर बाराती सजधज कर कश्यप सिंह के गांव पहुँच गये उन्हें बड़े स्वागत सत्कार के बाद अपने सजे हुए (चौबटे) यानी विशाल शादी के समारोह स्थल पर लाया गया पुनः परम्परागत वेशभूषा धारणकर गांव की महिलांए सिर पर कलश रखकर बारातियों के स्वागत में गीत गाती हुयी आगे बढ़ने लगी और सबसे आगे ठाकुर विश्वजीत जी की सासू माँ मंगल कलश लेकर दामाद को पूजने के लिए तत्पर थी। उनके पीछे राजपूतानों की एक फौज, ब्राह्मण, भूमिहार, लाला, सरदार, सेठ, साहूकार, सभी जाति-धर्म के लोग बारात के स्वागत के लिए कदम दर कदम बढ़ रहे थे। इस वक्त दूल्हे को गाड़ी से नहीं बल्कि शानदार मलानी नस्ल के सुन्दर घोड़े पर बिठाया गया था इसी समय सास ने दामाद को तिलक कर पगड़ी बंधाने की रस्म अदा की और महिलाएं गीत गाती जा रही थी, शहनाई, दुन्दुभी, तुरही, ढ़ोल, नगाड़े, बांसुरी की सुरीली तान सुनाई दे रही थी। खुशी के इस माहौल के बीच वर पक्ष को कन्या पक्ष के लोगों ने सम्मान किया गले मिले हाथ मिलाए फिर सब एक साथ बैठ मुजरा किया इसके बाद दुल्हे के साथ बाराती मंडप की तैयारी के लिए चल पड़े जहाँ ठाकुर कश्यप सिंह ठाकुर धरमदास जी को अपनी पगड़ी सौंपते हुए दूल्हे का पांव पूजकर स्वागत किया और दूल्हे विश्वजीत ने तोरण वन्दनवार बांधकर रस्म पूरी की। सालियों ने द्वार छेकाई करके बहनोई की खूब मजाक उड़ाई इधर महिलाओं ने

बारातियों को खूब मजाक भरी गालियों से नवाजा उधर गांव वालों ने बारातियों के स्वागत में रंचमात्र भी त्रुटि न हो जाए इसी चिन्ता में निमग्न थे। पूरा गांव पलक पांवड़े बिछा दिया था मेहमानदारी में कोई कसर नहीं रह गयी थी।

ठाकुर कश्यप सिंह के घर में उनकी बड़ी लाडली बेटी मंदाकिनी की शादी चम्पारन, रतनपुर के ठाकुर धरमदास के पुत्र ठाकुर विश्वजीत से हो रही थी। पण्डित फेरे डाल रहे थे, महिलाएं अमर-सुहाग के गीत गाती हुयी नव दम्पत्ति को शुभाशीष देकर बलाइयां ले रही थी, गाजे बाजों, गीतों एवं शहनाई के सुरीले, धुनों के बीच मंदाकिनी और विश्वजीत की शादी सम्पन्न हुयी। पड़ाव स्थल पर ही विदाई की एक छोटी रस्म पूरी की गयी यानी दूरी गवन का कोरम पूरा करना पड़ता है। एक बार विदा करने के बाद आवागमन की परम्परा पूरी कर पुनः उसकी विदाई की जाती है। दुल्हे के साथ मंदाकिनी का शादी की खुशी का आनन्द देखते बनता था, क्योंकि बेटी अपनी ही पीहर सीमा में सुहागरात मनाकर दुल्हा-दुल्हन ने अपने सुखी जीवन बिताने की कस्में खायी और जीवन जीने का शुभारम्भ किया। दोनों के दिल मिले और एक दूसरे के साथ जीवन भर रहने का संकल्प लिया। पहले तीन दिन तक बाराती पड़ाव डालते थे जो परम्परा का निर्वाह और सम्पन्ता का द्योतक भी है। धरमदास की बारात तीन दिन के बाद रेशमी धागों से सजे समारोह स्थल से आज विदा हो रही थी। साथ ही दुल्हन की विदाई की वजह से सारा गांव गमगीन हो गया था। मंदाकिनी की माँ बेटी को पकड़ कर फफक-फफक कर रो रही थी, सखियों के आँसू रूकने का नाम नहीं ले रहे थे। बाप का अपार स्नेह आँसुओं में प्रवाहित हो रहा था। भाइयों का अनूठा प्यार आँसुओं की धार बन गया था। अड़ोसी-पड़ोसी अपने आँसुओं को रोक पाने में असमर्थ थे। गांव के बड़े बुजुर्ग मंदाकिनी के सिर पर विदाई के हाथ रखकर आशीर्वाद देते हुए छाती से चिपका कर स्नेह के आँसुओं से सराबोर कर दिया। सभी सखी सहेलियां गांव की लाडली बेटी की विदाई में आँसुओं को बहाते हुए शुभ गीत गा रही थी जो करूणा से भरा हुआ था करूण रस का पान करते हुए दुल्हे जी घोड़े पर चढ़कर गांव वालों बुजुर्गों साले-सालियों सबसे विदा लेने के लिए गांव भर में मुजरा की रस्म पूरी कर रहे थे और उधर बाराती अपने हाथी-घोड़े को सजा रहे थे चम्पारन की रवानगी के लिए अब विदा की घड़ी करीब थी परन्तु ठाकुर

विश्वजीत तीन बार गांव की सीमा का चक्कर लगाकर मुजरा कर चुके थे चौथी बार का जब चक्कर लगाने निकले तो गांव की वृद्ध नाइन महिला अपने सिर पर पानी से भरा मटका लिए अपने घर की तरफ जा रही थी कि पीछे से घोड़े के आभूषणों की खनखनाहट उसकी हिनहिनाहट एवं तेज रफ्तार तथा अपने पास से गुजरने के कारण (नाइन) हड़बड़ा कर गिर गयी और मटका फूट गया उसका सपना बिखर गया और ऐसा सदमा उसके अन्दर समा गया जिसके कारण उसके प्राण पखेरू उड़ गए। मंगलवार का दिन होने के कारण नाइन का गिरना और मटकी टूटने का अपशकुन माना जाने लगा। सासाराम के इर्दगिर्द का सारा वातावरण गमगीन हो गया सभी का ध्यान नाइन के तरफ बरबस खिंचा चला आ रहा था ताकि गांव पर ऐसा क्या अपशकुन अशुभ होने वाला है इसकी आशंका से सभी अवाक् थे। कुछ लोग दौड़ कर नाइन को उठाने के लिए पहुँचे परन्तु मन में भय होने के कारण एक दूसरे का इंतजार करते रहे कि कोई एक तो आगे बढ़े तब तक गांव के कुछ नवयुवक आगे बढ़कर उठाने के लिए उद्यत हो गये सभी लोगों में आपस में फुसफुसाहट होने लगी। सबके चेहरों पर उदासी देखकर ठाकुर विश्वजीत साले सालियों से हंसी ठिठोली छोड़कर नाइन को देखने आ पहुँचे ठाकुर विश्वजीत ने देखा कि उसने दम तोड़ दिया है? निस्तेज अवस्था में पड़ी हुयी है! उन्हें अपार कष्ट हुआ। अपनी संवेदना एवं शालीनता के लिए प्रसिद्ध विश्वजीत इस सदमें को सहन नहीं कर सके कि मेरे कुल की प्रतिष्ठा पर एक दाग लग गया अपशकुन का क्योंकि इसकी मृत्यु मेरे कारण हुयी है। लोग मुझे और मेरे खानदान को सदा-सदा के लए कोसते रहेंगे मुझे अशुभ व्यक्ति मानकर मेरा मुंह देखना भी अपशकुन मानेंगे, इस सन्दर्भ की हकीकत को बर्दाश्त नहीं कर सके और पुनः जाकर नाइन को अपने दोनों हाथों से उठाया उसका मृत शरीर ज्यों ही उनके हाथ में आया वह चित्कार कर उठे और क्षण भर में घोर अपराध के पश्चाताप से उनके प्राण पखेरू उड़ गये अब तो पूरे गांव में कोहराम मच गया यह खबर कुछ ही देर में मंदाकिनी के कानों में पड़ी वह पागलों की तरह भागती दौड़ती बिलखती हुयी आकर विश्वजीत के पार्थिव शरीर से लिपट-लिपट कर चिल्ला-चिल्ला कर रोने लगी। मंदाकिनी के रुदन से सारा वातावरण विक्षिप्तों की भांति रोने-चिल्लाने लगा। इधर मंदाकिनी को अपने पति की मृत्यु पर विश्वास ही नहीं

हो रहा था परन्तु सामने जो सच दिखाई दे रहा था क्या उसे कोई झुठला सकता है? वह अपने प्राणों से प्यारे हृदयांश जीवनसाथी की अचानक हुयी मौत को बर्दाश्त नहीं कर पा रही थी उसे अपने सुहागरात के दिन लिए वचनों के अनुसार जीवन भर साथ निभायेंगे के वादे का स्मरण करते-करते वह सदा-सदा के लिए चिरनिद्रा में सो गयी। सब कुछ तहस-नहस हो गया।

आज भी बिहार जिले का वह स्थान जहाँ नाइन, विश्वजीत एवं मंदाकिनी ने अपने प्राण त्यागे हैं, यानी सदमे के कारण जिनका स्वर्गवास हो गया था वहाँ आज भी परम्परा, कुल, खानदान की रक्षा एवं सदाचार की नीति की पूजा की जाती है और शादी के समय बारात आते-जाते दुल्हा-दुल्हन बड़ी श्रद्धा एवं विश्वास से मस्तक झुकाते हैं और नारियल चढ़ाकर पूजा करते है। नव दम्पत्ति को कंगन बांधने और छोड़ने की रस्म तो निश्चित रूप से निभाई जाती है।

❑❑❑

सफर

स्टेशन पर ज्यों ही पहुँची सामने एक सभ्य परिवार के लोग बैठे थे हम दोनों का एक दूसरे से परिचय हुआ उन्हें भी उसी ट्रेन से जाना था जिससे मुझको तब तक ट्रेन आने की सूचना उद्‌घोषक द्वारा दी गयी हम सभी गन्तव्य तक पहुँचने के लिए चल पड़े मेरे साथ सामान बहुत था कई भारी बैग एवं अटैचियाँ। मैंने कूली का सहारा लिया और ट्रेन में बैठ गयी। सामने वाली बर्थ पर दूसरा परिवार भी बैठ गया यह एक संयोग था कि हम दोनों एक ही बोगी में और एक ही बर्थ तथा एक ही जगह के यात्री निकले। लम्बा सफर था मैं दुबली-पतली कृषकाय सी लड़की अकेले इतनी दूर भारी भरकम सामान के साथ यह उनके चिन्ता का विषय था, परन्तु कुछ खुलकर पूछने में संकोच महसूस कर रहे थे मुझे ऐसा भान हो रहा था, पर मैं क्यों स्पष्टीकरण दूँ। खैर जब रात हुयी तो भोजन की व्यवस्था बनानी पड़ी मेरे अकेले होने के नाते उन्होंने अपने साथ लाए भोजन में से ही हिस्सेदारी करने को कहा मैंने स्पष्ट इंकार कर दिया क्योंकि अगले स्टेशन न्यू जलपाई गुड़ी में मेरी एक मित्र का भाई भोजन लेकर आने वाला था ट्रेन ज्यों ही न्यूजलपाई गुड़ी रूकी मैं सामने खड़ी हाथ हिलाकर अभिवादन किया आवाज लगायी रमेश मैं यहाँ हूँ, वह दौड़कर मेरे पास आया और गले लगाया फिर पैर छूकर मेरी सीट तक आया भोजन दिया साथ में एक पत्र भी मैंने कहा तुम जल्दी जाओ ट्रेन चल देगी, उसने कहा नहीं दीदी 10 मिनट रूकती है। उतने देर तो मैं आपके सानिध्य में बैठ लूँ फिर क्या मेरे आंसू निकल पड़े? मैंने कहा रमेश मेरे पास कौन बैठना चाहता है। मेरा सानिध्य लोगों को कांटो की चूभन देता है। रमेश ने कहा दीदी गुलाब में कांटे ही होते हैं। मैं आज बहुत भाव विह्वल हो गया हूँ जितना बड़ा तेरा ह्रदय है, काश वैसा मैं भी हो जाता तुम अपना सर्वस्व न्यौछावर करंने जा रही हो, प्रणय जैसी थाती को तुम किसी को सौंप दोगी? मैंने ऐसा

सोचा ही नहीं था दीदी! एक बार और सोच लो दीदी? रमेश भाव से भगवान मिल जाते हैं, भाव से भूख नहीं मिटती उसके लिए श्रम करना पड़ता है, साधन जुटाने पड़ते हैं, तब हम भूख जनित क्षुधा को शान्त कर पाते है। तुम भाव की बात कर रहे हो या भूख की। रमेश प्रणय भावजन्य है? वह कभी किसी को प्रदत्त या न्यौछावर नहीं किया जा सकता, देने या लेने की प्रक्रिया से व्यापारी गुजरता है प्रेमपथिक नहीं। रमेश प्रणय एक निवेदन है, एक उत्सर्ग हैं, एक साधना और योग है। आत्मा और परमात्मा का मिलन है। मोहाविष्ट से मुक्त, मोक्ष का साधन हैं। दीदी आज तुम कैसी बातें कर रही हो बहकी-बहकी जो मन को कचोट रही है। आखिर क्यों....... कल मेरी शुभाशीष दा से बात हुयी थी वह भी एकदम पागलों जैसी बातें कर रहे थे, मेरे को बुला रहे थे कि तुम आ जाओ दीदी को समझाओ वह अब भी मान जायेगी तो मैं शादी नहीं करूँगा उन लोगों को जवाब दे दूँगा और भी कुछ कहा लेकिन मैं तुम्हें नहीं बताऊँगा तुम आओगी यह विश्वास उन्हें नहीं था। मुझसे पूछा दीदी आ रही हैं क्या? पता करके बताओ। जब मैंने उनको सूचना दी कल दीदी जोरहाट पहुँच रही है, फिर क्या था उनका अट्टाहास-परिहास सुनने लायक था। सभी तैयारियां तेरे जाने के बाद शुरू होगी दीदी? तो तुम मेरे साथ चलोगे? उसने हाँ में सिर हिला दिया तब मैंने कहा रमेश सारा सामान मेरे पास था। शादी करीब है, मैं तो बस यह सोची इसको पहले पहुँचाकर लौट आऊँगी। कल लौटने का टिकट है हमारा। अब तुम सोच लो क्या करोगे, इतने सारी बातें करते-करते ट्रेन तो समय का इंतजार नहीं करती वह काफी आगे बोगाईगांव तक आ चुकी थी फिर हम दोनों ने बिना कुछ बोले भोजन किया पुनः सोने का उपक्रम। एक ही बर्थ थी रमेश मेरे पैर की तरफ बैठ गया, मैं सोने का स्वांग रचने लगी लेकिन नींद आंखों से कोसों दूर थी। मन सच मानने को तैयार नहीं था और सच मुँह बाये सामने खड़ा था। मन और व्यक्तित्व को तोड़ देने वाली बिडम्बना मेरे गले का हार बन गयी थी। पीड़ा और यातना का इतना सार्थक रूप किसी ने नहीं देखा होगा। एक ऊँचे शिखर पर बैठा पुरुष अर्थगर्भित व्यक्तित्व का धनी भव्य एवं व्यापक बिम्ब का प्रभावकारी सृजनकर्ता अद्‌भुत प्रभावशाली स्वच्छ चमकदार शिलाखण्ड जैसा मन मुझे सौंप चुका था, वही आज सामान्य मनुष्य जैसा विखण्डन की प्रक्रिया में क्लेषयुक्त भाषा के माध्यम

से अपने मनःस्थितियों को उजागर कर रहा था। हे ईश्वर तुम मुझे शक्ति दो। मैं मानवीय अभिलाषा विरुद्ध सम्बन्ध के आश्रय में रह सकूं क्योंकि "चिकने शिलाखण्डों से तो वह मिट्टी ही अच्छी थी जो पैरों को पकड़ती तो थी। मैं तो अब घर रहते बेघर हो रही हूँ।" आह निकल गयी। रमेश जग ही रहा था बोला दीदी "वही चेतना है जिसमें कम्पन होता है वही हृदय है जिसमें आवेग जगता है। मैं उठ बैठी अरे? तुम जग रहे हो, अच्छा मैं बैठती हूँ तुम सो जाओ। तुम बहुत छोटे हो तुम्हें इतने भावजगत का अनुभव कैसे है? दीदी तुम्हारे बारे में विमला दी ने थोड़ा ही बताया था और शुभाशीष दा ने ज्यादा समझाया तुम उनके बारे में गलत सोच रही हो दीदी, वह आज भी तुम्हें जान से ज्यादा मानते हैं, तुम्हारे बिना वह नहीं रह सकते उन्होनें मुझसे कहा था अहंकार वश मैं शादी कर भी लेता हूँ तो मैं वह जीवन नहीं जीऊँगा जो इतने दिनों से जीता आया हूँ मेरा समूचा व्यक्तित्व नष्ट हो जायेगा। आम आदमी की तरह जीवन व्यतीत करूँगा क्योंकि मेरी कल्पना मेरे साथ नहीं होगी। मैं तो माटी की मूरत से शादी करके रोबोट की तरह जिन्दगी जीऊँगा इससे वह भी तो तड़पेगी मुझे पता है वह इस रूप में मुझे कभी नहीं देख सकती। द्वन्द और त्रासदी के बीच में आधुनिकता का यथार्थवाद पढ़ना उसकी अपनी मजबूरी है वह परम्परा, जाति, धर्म, स्वाभिमान की रक्षा के खातिर मानवीय परिकल्पना का गला घोंटने को तैयार बैठी है। मैं भी उसे भावना और कर्म, प्रेम और विवाह, मानवीय अभिलाषा एवं नियति के वह सारे आयाम समझाऊँगा। संवादों से नहीं कार्य रूप में परिणित करके, चिन्तन और व्यवहार का अन्तर उसे पता नहीं है। वह मेरी अन्तःकरण की मल्लिका है, उसको मुखर करना मेरा अपना दायित्व है। उसकी जीवन दृष्टि बदलने का भार मेरे ऊपर है। वह जीवन के परिस्थितियों से लगातार जूझती रही है, और सत-असत, अच्छाई-बुराई के समन्वित रूप को आत्मसात करती हुयी सम्बन्ध विधान से अस्थिर एवं उत्तेजित हुए बिना, चरम आक्रोश को मन में दबाए हुए मेरे साथ निर्बाध गति से अंक विभाजन की सार्थकता और लहरों पर बिछावन का भान कर सुन्दर दृश्यबन्ध को परोसती मूल कथ्य और अर्थ के साथ मेरी प्रेरणा स्रोत रही है। बस-बस रमेश? तुम मुझे उनकी कही बातें न बताओ मैं दिग्भ्रमित हो जाऊँगी तुमने जितना सुना है, सच सुना है, और इसी सच को सुनकर तू उन

सबको बताना मेरे भाई ताकि लोग यह तो समझ लें कि मेरा भी कोई अस्तित्व है, मैं भी किसी की प्रेरणास्रोत रही हूँ। मेरे मन और हृदय में कभी आभामय स्वर्णिम विविध कलाओं का प्रस्फुटन हुआ था। मैं भी श्री युक्त सृष्टि की अधिकारिणी रही हूँ। चलो अच्छा ही हुआ तुम सच के करीब हो। रमेश बुरा तो नहीं मान गये? तुम मुझसे कभी नाराज मत होना, मैं जितनी भी बुरी बन जाऊँ तुम वही सोचना जो तुमने शुभाशीष दा से सुना है। तुम्हारा यह भ्रम मुझे जीवन देगा! अरे? चुप क्यों हो बोलो तो सही। दीदी मैं क्या बोलूं मैं अपनी पूरी बात कह भी नहीं पाया था कि तुमने चुप करा दिया कम से कम सुन तो लेती इसी बहाने मेरा मन हल्का हो जाता कि मैंने वह सब कुछ बता दिया दादा की बातें जो उन्होंने मुझसे कहीं थी। अब जो होगा अच्छा होगा दीदी, अब समय नहीं है, तुम निर्णयात्मक भूमिका निभाओ नहीं तो कुछ अनर्थ हो जायेगा दीदी तुम किसी ऐसे प्रतिभा का विनाश होते देख सकती हो जिसको तुमने ही जन्म दिया हो माँ कभी अपने पुत्र का गला नहीं घोंट सकती। तुम आज माँ के भूमिका का निर्वाह करो दीदी? तुम्हें इन परम्पराओं की बेड़ियों ने जकड़ रखा है। तुम्हारे दोनों हाथों को काट डाला है, उसके बाद भी तुम सम्मान परम्परा, स्वाभिमान की रक्षा के खातिर अपने सजल जीवन धारा को रेगिस्तान बना रही हो। अपनी स्वतन्त्र चेतना के सजीव रूप की रक्षा नहीं कर सकती क्योंकि तुम्हारे निजी जीवन के वह सारे उपकरण तुम्हारे सामने विद्यमान है जिन्हें तलासने के खातिर मानव मन को आजीवन संघर्ष करना पड़ता है, तब शायद वह सम्पूर्ण साधन जुटा पाता हैं और कोई-कोई तो अन्तिम समय तक भूख, हताशा-निराशा भरा जीवन जीने को अभिशप्त होता है। उसे अपने आप पर क्षोभ तब होता है जब उसका शरीर, मन, बुद्धि शिथिल होकर निरूपाय हो जाता है। रमेश मैं समझ गयी तुम ठीक वही भाषा बोल रहे हो जो शुभाशीष ने तुम्हें अपनी भाषा में समझाया है या तुम्हारे व्यक्तित्व पर पश्चिमी सभ्यता की गहरी छाप या नयी पश्चिमी प्रेरणाएं तुम्हारी पथ प्रदर्शक बन गई हो और तुम विज्ञान एवं तकनीकी उपकरणों के इस्तेमाल के आदी हो चुके हो। समकालीन परिवेश में बहुतायत संख्या तुम्हारे जैसे लोगों की है। लोग संवेदना का गला यह कहते हुए घोंट देते हैं कि मैं संवेदना का पुजारी हूँ। यह एक सुःखद आश्चर्य है तुम भी छले गये? फिर क्या था मैं हठात् उठी और

बाथरूम जाने का बहाना बनाकर उससे दूर जा कर खड़ी हो गयी। ट्रेन की गति तीव्र थी दरवाजे के पास जब खड़ी हुयी तो बाहर का दृश्य रात का घना अंधेरा निर्जन वन-उपवन दूर-दूर तक फैली घोर निस्तब्धता बस कुछ सुनाई पड़ रहा था तो रेल इंजन का छुक-छुक ध्वनि या फिर मेरे कानों में रमेश के शब्द.... मैं कुछ पल के लिए ठहर सी गयी। मुझे ऐसे मोह ने आ घेरा कि लगा मानों अस्पृश्य, अगम्य, अवास्तव व्यापार जगत में एक मात्र सत्य है तो बस प्रेम बाकी सब मिथ्या मरीचिका है। मेरे वक्ष में कंपन होने लगा मैं घबराई! यह उत्तेजना भय की थी या आनन्द अथवा कौतूहल की ठीक-ठीक नहीं समझ में आ रहा था। मन में बार-बार इच्छा होने लगी कि काश वे मेरे उर-अधरों के पास होते? ताकि उन्हें अच्छी तरह से देख सकती परन्तु सामने देखने को कुछ भी नहीं था जो था उसमें मात्र इतना ही देखा जा सकता है एक विराट सभा प्रांगड़ में एक वक्ता सिर्फ अकेला बोल रहा हो और श्रोता हो ही नहीं, एकाग्र मन से कान लगाकर सुनने पर केवल अरण्य में झींगुरों की आवाज सुनाई दे रही थी, परन्तु दिखाई कुछ भी नहीं पड़ा। अचानक उमस की छू-छू, हःहः करती हवा चलने लगी देखते-देखते दृगों में तिस्ता का स्थिर जल अप्सरा के बिखरे केस की तरह झरने लगे और रात के अंधेरे में छाया छन्न समस्त वन भूमि पल भर में मर्मर ध्वनि करती भू-स्खलन के भार से मानों दुःस्वप्न देख जाग उठी हो। चाहे स्वप्न कहो या सत्य! 20 वर्षों के अतीत से प्रतिफलित होकर मेरे सामने जो एक परछाई अवतरित हुयी थी वह क्षण भर में विलुप्त हो गयी जो मृगमरीचिका की तरह मुझे लांघती फांदती द्रुत गति से शब्दविहिन उच्छ कल-कल ध्वनि की तरह दौड़कर तिस्ता के जल में जाकर डूब गई और प्रेमासिक्त आंचलों के कोने से बूंदों को टपकाती कभी नहीं गुजरी मेरे सामने या अगल-बगल से। जिस प्रकार अनिल गन्ध को उड़ा ले जाता है ठीक वैसे ही वह एक निःस्वास छोड़ उड़कर चली गयी और मैं चुपचाप आकर अपने सीट पर बैठ गयी पुनः याद आया अरे रमेश ने मुझे जो पत्र दिया वह तो मैंने पढ़ा ही नहीं पर्स खोला पत्र निकालकर पढ़ने लगी–

प्रिय दोस्त श्रेया!

स्नेह भरा आमन्त्रण मैं तुमसे स्टेशन पर मिलने आती परन्तु हिम्मत नहीं जुटा पायी कैसे तेरा सामना करूंगी आज जिस खुशी को लेकर तुमने जीवन

के अनेक झंझावातों से ऐसी लड़ी जैसे तुम बागों में फूलों से खेल रही हो - कभी तुमने यह सोचा कि भाव विह्वल होकर एक जाल में जकड़ती चली जा रही हूँ जो विगत में जाकर अलिखित इतिहास का कोई अपूर्व व्यक्ति हो जाऊँगी। स्वप्न खण्ड के इस आवर्त में कभी मेंहदी की महक, गिटार की तान एवं शब्द या अमृतमय शीतल जल से मिश्रित वायु के झोंकों के बीच क्षण-क्षण में चमकती विद्युत के समान नायिका बन अचानक दिख जाऊँगी और अभ्यारण्य में अभिसार हेतु निशा के जटिल पथों से संकुल स्वप्नों का घरौंदा बनाती और बिगाड़ती रहूंगी - कभी नहीं सोचा तुमने? और मैं तुम्हें बता नहीं पायी! आज सब कुछ दिखाई दे रहा है। शहजादे की शादी मेहमानों का आवभगत शहनाई की धुन परन्तु तुम्हारा ढहता हुआ स्वप्न महल उसे कोई नहीं देख सकता मेरे सिवा, मैंने बहुत कोशिश की शुभाशीष को समझाने की परन्तु वह कुछ मानने को तैयार नहीं है उसकी एक ही शर्त है? आज भी तुम उससे यह कह दो कि मैं साथ रहूँगी। वह सब कुछ छोड़कर सिर्फ तुम्हें पाना चाहता है।

अगर यह संभव नहीं हुआ तो वह अपना अनिष्ट अपने ही हाथों करने को तैयार बैठा है। वह जानता है कि शादी करके मैं खुश नहीं रहूँगा कोई स्त्री मुझे खुश नहीं कर सकती, उसका अभिमान जाग उठा है। वह तुम्हारी परीक्षा लेना चाहता है, कि क्या तुम प्रणय की रक्षा करोगी या उसका खण्ड-खण्ड कर पहाड़ के ऊपर से नदी में फेंक दोगी। उससे मेरी आज ही बात हुयी थी मैंने बताया कि तुम उसके पास जा रही हो। सुनोगी? उसने क्या कहा- देख विमला मैंने कहा था न कि वह मेरी शादी की बात सुनकर मेरे पास आ जायेगी वह सब कुछ सह सकती है परन्तु मेरा स्पर्श भर कोई कर ले उसे बर्दाश्त नहीं होगा यह मेरा विश्वास है। सारी परम्पराएं, मर्यादाएं एक तरफ, मेरा प्रणय एक तरफ जानती हो मेरा प्रणय ही भारी पड़ेगा खैर....... मैं उसका कोई उत्तर नहीं दे पायी क्योंकि वह टूट जायेगा इधर तुम्हारी वेदना मेरा हृदय छलनी कर दे रही है। दो पाटों के बीच फंसा मेरा नारी मन अनायास पीसता चला जा रहा है। आखिरकार एक तरूण व्यक्ति सुगंभीर, आवेगमय, वेदनापूर्ण आग्रह करता मन, लघु ललित नृत्य अपनी यौवन पुष्प जैसी देहलता को तीव्रगति से उपर की ओर लहराकर पलभर में वेदना, वासना, विभ्रम, हास्य, कटाक्ष से सराबोर कर समुद्री लहरों के बीचोंबीच उद्दाम वायु का सहारा लेकर फेंक

देगा। वह देहलता लहरों के बीच हिचकोले खाती न जाने कितनी दूर अनायास बहती चली जायेगी या समुद्री मछलियां उसे निगल जायेंगी अथवा समुद्री तुफानों में फँसकर वह नेस्तनाबूद हो जायेगी या तटीय सीमा से लगे किसी टापू में बसे सुन्दर प्रदेश में उसका सम्पूर्ण व्यक्तित्व अपनी आभा बिखेरेगा...... मैं असहाय सी महसूस कर रही हूँ अपेक्षाकृत तुमसे। तुम आज भी दृढ़ संकल्पित अडिग भाव से अपने दायित्वों का निर्वाह करने में नहीं चूकी बिना प्रतिफल की चिन्ता किये बगैर। युगीन परम्परा का इससे बेहतर उदाहरण और क्या हो सकता है। एक साथ दो व्यक्ति बन कर जीना (डबल रोल) कोई खेल तमाशा नहीं है। सम्पूर्ण धरा का आमूल चूल परिवर्तन है। चलो अच्छा हुआ तुम एक बार मिल बैठकर हल निकालने की कोशिश करना यह मेरा आत्म निवेदन है। विनयपूर्वक पत्र की प्रतीक्षा में।

तुम्हारी
विमला

मैंने पत्र पढ़ा चेहरे पर कोई विकार नहीं मन कुछ भी समझने और समझाने की स्थिति में नहीं था सामने बैठा रमेश मुझे एक टक देख रहा था कि गाड़ी जोरहाट पहुँचने ही वाली थी। कुछ लोग अपना सामान समेटने लगे थे मैं भी रमेश का सहारा लेकर सब सामान एकत्रित करने लगी गाड़ी प्लेटफार्म पर रूकी ही थी कि खिड़की के सामने शुभाशीष दिख गये मैं थोड़ी सकुचाई कैसे कहूँगी मेरे को वापस आज ही जाना है। तब तक वह अंक भर मुझे गाड़ी से पलक झपकते नीचे उतार लिया हाथ पकड़ कर कुछ कदम चले ही होंगे कि मैंने आवाज दी रूक जाओ सामान बहुत है रमेश साथ में है। पीछे मुड़कर देखा रमेश एक-एक कर सब सामान उतार चुका था। चुप-चाप खड़ा कातर नजरों से हम दोनों को देख रहा था। पुनः बोला दीदी तुम जाने की बात मत कहो देख रही हो कितने खुश हैं दादा। रमेश मुझे प्रस्तर प्रतिमा समझ लो निर्जीव प्राणी में संवेदना कहाँ होती है? न खुशी न गम पत्थर की आँखों में रोशनी नहीं होती। तब तक शुभाशीष मेरे पास खड़े विस्फारित नेत्रों से मुझे घूर रहे थे इतनी बड़ी-बड़ी आँखें तुम्हारे पास हैं नीली गहरी रोशनी से पूरित वह सब कुछ तुम्हारा है जो मेरे पास है। मैंने न कुछ कहने का प्रण किया था, परन्तु बोल ही पड़ी और 'तुम' सिर्फ 'तुम' किसके हो? इसका उत्तर तुम्हारे पास नहीं है।

सफर

छद्म वेशधारी, मेरी भावनाओं से खेलकर आज देह से खेलने के लिए उतावले जान पड़ते हो शादी का निर्णय करके तुमने यह बता दिया कि पुरुष औरतों को अपने खिलौने से ज्यादा कुछ भी नहीं समझता है। जब चाहा जैसे चाहा खेलना चाहता है। उसका परिष्कार और तिरस्कार दोनों का अधिकार उसके पास सुरक्षित रहता है। आज यह निर्णय हो जाना चाहिए कि तुम कौन हो। संभवतः पहली बार अस्तित्व और अस्मिता के प्रश्न से रूबरू होकर पूछती हूँ कि बीसवीं सदी के प्रारम्भ में मनुष्य अपने होने की सार्थकता राष्ट्रीयता से ओतप्रोत भारतीय सांस्कृतिक चेतना से विलग होकर उसके आत्मीय सम्बन्ध उसके लिए प्रेरणा के स्रोत हैं क्या? उसके जीवन का कोई न कोई राष्ट्रीय सरोकार तो होना ही चाहिए। त्याग और संघर्ष की नींव पर भारत के स्वप्नलोक का निर्माण होना है। सम्पूर्ण भारत एक साथ मिलकर अपने निजी और सामाजिक जीवन से विरत होकर स्वयं को समाज के लिए होम कर रहा है, और तुम मुझे अपने सम्बन्धों एवं आकांक्षाओं के तटबन्धों में बांधना चाहते हो। नहीं? ऐसा कभी नहीं होगा? अनीतिगत फैसले के पीछे खुद को दांव पर लगाने वाले व्यक्तित्व को अस्वीकार करती हूँ मर्यादा के भीतर रहकर सार्थकता की तलाश करूँगी। वर्षों से बंद अपने हृदय को ताले में रखकर सपनों की अर्गला खोल दूँगी। हाशिए पर जीना और जीते चले जाना अब मुझे स्वीकार नहीं.... नहीं .... नहीं ... अरे यह तुम क्या कह रही हो क्या मैं कभी तुम्हें हाशिए पर रख सकता हूँ तुमने जो कहा मैं सुनता रहा शायद अब चुप हो जाओगी पर तुमने सारी सीमाएं लांघकर मुझे आदर्श का पाठ पढ़ा रही हो चलो घर चलते हैं वहीं बैठकर बातें करेंगे। फिर हम तीनों घर के लिए रवाना हो गये बीच रास्ते में मैंने कहा मेरा आज का ही टिकट है। परन्तु कोई उत्तर नहीं। एक साथ घर में प्रवेश...... औपचारिकताओं के बाद सामान खोलकर दिखाने का आग्रह मैंने सब दिखाया उसके कपड़े थे दुल्हन की साड़ी थी, गहने थे और भी सामान इत्यादि......

वह बहुत उद्वेलित था लेकिन बड़े संयत भाव से मेरे कंधे पर हाथ रखकर कहा श्रेया सच बात यह है कि हम मध्यम वर्गीय भारतीय लोग सांस्कृतिक शून्य में जी रहे हैं और सांस्कृतिक रिक्तता का सम्बन्धों पर बहुत ही बुरा असर पड़ा है। मोहन राकेश का आधे-अधूरे का यह प्रसंग तुम्हें याद है "क्योंकि तुम्हारे

लिए जीने का एक मतलब रहा है- कितना कुछ एक साथ होकर कितना कुछ एक साथ पाकर और कितना कुछ एक साथ ओढ़कर जीना। वह उतना कुछ कभी तुम्हें किसी एक जगह नही मिल पाता, इसलिए जिस किसी के साथ जिन्दगी शुरू करती तुम हमेशा इतनी ही खाली इतनी ही बेचैन बनी रहती। (मोहन राकेश- आधे-अधूरे पृष्ठ संख्या ८१) सम्पूर्णता की तलाश और अधूरेपन की त्रासद स्थिति यह केवल तुम्हारा दर्द नहीं है। यह सम्पूर्ण मानव जाति का दर्द है। मनुष्य ने अपने अधूरेपन को दूर करने के लिए घर बसाया स्त्री-पुरुष सम्बन्ध की प्रगाढ़ता का अन्तिम सच उसके जन्मना से है, जिसके कारण वह नामचीन बन कर अपने इतिहास को दोहराता है परन्तु उसके बाद भी उसे पूर्णता का भान नहीं होता। मनुष्य की अदम्य जिजीविषा उसे नियन्त्रित और संचालित करती है। खैर बड़ी लम्बी बहस हैं श्रेया तुम्हें शेक्सपियर के नाटकों से बहुत लगाव हैं हेमलेट में एक जगह शेक्सपियर ने लिखा है कि "सही या गलत कुछ नहीं होता। हमारी सोच उसे सही या गलत बनाती है"। वास्तव में यही सच है "तुम अपने सोच को बदलो मूल स्वभाव में नैतिक बन्धन की स्वीकृति तो मैं भी समझता हूँ परन्तु जीवनोत्सव में कामनाओं की उन्मुक्त उड़ान स्वच्छन्द विचरण करने की खुली छूट तो होनी चाहिए।" तुम फिर एक बार सोच लो कैसे जीऊँगी मेरे साथ या मुझसे दूर होकर मुझे खोकर या पाकर............... चुप रहो शुभाशीष बहुत हो चुका शायद मेरा मन बदल ही जाता इतने संवाद के बाद लेकिन अंत में तुमने जो प्रश्न मेरे सामने छोड़ा उसका सीधा उत्तर है, तुम्हें पाकर। उसका कारण स्पष्ट कर दूँ तुमने यह नहीं कहा कि मैं तुम्हें खोकर नहीं जीना चाहता तुमने मुझसे पूछा तुम जानते हो मेरा सम्बन्ध देह राग से विरत शुद्ध सात्विक भावनात्मक प्रेम है। वह खोने और पाने से उपर उठकर हमेशा जीया है, जी रहा है, जीयेगा परन्तु तुमने अपनी ओजस्विता, धीरता, वाणी विन्यास की कला का जो प्रदर्शन किया है, क्या यही सच है, स्त्री-पुरुष सम्बन्ध की प्रगाढ़ता का? मुझे फिर न समझाना बल्कि खुद समझने की अनवरत चेष्टा करना वैसे अपनी कामना की पूर्ति तुम जैसे चाहो कर सकते हो विवाह या विवाहेतर सम्बन्धों के द्वारा परन्तु मैं अपनी कामनापूर्ति के लिए दूसरे पर निर्भर नहीं हूँ। प्रखर आत्म सम्मान एवं दृढ़ निश्चय के साथ आज तुमसे विदा मांगती हूँ शुभाशीष स्त्री-पुरुष सम्बन्ध में

सुख है तो पीड़ा की पराकाष्ठा भी। चलो आज विदा। कल फिर मिलेंगे? नये रिश्ते के साथ....... तब तक दरवाजे पर दस्तक होती है। मैं ही दरवाजा खोलती हूँ सामने वही सभ्य परिवार खड़ा था जो ट्रेन में मिला था अचानक मैं और वे दोनों एक साथ बोल पड़े अरे आप.... अच्छा? आइए-आइए आप किससे मिलने यहां आयें हैं। मुझे यह पता मिला था बहुत ढूंढ़कर यहां पहुँचा हूँ एक लड़का है आपके घर में अपनी बेटी की शादी के लिए आया हूँ। मैंने पूछा नाम क्या है। मुझे रमेश की चिन्ता थी उन्होंने कहा शुभाशीष नाम सुनते ही मेरे पैरों के नीचे से जमीन खिसक गयी। हतप्रभ, असहाय, निरूद्देश्य मैंने हाँ में सिर हिलाया.... शुभाशीष सामने खड़े थे परिचय कराया और तत्काल ट्रेन पकड़ने का बहाना बनाकर स्टेशन के लिए निकल पड़ी। पर्स में देखा टिकट तो है ही नहीं शायद शुभाशीष टिकट निकाल लिए थे। मैं बिना टिकट ही ट्रेन में बैठ गयी शायद ट्रेन का समय 10 मिनट पहले था वह उस दिन लेट थी सिग्नल हुआ ही था कि प्लेटफार्म पर खिड़की के सामने शुभाशीष खड़े थे मैंने हाथ हिलाकर अभिवादन किया तब तक ट्रेन आगे निकल चुकी थी। छुक-छुक-छुक करता शहर पीछे छूटता चला गया यादों के साथ.....

□□□

धनवां

इस संसार में कितना सत्य है? और कितना स्वप्न? व्यक्ति विजय पर व्यर्थ ही मुस्कराता है। तूफान का एक झोंका जय को पराजय में बदल देता है। हारी हुयी धनवां ऐसा सोच रही थी। जिन्दगी एक तड़प के अलावा कुछ भी नहीं है। प्रेम की तृष्णा एक घर को उजाड़ती है और दूसरे घर को उजाड़ने का प्रयास करती है। तब तक उसका बेटा महानन्द एक जोगी के साथ घर में प्रवेश करता है धनवां जोगी आगन्तुक को देखकर उठ खड़ी हुयी। माँ कुछ पूछे तब तक बेटे ने कहा माँ इन्हें अतिथि मानकर भोजन करा दो मैंने अभी-अभी इनको देखा ये एक पेड़ के नीचे बैठकर कच्चे आम खा रहे थे पूछने पर बोले मुझे भूख लगी है इन्हें मैं अपने घर ले आया हूँ कच्चे आम खाकर ये बीमार पड़ जाते तो इनकी देख भाल कौन करता। मना करने पर इन्होंने क्या कहा बताऊँ, माँ बोली हाँ-हाँ बताओ। ये कहते हैं कि भूख में मनुष्य को जो कुछ मिल जाता है, वह पशु की तरह खाने लगता है, इनको बहुत दूर जाना है। इनका सारा सामान चोरों ने चुरा लिया है। माँ इन्हें भोजन करा दो। माँ एकटक उन्हें निहार रही थी त्रिपुण्डधारी टीका-तिलक लगाये साधुवेष धारी को अन्न (कच्चा) ग्रहण कैसे कराये धर्म नीति के अनुसार धनवां उन्हें छू भी नहीं सकती। बेटे ने पुनः अपनी बात दोहरायी और कहा मैं इन्हें भोजन कराने के बाद जरा पता करूँ कि किस व्यक्ति ने ये लूटपाट की है उसका पता चल जाने पर उसका नाम पता मिटा दूँगा। पुत्र की बात सुनकर मां हल्की सी मुस्कराई। और जोगी महाराज से कहा, महाराज हम निम्न जाति के लोग हैं कच्चा भोजन कैसे कराऊँ, पक्का भोजन बनाने की तैयारी में थोड़ा समय लगेगा आप बच्चे की बात का बुरा मत मानियेगा, अबोध बालक है क्षमा कर दीजिए। धनवां पुनः भोजन की तैयारी में जुट गयी। जोगी पुनः बोले भूख के मारे मेरे प्राण निकले जा रहे हैं देवी ज्यादा समय प्रतीक्षा नहीं कर पाऊँगा, तब तक धनवां विविध प्रकार के भोज्य पदार्थ से भरी थाली सामने रखती हुयी बोली क्षमा करें बहुत

अपराध कर चुकी हूँ और अन्य अपराध न हो जाए इसके लिए अपने को सचेत रखती हूँ। कैसा अपराध देवी इतने होनहार बालक की जन्मदात्री दोषी नहीं हो सकती। महाराज इसमें मेरा श्रेय क्या है, पुरुष प्रधान समाज में सर्वेसर्वा पिता के नाम की ही मान्यता है। मेरे बालक को तो वह भी नसीब नहीं हुआ। महाराज हतप्रभ! क्रोध से आंखें लाल हो उठी। इस धृष्टता के कर्त्ता को सजा अवश्य मिलनी चाहिए और अनिश्चय की मुद्रा में चलने को उद्यत हो गए, चलते वक्त कहा इसकी शिक्षा की पूरी व्यवस्था मैं करूँगा। यह पढ़ने योग्य हो जाय तो इसे मेरे आश्रम गुरुकुल विद्यालय में भेज देना यह बालक एक दिन राजा बनेगा। धनवां फफक कर रो पड़ी और बोली, महाराज आपके ये शब्द मेरे लिए जिस दिन वरदान साबित होंगे मैं उस दिन की प्रतीक्षा करूँगी। मेरी यही इच्छा है कि मेरा पुत्र एक दिन इस राजतन्त्र का प्रकाशमान पुरुष के रूप में जाना जाए। कृपा करके अपना नाम और पता लिख दें। महाराज ने अपना नाम पता लिखकर चलते बने महानन्द उन्हें यथा स्थान तक पहुँचाने के लिए चल पड़ा उन्होंने रोकना चाहा परन्तु आचार संहिता का पाठ पढ़ाते हुए उनके साथ-साथ चलता रहा। महाराज ने पूछा बेटा तुम्हारे पिता का नाम क्या है वह बेहिचक तुरन्त बोला मैं अपनी माँ को जानता हूँ मेरे पिता मेरी माँ को इस निर्जन वन में अकेले छोड़कर कहीं चले गये। महाराज ने कहा ऐसे पिता को तो फाँसी दे देनी चाहिए बड़ा क्रूर था। तुमने उस क्रूर का पता नहीं लगाया। नहींऽऽऽ न ही कभी लगाऊँगा। शेर से लड़ना बहादुरी है, अजा से लड़कर अपनी जग हंसाई नहीं कराऊँगा। महाराज बालक की निर्भिकता और साहस से चकित हो उठे। बोले तुम्हें जब कोई जरूरत पड़े मुझसे मांग लेना। बालक ने कहा याचना भिखारी करते हैं वीर की जो इच्छा होती है वह स्वयं अर्जित कर लेता है। अगर आपको देश हित में अकिंचन व्यक्तियों के लिए कुछ करना है तो उच्च शिक्षा प्राप्ति के लिए विश्वविद्यालय बनवा दें जिससे हमारे जैसे अकिंचन प्राणियों को उच्च शिक्षा मिल सके। इधर माँ धनवां व्याकुल थी महानन्द वापस नहीं आया काफी देर हो रही है, कहीं किसी ने मेरे बच्चे को मार तो नहीं डाला उसके मन में घोर हताशा थी, उसका प्रेम जाति-धर्म की बलि वेदी पर चढ़ गया था। वह एक बड़े जमींदार चन्द्रिका पाण्डेय से प्रेम करती थी या यूं कहो वह जमींदार उसके रंगरूप से मोहित होकर अपने

प्रेम पास में बांध लिया था अपने पत्नी और चार बच्चों की परवाह किए बगैर। परन्तु सामाजिक दण्ड विधान से बंधा पांडित्यपूर्ण समाज कभी धनवां को स्वीकार नहीं करता इसी कारण धनवां उपेक्षिता की तरह जीवन यापन कर रही थी, अपना अपमान तो उसने बर्दाशत कर लिया लेकिन परिस्थितिजन्य पुत्र का अपमान कैसे सहे आज उसे अपने पुत्र मोह में पिता का नाम चाहिए उसके लिए वह सब कुछ करने को तैयार हो गई। एक दिन जमींदार भरी सभा में अपनी राजाज्ञा सुना रहे थे उसी समय धनवां को उनकी गरजती आवाज सुनाई दी वह अपने कारिन्दों को आदेश दे रहे थे।

कल मेरे बेटी की शादी है। राजा-महाराजाओं, शहर के सम्मानित जनों, ग्रामीण जनता को भी निमन्त्रण पत्र भेजा है। लेकिन एक बात ध्यान रखना होगा कि बड़ी जाति के विशिष्ट लोगों के बीच में ये दलित जाति के लोग न पहुँच जाय दोनों के रास्ते अलग हो। भोजन व्यवस्था ब्राह्मण कुल के लोग ही संभालेगें। सामाजिक प्रतिष्ठा में कोई उनका सानी नहीं सम्मान में कोइ कमी नहीं होनी चाहिए। हाथी घोड़े लाव लश्कर से सजे बाराती के रास्ते में निम्न जाति के लोग सामने न पड़े बारात की शोभा पर कोई आंच न आने पाये। धनवां को अपने कानों पर मानो विश्वास ही नहीं हो रहा था जो कल तक मेरे हाथों भोजन करता था मेरे शयन कक्ष में जिसको नींद आती थी वही प्रवंचना कर रहा है। वह चिल्ला उठी अरे मालिक अपनी बेटी की शादी में इतनी तैयारी कर रहे हो और मेरे बेटे का पिता होने का गौरव प्राप्त नहीं करोगे मैं आज इसी जमींदार घराने में आ गयी हूँ अब नहीं जाऊँगी जमींदार ने उसे समझाने की बहुत कोशिश की वह नहीं राजी हुयी फिर उसे पागल तक करार कर दिया, परन्तु धनवां ने हिम्मत नहीं हारी और उच्च तबके के लोगों के पास जाकर आत्म रक्षा की गुहार लगाने लगी एक बारगी जनता उबाल खाने लगी धनवां की चर्चा आम हो गयी, लोग उनका पानी पीना तो दूर रहा चन्द्रिका पाण्डेय के दरवाजे पर भी जाना अपनी बेइज्जती समझने लगे, तिरस्कार इतना कि बेटी की शादी का निमन्त्रण कार्ड बंटा वैवाहिक कार्यक्रम रद्द कर दिया गया। इस घटना से मर्माहत चन्द्रिका पाण्डेय ने अन्न-जल त्याग दिया और मरणासन्न अवस्था में जा पहुँचे क्योंकि पत्नी का धिक्कार और जवान बेटों और बेटी द्वारा दुत्कार बर्दाशत नहीं कर सके। सामाजिक बहिष्कार तो उस युग की दण्ड विधा

थी। समाज ने एकजुट होकर उन्हें दंडित किया, दोनों पैरों के बीच डंडा लगाकर दिन-रात खड़े रहना पड़ा, खौलते पानी में हाथ डालना पड़ा, विकल मन मस्तिष्क अधीर हो गया आहत हृदय से उच्च कुल ब्राह्मण का मोह छोड़ चमार जाति अपनाने पर विवश होना पड़ा। ब्राह्मण जाति की हत्या हो गयी गांव में मातम छा गया जन-जन का हृदय घृणा से भर गया उन्हें भी सभा में यह स्वीकार करना पड़ा कि धनवां मेरी पत्नी है। महानन्द मेरा ही बेटा है। उसी दिन चन्द्रिका पाण्डेय को घर-परिवार, जाति, गांव-समाज से अलग कर दिया गया और धनवां को भी सामाजिक दण्ड भुगतना पड़ा परन्तु सामाजिक न्याय प्रियता के कारण प्रेम की विजय हुयी और धनवां चन्द्रिका पाण्डेय के साथ जीवन यापन करने लगी, जिस धन के मद में चन्द्रिका ने उसे अपनाया था आज उसी धन के अभाव में भूख की यातना झेलनी पड़ रही थी।

महल से निकल कर झोपड़ी में अपना जीवन व्यतीत करना पड़ रहा था जीवन की विसंगतियां इस मोड़ पर लाकर खड़ा कर दी। चन्द्रिका ने धनवां से कहा चिन्तित न हो जिन्दगी धूल का आकार मात्र है। जैसे सूखी हुयी लकड़ी में आग होती है उसी प्रकार जीवन में चिन्ता की चिंगारियां सुलगती रहती है। आशा भरा जीवन सुख देगा तुम्हारा बेटा महानन्द एक दिन सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त करेगा उसी के लिए मैंने अपना राजपाट छोड़ दिया और अब संन्यासी की तरह जीवन जीऊँगा क्योंकि आकर्षण सौन्दर्य में नहीं नवीनता में होता है। चलो हम लोग मधुकरी करके जीवन यापन करेंगे धनवां बोली नहीं यह अक्षम और कायर करते हैं। मैंने तो निम्नजाति में जन्म लिया है मजदूरी करके अपने परिवार का भरण पोषण करूंगी, आपने तो कभी काम किया ही नहीं है हमेशा आदेश दिए हैं इसलिए आप आज वह आदेश मुझे देकर काम करायेंगे जैसे वाजिद अली शाह किया करते थे। हमने वचन दिया है मालिक? आप भिक्षा मांगने की बात कह कर मुझे लज्जित न करें। यह कह कर दोनों ने एक दूसरे की आँखों में आँखें डाल दी। आदर्शों ने सत्य को क्रूर दृष्टि से देखा किन्तु धनवां का रूप सौन्दर्य आज भी मन को गुद-गुदा रहा था आलिंगन में अवगाहन करने को हृदय विकल था क्योंकि रूप का फूल महकता है तो देवता भी विचलित हो जाया करते है। धनवां बड़ी कातर दृष्टि से देखकर कहा मालिक आप न जाने कैसे मुझे अपने इन्द्रजाल में फंसा लिया न दिन में

आपको भूल पाती हूं, न रात मुझे अपने गोद में सुलाती है। आप ने दिन की दुनिया छीन ली और रात की नींद। जमींदार तड़प उठे बोले धनवां क्या तुमने मुझे नहीं छीन लिया? नहीं-नहीं मालिक स्त्री कभी यह मजाक नहीं कर सकती वह पुरुष को कब छीन पायी है, प्रेम पुरुष का एक यौवन उत्सव भर है, और स्त्री का प्रेम उसका पूरा वजूद होता है जिसे वह कभी नहीं भूल पाती प्रेम! उम्र, जाति, धर्म, अमीर-गरीब नहीं देखता है। उसे तो एक विशाल ह्रदय और निमिष मात्र पल चाहिए। जमींदार तुरन्त बोले नहीं धनवां तुम मेरी श्वास-श्वास में रची-बसी हो। मालिक आप पहले भी ऐसी बातें कर चुके हैं अपने मोहपाश में बांधकर प्रेम के कोड़े बरसायें हैं, अब मेरा विश्वास मुझसे रूठ गया है। आपने तो वही किया जो आम पुरुष किया करते है स्त्री से फूल की तरह खेलकर सूंघकर मसलकर फेंक देते हैं।

धनवां तुम गलत सोच रही हो पुरुष की दृढ़ता अगर गिरती है तो नारी के तिरष्कार रूपी तलवार से कट कर गिरती है। यह वाक्य पूरा भी नहीं हुआ था कि महानन्द घर में प्रवेश करता है। उसकी आंखे लाल हो उठी, माँ महापंडित अपराधी उपस्थित है, दण्ड देने का आदेश दो। धनवां बोली तो सुनो? महानन्द ये तुम्हारे पिता हैं तुम उनका अपमान करके दोष का भागीदार बन गया तुम्हें दण्ड देने का अधिकार किसने दिया ये तुम्हारे पिता बाद में हैं, मेरे पति देवता पहले हैं। चरणों में अपना शीश झुकाकर माफी मांग लो और जमींदार की तरफ देखकर बोली मालिक महानन्द बड़ा जरूर हो गया है पर बचपना नहीं गया। बात-बात में क्रोध करता है। महानन्द के ह्रदय में ज्वार आया, लावा फूटने लगा पिता शब्द सुनकर परन्तु उसने आँसुओं से सारी पीड़ा धोने का संकल्प लिया। संसार में यदि कोई भावुकता के सहारे जीना चाहता है तो जी नहीं सकता प्रेम मनुष्य की बुद्धि को भटकाता है। पहले समस्याओं का हल ढूंढ़ना होगा फिर सुख। जमींदार पुत्र को गले लगा कर बोले शेर का बच्चा शेर ही होता है। तुमने धर्म का निर्वाह किया मैं अधर्मी, पतित, स्वार्थी पिता हूँ जो तुम्हारा पालन पोषण भी न कर सका फफक-फफक कर रो पड़े, महानन्द ने कहा पिता जी मैं उस समाज से बदला लूँगा जो मेरी माँ को दण्डित किया और उस समाज के लिए अपनी बलि भी दे सकता हूँ जो माँ का मान बचा रखा है।

कहते-कहते महानन्द ने अपने अंगुलियों से आँखों के ओटों से बहते हुए आँसू को पोंछे और फिर सांसारिक नियम संयम धर्म, कर्म में रत हो गए पर महीनों तक उसकी आँखों के आँसू रूकते ही नहीं थे। अपितु किसी को कितना बड़ा दुःख हो समय और संसार सब कुछ भुला देता है।

महानन्द अध्ययन में रत हो गए गुरुकुल विश्वविद्यालय के हर विद्यार्थी हर विद्वान के वाणी से उनकी प्रशंसा सुनाई देने लगी दूर-दूर से आये विभिन्न जाति, धर्म के राजकुमार विद्यार्थी उनके चरणधूलि अपने मस्तक पर लगा कर अपना सौभाग्य समझते थे उनके रचे सूत्र आचार्यों एवं विद्वानों के मुखारविन्द से सुनायी पड़ते थे कुलपति ने उन्हें "साहित्य विशारद्" की उपाधि देकर सम्मानित किया - समय जाते देर नहीं लगा, गुरुकुल विश्वविद्यालय के होनहार विद्यार्थियों की श्रेणी में गिने जाने लगे। एक दिन सबेरे उठकर महानन्द ने आचार्य से पूछा मैं अपने गाँव जाना चाहता हूँ अपने पिता के वंचित स्नेह को पुनः पाना चाहता हूँ गाँव और समाज में फैले अन्याय और अत्याचार को मिटा.कर जो अन्यायियों के प्रति मन में प्रतिशोध की भावना प्रज्जवलित हो रही है उसे शान्त करके ही चैन से बैठूँगा। यह वाक्य सुनकर आचार्य संयत भाव से बोले अवश्य "अत्याचार करना पाप है तो अत्याचार सहना उससे भी बड़ा पाप है और यदि आपको उसके प्रतिशोध लेने का अवसर अन्तिम श्वास में भी मिले तो भी अवश्य लेना चाहिए।" आज नहीं कल गुरुवार का दिन शुभ मुहूर्त और अमृत योग है चले जाना तुम्हारा कभी अनिष्ट नहीं होगा। यह कहते हुए उसका हाथ पकड़कर हस्तरेखा देखते हुए आचार्य ने कहा अरे हाथ में दिग्विजय की रेखाएं है। कोई शत्रु तुम्हें पराजित नहीं कर सकेगा, जन-जन में तुम्हारी पूजा होगी पर एक दुःख भी है... बीच में महानन्द बात काटते हुए बोले दुःख एक नहीं हजार हों परन्तु मैं जानना नहीं चाहता हूँ वह दुःख क्या है? मैं जीत हासिल करना चाहता हूँ और वह ज्ञान पाना चाहता हूँ जिससे हाथ की रेखाएं बदल कर दुर्भाग्य का गला घोंटकर सौभाग्य का उत्सव मनाया जा सके। महानन्द के इस उत्तर से आचार्य प्रसन्न होकर विदा किए आशीर्वाद देते समय उनकी आँखें छलछला आयी। महानन्द के आने की सूचना माँ को मिल चुकी थी दबी जुबान से उसने मालिक से बताया दोनों खुश हुए गाँव भर में तैयारियाँ शुरू हो गयी जैसे कोई वैवाहिक कार्यक्रम हो। महानन्द जैसे ही गाँव के निकट

आया जमींदार ने समस्त जनों के साथ अभिवादन किया परन्तु महानन्द ने कोई सहभागिता नहीं दिखाई और अपने माँ को गले लगाकर कहा माँ तुम उन सभी को पहचान कर बताओ वह कौन है? जिसने तुम्हें प्रताणित किया था उसका गला काट कर तुम्हारे गोदी में रख दूँ। माँ ने कहा बेटा वीर अगर मूर्ख है तो अपना ही गला काट लेता है और अगर वह विद्वान है तो दूसरों के कटते हुए गले को बचा लेता है। तुम अपनी विद्वता से अपने कार्यों से समाज के रूढ़िवादी परम्पराओं के शिकार दीन-दुखियों की सहायता में अपना ओजपूर्ण व्यक्तित्व का उपयोग करो गुरु परम्परा का निर्वाह करो। माता के अपमान का बदला लेने के लिए गुरु दीक्षा ली है या अपने राजतन्त्र की रक्षा के लिए? तब तक जमींदार साहब आकर महानन्द को गले लगाकर बोले महानन्द हम आपकी वीरता से खुश हुए तुम्हारी भावनाओं का मेरे पर प्रभाव पड़ा है। इस लिए इस राजतन्त्र की बागडोर आज मैं तुम्हें सौंप कर शान्ति से मरना चाहता हूँ क्योंकि आज समाज से अत्याचार अनाचार मिटाने में सक्षम एक नवयुवक दक्ष एवं कुशल शासक हमारे बीच जन्म ले चुका है। धन्य है वह माँ जो मेरे सामने खड़ी अन्तिम दम तक धर्म, जाति और समाज की रक्षा की खातिर कटिबद्ध है।

□□□

करवाचौथ

सूर्य लगभग डूब चुका था उसकी रही सही किरणों पर अंधकार का पर्दा पड़ चुका था मानों गोधूली को कहीं दूर, कहीं दूर छिपा कर रात रानी अपने उल्लसित मन से चाँदनी की आभा बिखेरने को आ़कुल आकण्ठ डूबने को तत्पर थी, उसी क्षण एक स्त्री खूबसूरत मुहब्बत की कहानी याद करती हुयी अपनी यादों के सहारे शहर से कई मील दूर एक छोटी सी पहाड़ीनुमा घुमावदार टीले से उतर रही थी मन में हजारों हजार प्रश्न उमड़-घुमड़ रहे थे, बादलों के नीले रंग में घुले काले बादल ने अपने को मेघ के नन्हीं बूंदों में घोल दिया था। स्त्री मन ने बाह्यान्तर के रज, कण, पग पर पड़ी बूंदों को देखा तथा अन्तस में भरे हुए बारिस, बादल और बिजली की चपलता देखी? जल्दी-जल्दी पग बढ़ाते हुए ज्यों ही नीचे उतरी पेड़ों की पत्तियों पर पड़ती बूँदों की टप-टप-टप हृदय पर मानों घन हथौड़े बजा रही थी, उसके मन में इच्छा उत्पन्न हुयी कि उसकी आँखों में अश्रुधारा की झड़ी लग जाए और उसका भरा हुआ मन हल्का हो जाए पर ऐसा नहीं हो सका, जिसके लिए मन विकल था वह सामने दोनों बाहें पसारे यूँ खड़ा था, जैसे रातरांनी आकर उसके अंकों में समा जायेगी। उसी क्षण उसने देखा प्रिय एक अनजानी सूरत से रूबरू थे, अचानक नजरें उठीं तो एक दूसरे से दीदार हो गया फिर परिचय का सिलसिला चला ये हैं अंकुर और मैं राजीवनयन, मैंने कहा और मैं...हा...हा... हा... वातावरण मोहावृष्टि से आच्छादित हो गया। अच्छा? तो बिना सम्बोधन मैं विदा लेती हूँ। अंकुर ने कहा आप इस अंधेरे में अकेली स्त्री होकर कैसे जायेंगी चलिए मैं घर छोड़ आता हूँ। मैंने कहा नहीं अंकुर मैं अकेली चली जाऊँगी कहते हुए मैं आगे बढ़ गयी। राजीवनयन ने आवाज लगाई अरे..... रूकिए आपको कोई डर नहीं है पर मुझे क्यों अकेले छोड़कर जा रही हैं। हमें भी साथ लिए चलिए, इस बरसात में... सुहाने सफर में सहचरी के साथ दूध से नहाई

चाँदनी में नौका विहार कर, बिसरे हुए फूलों की गन्ध पराग की महक से टपकता अमोघ अधर रस का पान कर लूँगा। पुनः हम दोनों गाड़ी में बैठे। राजीवनयन ने चुटकी लेते हुए पूछा कि बड़ी उदास हो क्या बात है? सुनकर क्या करोगे इस दर्द की कोई दवा नहीं है, यह तुमसे विदा का समय होता है, मन को मैं लाख समझाऊँ उदास हो ही जाती हूँ, इस अकाट्य सत्य से रूबरू होते हुए कि हम दोनों एक नीड़ में नहीं रह सकते! मैं अपने दिल की जज्बाती हालात को छुपा नहीं पाती हूँ। जानते हुए भी कि मेरी तड़पन सुनकर तुम्हें दुःख होता है। राजीवनयन ने कहा अच्छा? नील पीत से पूरित मुझे अपने मूक दृष्टि से बेध दिया जिससे तन मन झंकृत सा हो गया संभल भी नहीं पाई तब तक हमसफर ने अपनी गाड़ी की दिशा बदल दी। मैंने कोई सवाल नहीं किया परन्तु चेहरे का रंग बदल गया बिल्कुल सूर्ख लाल....... उसके स्पर्श मात्र से ही मेरे चित्त की चपलता का वेग अपने उफान पर था। जिसकी धार तपती धरा को सींचने का एक उपक्रम जैसा लगा शायद? शब्दों में व्यक्त करना कोई आसान काम नहीं, मेरी वाणी यहीं चूक जाती है। वैसे इतना अवश्य है कि मेरे मानस पटल में अपने प्रतीक पुरुष की जैसी परिकल्पना थी उसमें बाल बराबर भी अन्तर नहीं है, वे मेरी आत्मा में बस गये हैं। मुझे रातदिन एक भय सताता रहता है कि उन्हें मुझ में कभी कोई त्रुटि न दिख जाए जिसके कारण हम एक दूसरे से विलग हो जाएं। उनकी कोई कमी अगर मुझे दिख भी जाए तो उसका कोई मूल्य नहीं हैं मेरे लिए, क्योंकि वह मेरे मन में देव पुरुष के रूप में स्थापित हैं। उनके प्रेम नदी में मैं दिन रात डूबती उतराती रहती हूँ। जिसमें आकाश जैसी ऊँचाई और समुद्र जैसी गहराई है। यही कारण है कि चूकने की कोई सम्भावना नजर नहीं आती। मेरा सर्वस्व सदैव उन्हें न्यौछावर करने के लिए उद्यत रहता है? और वह भी स्वतन्त्रता के पोषक हैं, उनकी निर्भिकता, उनका साहस एक अप्रतिम उदाहरण है। ऐसा आदर्श पुरुष मैंने कभी देखा ही नहीं था। सम-सामयिक विषय विशेष परिप्रेक्ष्य में उनका विचार विमर्श सुनकर मैं अवाक् आश्चर्यचकित हो उठती हूँ। ऐसा कोई विषय नहीं जिसका वह समकालीनता के यथार्थ पटल पर खड़े होकर व्याख्या न कर सके। जिसका उन्हें पूरा ज्ञान नहीं होता उस आलोचना-समालोचना के चक्कर में नहीं पड़ते। परन्तु कभी-कभी मेरे मन में प्रेम के साथ ईर्ष्या का भाव जाग्रत हो जाता है

खैर......... अभी वे मेरे पास थे फिर भी मन विगत में चला गया क्योंकि दिन रात हजार कार्यों की व्यस्तता के बाद भी उनको ही पढ़ती रहती हूँ। अचानक! एक जगह पर गाड़ी रोक दी बिल्कुल निर्जन स्थान था दूर कहीं दो चार दिये टिम टिमा रहे थे फिर मुझे अपने अंकपास में बांधते हुए निर्निमेष दृष्टि से खूब निहारा...... मूक वाणी से आच्छादित प्रेम रस में डुबोकर असीम आनन्द की अनुभूति करा दी। मैं सिर्फ मुस्करा कर रह गयी क्योंकि मेरा मन उन्हें अपने से विलग होने मात्र से कांप जाता है, और अभी मैं कुछ कहती तब तक वे गाड़ी स्टार्ट करते हुए बोले चलो देर हो रही है, घर पहुँचना है, आज तुम्हें मैं यही छोड़ता हूँ। मैं निर्विकार उन्हें देखती रही, वे तुरन्त बोले यही का मतलब घर छोड़ता हूँ, अजीब हालत है तुम्हारी। अच्छा? चलो एक बार फिर अन्तिम मोहक विदा ले लूं यह कहते हुए मेरे अधरों पर अपने अधरों की मिठास टपकने का आभास दे स्वयं संगीत की ध्वनियां बिखेरने लगे। मानों वह मेरी प्राणदायिनी शक्ति हो। उनके मुख से जो कुछ मैंने सुना हो वह मात्र संगीत भर नहीं था उसमें जीवन की प्रज्वलित प्रदीप की आभा ज्योति जल रही थी, जिसके कारण मेरा मुख मण्डल अगणित आभाओं से युक्त दमकने लगा था। मन इतना विह्वल हो गया कि मेरा धैर्य जवाब देने लगा। उन्हें विलग होते हुए देख आकुल विकल हृदय अधीर हो गया और विरहाग्नि की प्रखर ज्वाला मन में धधकने लगी। लेकिन समय एक पल भी नहीं ठहरता है, वह गतिमान है। राजीवनयन मुझे घर के रास्ते में उतार कर अपने चिर बसेरे में जा पहुँचे। पल भर में मेरी दुनिया बदल गयी। शेष बची वही पुरानी स्मृतियाँ जो मेरे साथ थी, इसके अलावा कुछ भी नहीं था। आज का दिन पौराणिक दंत कथाओं में करवाचौथ के नाम से जाना जाता है। मैं ज्यों ही आगे बढ़ी सुहागिन महिलाएं झुण्डों में पूजा की थाल सजाकर गंगा माँ की गोद में चमकते चाँद जैसे दर्पण में पति के मुख-माधुर्य के दीदार की ललक लिए जा रही थी। अचानक मुझे याद आया मैंने सुबह ही राजीवनयन से कहा था "तुम्हें मैं चाँद के उजालें में नहीं देख सकती तो सूर्य के तेज प्रकाश पुँज में तो देख लूँ" शायद यह शब्द नयन को छू गया होगा, और वह चन्द्र की चंचल किरणों के बीच अठखेलियाँ करते अपने पार्श्व में मुझे बिठाकर आनन्दातिरेक में तन्मय संयोगावस्था का भान करा गये, और मैं पूर्णता का आभास करती लम्बे डग भरती हुयी अपने

सदन की ओर चल पड़ी। आहा! कितना सुखद क्षण था........ आधी रात थी, निस्तब्धत निशा अपने पाँव पसार चुकी थी, परन्तु मेरा हृदय परिणय और प्रणय की वेदना से विगलित हुए जा रहा था। क्योंकि मैंने जब-जब अपने सुख को मुट्ठी में बन्द करना चाहा वह मुझे धता बता कर छू मंतर हो जाता है, और मैं स्व-आबद्ध करने की लालसा लिए सुख की परिकल्पना कर-कर के थकी हारी औरत की कहानी बनती चली गयी। बिस्तर पर निढाल पड़ी विगत की यादों में खो गयी, उसी समय विविध् भारती से रेडियो में गाना बज रहा था- "वो घड़ी याद है जब तुमसे मुलाकात हुयी, देखते-देखते दिन ढला और रात हुयी.... वह शमां आज तक हमसे भुलाया न गया। हमसे आया न गया, तुमसे बुलाया न गया, फासला प्यार में दोनों से मिटाया न गया".... बेईंतहा प्रणय भार है, फिर भी सच तो सच ही होता है। राजीवनयन पर मेरा कोई अधिकार नहीं है? हम दोनों समझौतावादी दृष्टिकोण, परम्परा, रूढ़िवादिता की आस्था से सराबोर जीवन जीने को अभिशप्त है। दूसरे दिन पुनः नियत समय पर मैं अपने कार्यों में लिप्त हो गयी और राजीवनयन भी उच्च पदस्थ अधिकारी होने के कारण व्यस्तताओं से घिरे रहते हैं। मैं आज बात नहीं कर पायी अचानक फोन की घंटी बजी लेकिन उधर से कोई आवाज नहीं आ रही थी लगता था फोन डेड हो गया था। अगले दिन रविवार था, राजीवनयन से बात हुयी मेरी ढेर सारी शिकायतें थी, प्रणय निवेदन था, आत्मानुभूति की अपनी एक गाथा मैं कहती रही, लेकिन राजीवनयन एक शब्द में अपनी बात कह गये, अच्छा? मैं अपनी गलती मान लेता हूँ। आगे बोलो कैसी हो? कैसा रहा करवाचौथ......... उसके अगले दिन राजीवनयन को बाहर जाना था। मैं बहुत चिन्तित थी उनकी अनुपस्थिति बहुत खलती है। परन्तु आज कुछ अचानक घट गया! वह जाते-जाते मुझे मेरी अहमियत से अवगत करा गये, और समय सीमा के परिधि में आबद्ध करते हुए परस्त्री के संयोग और दुर्योग की कहानी कह गये। इतना ही नहीं एकटक निहारते हुए कहे "मेरे पर तुम्हारा क्या आधिपत्य है? मैं तुम्हारे लिए नहीं हूँ। मेरी अपनी दुनियाँ है, तुम धीरता से काम लो" वे खुद भी उद्विग्न थे लेकिन आपसी वार्तालाप एवं युगलबन्दी पर निषेधाज्ञा जारी कर दी। मैं निर्विकार, निस्तेज, रक्तहीन, करुणभाव से ग्रस्त गूंगी बहरी बनी रूंधे गले से आह भी नहीं भर पायी। पहली बार मुझे इस भाव से तिरष्कृत होना पड़ा,

मेरे साहसी मन को कठोर आघात झेलना पड़ा। मैं तीन दिन, तीन रात पल भर भी सो नहीं पायी। आँखों के दोनों कोरों से अश्रु की धार रूकने का नाम नहीं ले रही थी, लगा जैसे मैं निरूपाय माटी की एक मूरत हूँ? आखिरकार मेरा दोष सिर्फ इतना था कि मैंने प्रेम की पराकाष्ठा का अतिक्रमण किया था। एक अन्जानी, अजनबी, अनकही अनुभूति से अनुप्राणित प्रेम को पाल लिया था, परिणति के संभावना आँके बिना। आखिर प्रेम की अनेकानेक गाथाओं में जो वर्णित है क्या वह झूठ है, असत्य है, अप्रिय है। नहीं!!! ऐसा कुछ भी नहीं है। प्रेम की मूक वेदना ही एक नया इतिहास रचती है। प्रेम निरन्तर सपने बुनता है, वैसे ही मैंने भी सोच लिया था कि मेरा प्रेम रस अतिशय मधु, विलक्षणता से भरा अमृत रसपान है। मेरी दो आँखें राजीवनयन को कहीं विचलित नहीं होने देंगी, क्योंकि वे चाँद और सूरज जैसी अडिगता के प्रथम पुरुष हैं। सदा गतिमान रहने वाला अश्वारोही आज मेरी जिन्दगी में विराम क्यों दे गया? क्योंकि मैं उन्हें बता चुकी हूँ कि तुम विवाह मंत्रोच्चार के बिना भी मेरे जीवन साथी हो, अनबोले ही उसने मेरा पानी पीकर अपना मुख जूठा कर लिया था। ओह! क्या? यह किसी मंत्र वाक्य से कम था, क्या? सप्तपदी एवं अग्नि फेरे ही सुहाग के साक्षी हैं। आत्मा से स्वीकार रोयें-रोयें में रचा बसा सहचर का कोई मूल्य नहीं है? या यह शास्त्र सम्मत नहीं है। फिर पत्थर में भगवान की परिकल्पना कैसे कर ली गयी। खैर..... सब कुछ सत्य हो सकता है, पर मेरी अपनी आत्माभिव्यक्ति सच नहीं होगी क्योंकि मुझे अभिसप्तित जीवन जीने की एक अनुकृति बनाकर भेजा गया प्रकृति को अर्पण एक चिरन्तन तोहफा है, शायद? क्योंकि सच मैंने देखा है, जब सुहागिनियां देवताओं पर गुलाब का फूल चढ़ाती हैं तो देवता आगे बढ़कर उन्हें अमर सुहाग का आशीर्वाद देते हैं और मैं जब फूल चढ़ाती हूँ तब उनके आँख, नाक, कान बन्द हो जाते हैं। वैसे ही सुहागिनी जब वही गुलाब का फूल अपने सेज पर बिछाती हैं तो वह उसकी सुगन्ध से आत्मविभोर हो जाती है और मैं जब गुलाब का फूल अपने सेज पर बिछाती हूँ तो कांटों की चुभन होती है। सच को स्वीकार करना होगा क्योंकि जिन शब्दों की मार मुझे अन्दर तक हिला कर रख दी या राजीवनयन ने जाने अनजाने सत्य के समीप ला खड़ा कर दिया, इतना ही नहीं स्पष्ट और कठोर वाणी से राजीवनयन ने मेरे प्रेम अंक में बैठने से मना कर दिया था, लेकिन

उस क्षण उनका मुख मण्डल देखने लायक था, बिल्कुल सीधा तना हुआ "मानों पर्वत की ऊँचाइयों को छूने के लिए उद्यत हो" परन्तु अपने व्यक्तित्व की धीरता और कठोरता से आबद्ध मेरे नीरव अपमान को बचाते हुए मुझे मौन रहने का संकेत कर चले गये। उस वक्त मानों मुझे काठ मार गया हो। मैं मन ही मन छटपटाने लगी अरे? यह क्या हो गया! मेरे भाग्यविधाता यह कोई इन्द्रजाल है या अभिशाप... अचानक राजीवनयन के प्रवास ने मुझे और थका दिया, औपचारिकता का निर्वाह हम दोनों की मजबूरी बन गयी थी। प्रवास के दौरान सम-सामयिक विषयों पर चर्चा होती रही वे पल-पल की खबर से अवगत कराते रहे। दो दिवसीय प्रवास से जब वे लौटे तो उनकी बेचैनी चेहरे रूपी दर्पण से साफ झलक रही थी। उलाहने का पश्चाताप था या फिर मेरी निष्कलुष, कोमल, निरीह व्यग्रता का प्रस्फुटन, वार्तालाप का सिलसिला सजीवता लिए नहीं था। मन दुरूह कंटक पूर्ण झंझावातों में उलझ गया था। तब भी वे विपरीत दिशा-दशा की मंसा से अवगत होना चाहते थे कि मैं उनकी बातों से सहमत हूँ या असहमत। एक दिन मुझे उत्तर देने के लिए विवश कर दिया और कहने लगे मैंने जो कुछ कहा सच कहा है, परन्तु तुम्हारा वरण कर चुका हूँ तुम मेरी परीक्षा न लो, मेरी भौतिक शरीर या कार्यशैली में चाहे जो तब्दीली हो परन्तु मेरा निच्छल हृदय तुम्हारे सुख की कामना करता है। सिर्फ सुख की? मैंने कहा राजीवनयन ईश्वर की स्याही चूक गयी थी मेरा भाग्य लिखते समय या अमावस की कालिमा मेरे भाग्य को आच्छादित कर ली थी। तुम सुख की कामना क्यों करते हो? वह मेरे लिए किस काम का? रूग्ण शरीर पर क्या अलँकार शोभा देते हैं? मन मालिन्यता और हृदय की कलुष भावनाओं के ढेर पर कुम-कुम, केसर, चन्दन का तिलक शोभायमान है क्या? ईश्वर ने जब मुझे जन्म दिया उसी क्षण सौभाग्य रूपी स्त्रीयोचित अधिकारों से वंचित कर दिया होगा। सुख का नाम न लो यह एक पीड़ा है जो कब की मेरे जीवन से पीछे छूट चुकी है। हाँ! कसक बाकी है वह भी धीरे-धीरे दूर हो जायेगी, और जिस बात से तुम चिन्तित रहते हो वह स्वतः अपना सम्बल, स्व पैरों पर खड़े रहने की दृढ़ता तलाश लेगी, समय की मार पड़ने पर स्वयं ही स्वाभिमान सामने खड़ा हो जाता है। वह कोई अद्भुत क्षण था जिस समय मेरे हृदय के कृष्णपक्ष में एक देदीप्यमान आलोक की प्रथम किरण संयोग भाव से

आलोकित हो गयी थी, और मैंने मौन प्रणय को स्वीकार कर लिया था, क्या आज उसे भुलाने का प्रयत्न करना पड़ेगा। आह! प्रणय की थाती जब मैंने तुम्हें सौंपी थी तो उस तीक्ष्ण आलोक के सामने सम्पूर्ण गतिविधियाँ अस्पष्ट हो गयी थी, केवल बचा था तो प्रेम का उत्सर्ग जो सम्पूर्णता का प्रतीक है। चतुर्दिक सिर्फ तुम ही तुम थे। इसे तुम कोई नाम दे सकते हो पागलपन, एक भूल या दुःख की अमर कहानी परन्तु प्रेम की ऋतु जब अपनी अंगड़ाइयाँ लेती है तो उसमें धोखा खा जाना या चूकना अथवा प्रेम की सम्पूर्ण परिणति तक पहुँचना या सोच समझकर चलना दोनों एक श्रेणी के विधि और विचार हैं। मैंने जो पढ़ा और सुना है उसमें दोनों ही तरह के लोग संसार के बौद्धिक विचारकों की दृष्टि में निरा मूर्ख हैं। राजीवनयन आँखें मूँदे मेरी बातों को सुन रहे थे फिर एक पल ठहर कर बोले लता तुम्हारे ह्रदय को व्यथित करना मेरा मकसद नहीं था, न मैंने दुर्भावनावश ऐसा कुछ किया है, बस मैं तुम्हें यह बताना चाहता हूँ कि प्रश्न स्वयं किसी के सामने नहीं आते हैं बल्कि प्रश्न खड़ा करने का सारा श्रेय व्यक्ति का ही होता है। जब वह अपने को त्रिशंकु की तरह न धरा पर न आसमान पर बल्कि बीच में उलझता हुआ पाता है तब सुरक्षा की दृष्टि से एक जाल बुन लेता है जिसमें स्वयं उलझता चला जाता है। परन्तु इस अमंगल और मंगल की भावना से उदास नहीं होना चाहिए। सौभाग्य और दुर्भाग्य अकर्मण्य मनुष्य की अपनी दुर्बलता है। मैं पुरुषार्थ को ही नियामक समझता हूँ। अपने कर्म से भाग्य को बदला जा सकता है। मैं तो अपने पुरुषार्थ से अपना सौभाग्य बना पाया हूँ। पर तुमने अपनी लघुता का गान कर अच्छा नहीं किया लता? तुम जो भी हो जैसी भी हो तुम्हारा नारीत्व धर्म मेरे लिए अमूल्य है। मैं मुग्ध होकर तुम्हारे ह्रदय में डूब चुका हूँ, परन्तु सांसारिक व सामाजिक नियमों का उल्लंघन असम्भव है। स्वयं बहुत उद्विग्न हूँ। तुम रूठी हुयी सी क्यों बोल रही हो? मैं अपने को अकेला महसूस करने लगा हूँ। तुम मुझसे क्या चाहती हो? विधि सम्मत उत्तर देना, क्योंकि मैं अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा कदापि नहीं खोना चाहता हूँ। मुझे लघुता नहीं दीर्घता का चरम उत्कर्ष चाहिए। अरे! तुम पाषाण की तरह क्यों खड़ी हो मेरे पार्श्व अग्रभाग में विराजो यह मेरा नेहासिक्त आदेश है। जीवन को प्रमाद, क्षणिक आवेश या दुःखानुभूति से नष्ट नहीं करना चाहिए। मैं चुप न रह सकी, अच्छा? अचानक अधिकार से पोषित मधुमास में

प्रेमरस की वर्षा.....आह! कितना सुखद..... कुछ क्षण पहले क्यों आदर्शोन्मुखी विचारधारा का लोप हो गया था। व्यक्ति का मान एक बार नष्ट हो जाय तो दुबारा नहीं मिलता है राजीवनयन...? मुझे बार-बार पराधीनता के बेड़ियों में मत जकड़ो? मेरे हृदय के अन्तर्मन से निकली मूल स्वीकृति आज बोल रही है। तुम पुरुष हो स्त्री के बलिदान और प्रेम को क्या समझोगे? यह बिजली का स्विच नहीं जिसे जब चाहो ऑन, ऑफ कर दो, यह मन का वेग है, इसे रोकना कोई खेल तमाशा नहीं? राजीव यह मेरे मन का कलुष है, या मानसिक पाप, बता पाना मुश्किल है। करवाचौथ का व्रत, अनुष्ठान, तुम्हारा सानिध्य, कितना भावपूर्ण था? वह क्षण.......! तुम्हारा आलिंगन, सुखद, संतोषपूर्ण अनुभूति..........! विधाता ने जो विधान मेरे लिए बनाये थे शायद वही क्षण था? तपती धरा पर श्रृंगार रस सिंचित शीतल जल, मन्द, सुगन्ध, गोधूली बेला में आकाश की चुनरी पहने प्रकृति की सेज पर वेगयुक्त जीवनधारा को अपने सांसों के आरोह अवरोह के अनवरत स्नेह वर्षा से सराबोर कर दिया जिससे मैं पूरी तरह भींग गयी थी। प्रिय! उसे कैसे भुला दूँ? कैसे भुला दूँ? क्या! तुम भूल पाओगे? राजीवनयन इसे प्रेम कहते हैं। इसकी कोई सीमा रेखा नहीं बनी है आजतक, तुम इसे कैसे समय सीमा में बांध पाओगे। मेरा जीवन इस समय असहाय सा हो गया है। फिर भी मैं मरूँगी नहीं, अपमान का घूँट पीकर भी तुम्हारे दिये नामों से विभिन्न रूपों में जीवित रहूँगी। स्वीटहार्ट, सोनाक्षी, सुन्दरी के सम्बोधन सुख का निर्वसन कैसे कर सकती हूँ? तुम भी उतने ही विकल हो जितना मैं। यह जानती हूँ? फिर भी मन अधीर हो जाता है। लगता है, इस शरीर में दो हृदय है। अन्तरमन कभी हाँ कहता है तो ऊपरी मन ना कहने को आतुर हो जाता है। यह एक विचित्र बात है, तुमने आज मुझे संधि-पत्र भेजकर अपना प्रबल पक्ष उजागर किया है। यह तुम्हारे व्यक्तित्व की विशेषता है। मेघ को समेटे आकाश की तरह जिसका भविष्य हो उसकी बुद्धि को तो बिजली की तरह चमकना ही चाहिए। इस वैविध्य युक्त सुखद कल्पना में मैं तुम्हारे जीवन ज्योति के सहारे अनेक झंझावातों से जूझते हुए रक्तनीलाभ सा जीवन जीने की कामना रखती हूँ।

□□□

गली के मोड़ पर

आज एकादशी का दिन है आज ही 1944 में नार्थ ईस्ट में सुभाष चन्द्र बोस ने आजादी का झंडा फहराया था और वैशाखी का पावन पर्व भी है। इस तिथि को ध्यान में रखकर वाराणसी में आजादी बचाओ आन्दोलन के सहयोगियों के नेतृत्व में काशी प्रबुद्ध वर्ग की एक बैठक हुयी जिसमें शहर की नामचीन हस्तियां सरीक हुयीं सबने आजादी की लड़ाई का ऐतिहासिक आख्यान प्रस्तुत किया। सबने सम-सामयिक ज्वलन्त समस्याओं का एक-एक करके समाधान एवं निराकरण कर आमूल-चूल परिवर्तन लाने का आह्वान किया। उस बैठक के बाद हम लोग घर की वापसी कर रहे थे रास्ते में दीदी, मैं और मेरी एक मित्र थी। चर्चा बनारस की गलियों की हुयी और शिव प्रसाद की सुप्रसिद्ध पुस्तक "गली आगे मुड़ती है" कि चर्चा चल रही थी। तभी कई गलियों को पार करती हुयी गाड़ी चल ही रही थी कि दीदी का घर करीब आ गया और दीदी ने बोला मुझे इसी गली के मोड़ पर उतार दो। मैंने उन्हें गली के मोड़ पर उतार दिया। कहाँ उतरना है? गली के मोड़ पर! फिर हम लोगों ने खूब ठहाके लगाए उसी वक्त दीदी ने मुझसे कहा एक कहानी लिखो, शीर्षक होगा, "गली के मोड़ पर" अब पूरे रास्ते मैं इसी सन्दर्भ में सोचती रही घर आकर लिपिबद्ध करना था ताकि शुभ दिन, घड़ी, मुहूर्त अनुकूल होने के परिप्रेक्ष्य में दीदी ने आदेशित किया कि आज से ही लिखना शुरू करो। किन्तु मेरे मन में यह विचार बार-बार कौंधने लगा कि मैं तो अक्सर इस गली के मोड़ पर दीदी को कितनी बार उतारी हूँ , और इसी गली से मेरा आवागमन तकरीबन पच्चीस वर्षों से लगातार है। और इसी तरह हर दिन एक नये लोग मिल जाते थे। रोज ढ़ेर सारी बातें होती थी, नये सम्बन्ध बनते थे, परन्तु आज जो भाव विह्वलता थी शायद कभी न हुयी, यूं ही विगत की एक रील मेरे सामने से गुजर गयी। मैं एम.ए. हिन्दी की छात्रा थी। मेरी रूम पार्टनर दीदी की भतीजी थी। हम दोनों क्लास करने के बाद हास्टल न जाकर दीदी के घर उसी गली से होकर आया

जाया करती थी तब मेरी जान पहचान उनसे कम थी मैं संकोचवश दीदी से विशेष बातें नहीं कर पाती थी परन्तु उन दोनों बुआ-भतीजी में ढ़ेर सारी बातें होती थीं, मूलतः बंगाल की पृष्ठभूमि और सामाजिक सरोकारों से जुड़े लोगों पर चर्चा अथवा हिन्दी साहित्यकारों की चर्चा पत्र-पत्रिकाओं की विवेचना-कवि गोष्ठियों पर टिप्पणी, हंस, वागार्थ, धर्मयुग, सारिका, कहानीकार पुनर्नवा, नवगीत पर विशेष बातचीत-मैंने सोचा अच्छा है यह मेरा विषय है। मुझे जाने अनजाने भी एक साहित्यिक खुराक मिल जाती है जो क्लास में साहित्यिक चर्चा में अपना स्थान बनाने में सहायक सिद्ध होती थी, तब मैं रोज ही अपने मित्र से बोलती थी तुम्हें दीदी के यहाँ कब चलना है? वह थोड़ी अक्खड़ स्वभाव की थी, कई कार्यों को एक साथ करना उसकी हाबी थी, और बहुत कुछ कशमकस जेहन में लिए हुए जीने की अभ्यस्त सी थी कभी हाँ-कभी ना में जवाब देती थी। इसी बीच दीदी भी (अंग्रेजी में एम.ए. करते-करते नहीं कर पायी थीं) हिन्दी में एम.ए. करने हेतु फार्म भर दिया और प्रथम वर्ष की परीक्षा पास कर गयी द्वितीय वर्ष में विशेष विषय सगुण भक्ति लेकर द्वितीय वर्ष की परीक्षा दी और प्रथम स्थान प्राप्त की। अब तो मेरी मनःस्थिति और भी उनके प्रति आशक्त हो गयी । तब तक मुझे उनके बारे में बहुत कुछ जानकारी मिल चुकी थी, जैसे पारिवारिक पृष्ठभूमि-कारोबार आदि। दीदी को देखकर ऐसा लगता जैसे मैं इन्हें कई वर्षों से जानती हूँ- दीदी का परिधान, वाणी-विन्यास, भाषा शैली, खान-पान, रहन-सहन, स्वभाव, भावपूर्ण सम्बोधन बिल्कुल आज के युगीन परिवेश से भिन्न था इतना ही नहीं सरस्वती की प्रतिमूर्ति लगती थी। मन में विश्वास था कि किसी न किसी दिन इनका मार्गदर्शन मुझे मिलेगा और मैं एक पुस्तक लिखूंगी परन्तु वह सपना, सपना ही रह गया जो कार्य पच्चीस वर्ष पहले होना चाहिए था शायद वह अब संभव हो सके....... उस बीच मैं दायित्व बोध का भान कर चुकी थी। एक दिन पिता जी मुझसे मिलने आये तो मैं किराये के मकान में दीदी के घर के बगल में ही रहती थी। मैंने उनसे कहा कि बाबूजी दीदी (थोड़ी दूरी पर) के यहाँ चलिए मिला दूँ। पिताजी बिल्कुल गांधी विचारधारा से ओत-प्रोत सफेद धोती कुर्ता एवं गांधी टोपी सर पर धारण किये हुए हाथ में छड़ी और गांधी झोला लिये हुए घर के मुख्य दरवाजे में प्रवेश किये। दीदी ने अपने ड्राइंग रूम में न बिठाकर सीधे डाईनिंग

रूम में गोलमेज के सामने बिठा दिया और दूध रोटी से भरा कटोरा सामने रख दिया तथा विनयावनत भाव से कहा कि बाबूजी आप भोजन ग्रहण करले ताकि आपको समयानुसार दवा दी जा सके। पिताजी अवाक् कुछ बोले नहीं जैसा कहा वैसा किया सबेरे सोकर उठे तो मुझसे कहा बेटा वह दीदी तुम्हारी माँ जैसी साक्षात सरस्वती हैं। तुम हर कार्य में दीदी की सहमति अवश्य लिया करना। मैं मन ही मन सोचने लगी अभी तक तो मुझे ही भान होता था लेकिन आज पिता जी भी स्पष्ट बोल ही गये। निश्चित ही पारदर्शी शीशे की तरह सब कुछ दिख रहा था। उस समय मेरा शोध कार्य चल रहा था विषय - "डॉ० हरिवंशराय बच्चन का गद्य साहित्य : एक समीक्षात्मक अध्ययन" मेरी मित्र मुझसे विषय सम्बन्धी चर्चा करती और पुनः दीदी से टिप्पणी के तौर पर समीक्षात्मक चर्चा शुरू हो जाती थी। जिसके कुछ अंश अध्याय पूरा करने में सहायक सिद्ध हुए। क्रमवार बच्चन जी का लेखन इतना भावपूर्ण था कि मन में नित नवीन विचारधारा जन्म लेती थी विषय बड़ा ही मार्मिक सम्बोधन हृदय को छू-छूकर आर-पार हो जाता था जैसे-क्या भूलूँ क्या याद करूँ, नीड़ का निर्माण-फिर, बसेरे से दूर, प्रवास की डायरी, दस द्वार से सोपान तक, काश सारे उद्धरण मैं प्रस्तुत कर पाती यह तो मात्र यादों में जीने का उपक्रम है। मेरा शोध कार्य पूरा हो चला था दीदी और मेरी मित्र तथा एक मेरे निर्देशक का शोध छात्र था उसने प्रूफ रीडिंग में बड़ा सहयोग किया शोध प्रबन्ध पूरा हो गया और विशेष योग्यता क्रम में आंका जाने लगा मेरा उत्साहवर्धन हुआ। मैं अभी विषय चयन में लगी ही थी कि पिताजी ने शरीर छोड़ दिया। मानों मेरे ऊपर दुःख का पहाड़ टूट पड़ा था। मैं इस दुःख को मर-मर के जीया है। विगत की बातें विगत की विपरीत परिस्थितियां याद आते ही मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। खैर ईश्वर जीने की राह बना देता है। इसी बीच में बहुत जद्दोजहद झेलनी पड़ी कोर्ट कचहरी हाईकोर्ट, सुप्रीमकोर्ट का चक्कर काटने से फुर्सत नहीं मिली कि मैं साहित्यिक गतिविधियों में भागीदारी करूं तथा बना हुआ रस बनारस के आबोहवा में कविता, कहानी, यात्रा वृत्तान्त निबन्ध में बनारस की संस्कृति को लिपिबद्ध कर पाऊं। धीरे-धीर सब ठीक हो गया मेरा श्रम मेरी आशा ने सम्पूर्णता के उस बिन्दु पर पहुँचा दिया जहाँ मैं अपनें को संतुष्ट एवं पूर्णतः प्रसन्न पाती हूँ। जिसका प्रतिफल है, मैं "गली के मोड़ पर" शीर्षक के इर्द-

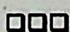
गिर्द अपने को पाती हूँ। बनारस की गलियाँ काशी की संस्कृति की पहचान हैं। एक गली का मोड़ दूसरी गली के मोड़ से मेल खाता है। एक बार मेरे एक परिचित ने बताया कि एक देश भक्त सज्जन भारत भ्रमण पर निकले काशी प्रवास के दौरान वे बनारस देखने के लिए प्रातः पांच बजे निकल पड़े और निकलते ही किसी व्यक्ति से पूछा संकठा गली जाना है? कितनी दूर है! उस सज्जन ने कहा कि बस इस सड़क को पार कर दूसरी सड़क पर सीधे जाकर बांए तरफ मुड़ जाइएगा फिर सामने वाली मोड़ पर दायीं तरफ गली मुड़ती है उसी गली में आगे बढ़कर बायीं ओर गंगा के तरफ जो गली जाती है वही संकठा गली है। वे आगे बढ़े चलते-चलते सुदूर पहुँचने पर उन्होंने किसी सज्जन से पूछा संकठा मंदिर कितनी दूर है, उस व्यक्ति ने कहा बस तकरीबन 1 या 2-3 किलोमिटर बस 10 मिनट का रास्ता है। बेचारे देशभक्त बताए हुए रास्ते पर चलने लगे एक घंटे बाद किसी और से पूछा उसने कहा बस बाबूजी अब आप आ ही गये हैं। बस 20 मिनट और लगेंगे सामने ही दिख रहा है अरे वह मंदिर का पताका..... बेचारे सज्जन देशभक्त बनारस की बोल चाल की भाषा में यह समझ गये कि इनका 10 मिनट एक घंटे का होता है, चलो आगे बढ़ते रहें उनका ध्येय तो बनारस और बनारस की गलियों को देखना था। शास्त्रों में वर्णित अति प्राचीन नगरी काशी के गलियों, मूर्तियों, गलियों में बने विशाल भवनों, ऐतिहासिक कला कृतियों, घाटों, मठों, मंदिरों, जगतगुरुओं, शंकराचार्यों की तपोस्थलियों, विश्वविख्यात देवाधिदेव भगवान शंकर की पूजा आराधना उनका लक्ष्य था। संयोगवशात् मेरी मुलाकात गौरी-केदारेश्वर मंदिर केदारखण्ड में हो गयी। वे देशभक्त अपूर्व मेधा के धनी सर पर शहीदी कफन बांधे भारतीय परम्पराओं को अक्षुण्य बनाने का संकल्प लेकर काशी के गंगा जमुनी संस्कृति से रूबरू होना चाहते थे। उनके साथ मेरे सहपाठी भी साथ-साथ चल रहे थे, वे मेरे से तत्काल बोले आज देव दीपावली है, इस उत्सव में आपका बौद्धिक होगा। अरे? आपका मिलना अच्छा रहा! चलिए? मैं परिचय तो करा दूँ...यह आमंत्रण मैं सहर्ष स्वीकार कर ली। कैसा अद्भुत क्षण था...जब मैं उनके सानिध्य में थी, सम्पूर्ण काशी रोशनी में नहायी हुयी थी, हम सभी लोग नौकाविहार कर रहे थे, बुद्धिजीवियों का जमावड़ा था, पौराणिक कथाओं के एक-एक प्रसंग लोग अपने अनुकूल सुना रहे थे, और

विशिष्ट अतिथि देशभक्त विचारमग्न बड़ी तन्मयता से सुन रहे थे, मुझे ऐसा लगा वे लगभग सभी कथाओं से अवगत थे। सबसे करीब मैं बैठी थी, मेरे मन में एक कौतूहल हिलोरें ले रहा था कि इन परम्पराओं और संस्कृतियों को सुरक्षित करके भारत को आप क्या बताना चाहते हैं, जहां प्रगति के लिए हर व्यक्ति सत्य-असत्य, मार्ग-कुमार्ग, मान-सम्मान का गला घोंटने को तैयार है, उसे एक नई दुनियाँ की तलाश है, परिवार स्व में सिमट गया है, ऐसे वक्त में बदलाव कैसे सम्भव होगा?...उसी बीच अपने आप उनका हाथ मेरे सर पर आ गया और वे बोले तुम क्या सोच रही हो? मैंने कहा मेरे मन में विचार सांसो की तरह आ-जा रहे हैं। विचारों की भी तलब होती है क्या? फ्रायड ने कहा था कि मनुष्य के इतिहास का आदि मनुष्य सुपरमैन था। जिसका जिक्र सदियों बाद नित्शे ने किया कि... वह सरदार दल का मुखिया था, अपने परिवार का संरक्षक था, अपने पुत्रों का पिता था, परन्तु अपने मर्जी से पुत्रों को भी रोटी खाने और सेक्स की अनुमति देता था। शायद? और आज के दौर में हर व्यक्ति सुपरमैन बना हुआ है या बनने को संकल्पित है। उस दौर में आप परिर्वतन करना चाहते हैं, अच्छी-खासी जिन्दगी को झंझावातों में उलझाकर शहीद होना चाहते हैं। विश्वकोष को निकालकर देख लीजिए शहीदों की श्रेणी में कितने नाम ऐसे हैं जो वतन के नाम पर शहीद हुए हैं। अगर शहीद होते हैं तो सिर्फ और सिर्फ मजहब के नाम पर... देश भक्त मेरी ओर देखकर खूब तेज से हंसे और बोले देखो तुम्हारी बात तकरीबन सही है परन्तु मेरा इतिहास भरा पड़ा है शहीदों के नाम से, अगर मैं ऋषि होता तो तुम मेरे सामने यह विचार प्रस्तुत कर पाती- नहीं। यही उत्तर है सुनो? फ्रायड के शिक्षा और समाज की परिभाषा बहुत कठिन थी। मैं तुम्हें सरल शब्दों में समझा दूँ! और सबकी ओर देखते हुए बोले क्यों जी बोलूँ? वैसे कुछ गलत नहीं बोलूँगा क्या हम अपने प्राचीन या पुरातन परम्परा में या सम्प्रदाय में जी रहे हैं, नहीं? क्योंकि जो मेरा पहला व्यक्ति था वह सच्चा क्रान्तिकारी था और उस समय उसके सहयोगी भी संस्कारित विचारों से ओत-प्रोत धर्म कर्म वाले थे। उन्होंने तो अंग्रेजी शासन की नींव हिला दी और उन्हें उखाड़ फेंका तथा मुझे आजादी दी। किन्तु आज गुरु नहीं रहा, कोई मुखिया नहीं रहा, बस बची है तो सिर्फ गद्दी और गद्दियाँ। आप जानते हैं कैसे चलती है?...मुझसे कुछ बताया नहीं

जाता! सभी नेपोलियन बोनापार्ट नहीं हो सकता? परन्तु एक बार जी करता है, काश मैं सब कुछ बदल पाता ...अच्छा जी आपका अमूल्य समय मैंने लिया ...पर आपकी मेहरबानी... आप आये हुए अतिथि का सम्मान भी किये और मुझसे पांच मिनट बात भी कर ली अरे हाँ.... चलते-चलते एक बात पूछ ही ले रहा हूँ। अगर आपको अपने सम्प्रदाय, धर्म, कर्म में विश्वास नहीं है तो मजबूरी किस बात की ...यह जमीन, शरीर, जिन्दगी अपनी नहीं अगर किसी भी राजनीतिक गुरु को आज पता चल जाय की वह मेरा विरोधी है तो कल यानी अगले दिन उसे जेल हो जाएगी ...क्योंकि यही मजहब के अधिकार में होता है। मैंने जो वास्तिवकता की आवश्यकता देखी है उसे बता दूँ, जो अधिकारी है वह लोगों के सामने राजनेता से हाथ जोड़ता है परन्तु आड़ में गुरु जी अफसर को जाकर रुपये की थैली देकर हाथ जोड़ते हैं, यह सच है। यह कैसा पाप है? जो मेरा पहला गुरु था अंग्रेजी हुकूमतों से लड़ता था और यह जो गद्दी पर हैं वह हुकूमतों की तलवे चाटतें हैं।

यह व्यवस्था अर्न्तमन को व्याकुल कर दे रही हैं छाती से आग की लपटें निकल रही हैं। रोटी का ग्रास गले में अटक जाता है। अतिथि जाते-जाते झोले में से एक किताब दी शहीद भगत सिंह की पुनः एक डायरी देकर कहा मुझे आप लोग एक निशानी दे दीजिए "हस्ताक्षर" की यहाँ अपने हाथ से आपना नाम लिख दीजिए। मैंने चुपचाप कलम उठाया और उनके साथ स्वर से स्वर मिला कर कदम से कदम मिला कर चलने के लिए चुपके से हस्ताक्षर कर दिया। न मैंने उनका परिचय जाना, न ग्राम पूछा न नाम पूछा सिर्फ सोच की नई चिनगारी पाई आज की लड़ाई लड़ने के लिए मन में टीस उत्पन्न हुई कि इस डायरी पर मेरे हस्ताक्षर का क्या अर्थ है? विद्रोह तो मेरे नसों में दौड़ रहा है, वहां केवल रोजी-रोटी के हस्ताक्षर नहीं होने चाहिए। और बच्चन जी की कविता की यह पंक्तियाँ मुझे याद आ गई...

पूर्व चलने से बटोही बाट की पहचान करले।।
रास्ते का एक काँटा, पांव का दिल चीर देगा।
आंख में स्वर्ग, पर पाँव धरती पर टीके हों।।
कंटकों के इस अनोखी सीख का सम्मान करले।
पूर्व चलने से बटोही बाट की पहचान करले।।



प्रेम

बरसात के मौसम में गोधूली बेला घनी अंधेरी रात की तरह चौतरफा सन्नाटे के आगोश में आबद्ध थी। एक अनजान सी याद प्रेमा के हृदय में हिलोरें ले रही थी। प्रेमा विगत के यादों में खोयी मनचित्त शुद्धि के लिए अकेले मंदिर जाने के लिए उद्यत माँ से अनुमति लेते हुए निकल पड़ी, लेकिन माँ ने कहा बेटी इस अंधेरी रात में जबकि बादलों की गड़गड़ाहट और बिजली की भयंकर कड़क से आभास हो रहा है कि बारिस जमकर होगी इसमें तुम्हारा अकेले जाना ठीक नहीं है। प्रेमा बोली माँ मैं अपने सहेली उर्मिला के घर जा रही हूँ उसी के साथ मंदिर जाऊँगी माँ आश्वस्त हो गयी प्रेमा लम्बे-लम्बे डग भरते हाँफती जल्दी से जल्दी गन्तव्य तक पहुँच जाना चाहती थी। पुनः दोनों सहेलियाँ मिलकर मंदिर जायेंगी ऐसा सोच रही थी, परन्तु रास्ते में ही बारिस शुरु हो गयी जिससे मध्य रास्ते में ही प्रेमा को रुकना पड़ा। उसनें देखा? सामने ही सड़क पर जो घर है उसका दरवाजा खुला है, वह वहीं जाकर चुपचाप खड़ी हो गयी। बारिश रुकने का नाम नहीं ले रही थी, तब तक एक गौरवर्णी सुन्दर सी बाला किवाड़ बन्द करने के लिए आई परन्तु अचानक प्रेमा को देखकर बोली, अरे इतनी रात में आप अकेले यहां क्या कर रही हैं, कहते हुए पास आ गयी और आश्चर्य चकित मुद्रा में बोली अरे! प्रेमा दीदी आप? आइए-आइए अन्दर बैठिए मेरे भाई साहब आपको आपके घर छोड़ आयेंगे आप अकेले कैसे जायेंगी यह कहते प्रेमा को साथ लिए अन्दर चली गयी अतिशय प्रसन्नता के कारण चिल्ला उठी भइया प्रेमा दीदी आयी हैं? विस्मयाधिक स्वर में अजीत ने पूछा कहाँ...... बहन ने आवाज दी घर में .... प्रेमा अवाक! आँखों में लज्जा की लालिमा उतर आयी थी.......सबको नमस्कार किया फिर परिचय? वैसे तो एक बार का पुराना परिचय था ही परन्तु वह यह नहीं समझ पा रही थी कि ये लोग यहां कैसे और कब आये? यह एक

अनुत्तरित प्रश्न दिमाग में चल रहा था। इसलिए प्रेमा ने न कोई प्रश्न किया न कोइ उत्तर दिया, लेकिन संकोच वश न वह कुछ छुपा पायी न पूर्ण रूप से बता पायी। कुछ देर में बारिश बन्द हो गयी वह जाने की बात करती ही कि़ अजीत सामने आकर बोले चलिए मैं आपको छोड़ आऊँ। प्रेमा अचानक अजीत को देखकर बोली आप यहाँ? उसने कहा यह मेरा ही घर है। यह मेरी छोटी बहन है। अब यह. घर हमने खरीद लिया है। गांव से लोग अब शहर की ओर भागने लगे हैं, इसी कारण मैंने आपके शहर का चुनाव किया, क्यों अच्छा लगा न? आपके बारे में और तो कुछ पता नहीं था पता था तो केवल शहर का नाम अभी उन्नीस दिन हुए इस शहर में आये खैर आपसे मुलाकात हो गयी कई वर्षों बाद, बस मेरा मकसद पूरा हो गया......? शायद यही मेरी तमन्ना थी। एक ही बार की मुलाकात थी परन्तु आप भूली नहीं थी। प्रेमा ने कहा कैसे! भूलती तीन चार घंटे खोजने के बाद मिले थे आप नागपुर में वह मेरा एक नया अनुभव था। एक जैसे कार्य में जुटे रहने के बाद भी घनिष्टता कम लोगों से हो पाती है। आप से मिलने के लिए मेरी मित्र ने फोन करके बताया और आपका नम्बर दिया था तब कहीं जाकर मैं आपको खोज पायी थी। उसके बाद तो कहीं आप! कहीं हम! न जाने कैसे गुम हो गए? यह कहते हुए दोनों जोर से हंस पड़े, यह एक संयोग है, जिसे निजता और शुचिता का शुभ संकेत मानना चाहिए। संयोगवशात् आज अचानक मंदिर जाने के लिए निकली थी कि पुनः आप से मुलाकात हो गयी। अच्छा? अब तो आप मेरे पड़ोसी हो गए। अरे हाँ.... अजीत जी बहुत देर हो रही है अब मैं चलती हूँ। साथ अजीत भी हो लिए रास्ते में बातचीत का सिलसिला चलता रहा अजीत ने कहा प्रेमा कल चलो मैं तुम्हें अपने गाँव ले चलूँ बहुत पहुँचे हुए एक सन्यासी आये हैं बिल्कुल विवेकानन्द जैसे गांव के पास घने जंगल में एक कुटी बनाकर रह रहे हैं। कल जन्माष्टमी है। और वहां जन्माष्टमी बड़े धूमधाम से मनायी जाती है। तुम्हारे मंदिर जाने की मनोकामना भी पूरी हो जायेगी और एक दिव्य ज्ञानी सन्यासी का दर्शन कर तुम कृतार्थ हो जाओगी। फिर क्या था प्रेमा ने हामी भर दी एक शर्त के साथ कि अजीत जी मेरी मित्र भी मेरे साथ चलेगी तभी मैं जा सकती हूँ वरना घर से अनुमति नहीं मिलती है और वह मेरे साथ हो तो कोई पाबन्दी नहीं। अच्छा? तो आपकी मित्र आपकी अंगरक्षक हैं या सुरक्षा कवच कहते हुए

अजीत ने हंस दिया। प्रेमा थोड़ी सकुचाई......। पुनः दूसरे दिन प्रेमा ने उर्मिला से अजीत के मिलने और साथ चलने की बात बताई। यह सुनकर उर्मिला उछल पड़ी और बोली वही अजीत जो तुमसे नागपुर में मिले थे, और तुम उस मूरत को आज तक भूल नहीं पायी हो। प्रेम के अद्‌भुत भाव रूपी मोतियों की माला पहने हुए भी तुम निर्लिप्त रहकर अपने यादों में उन्हें संजोये थी। यही वजह है प्रेमा आज तुम्हारा प्रेम अधिक सुन्दर एवं प्रखर रूप से तुम्हारे सामने खड़ा है। उर्मिला बड़ी विकलता से बोली आह! प्रेम कभी-कभी कितना आसक्त कितना निरीह कितना अबोल हो जाता है। प्रेमा ने एक आह भर कर कहा तुम क्यों इतनी परेशान हो? प्रेम सिर्फ मैंने अपने तईं किया है, उन्हें क्या पता? वह तो कल ऐसे मिले जैसे कोई सुपरिचित व्यक्ति मिलने पर हाल-चाल पूछता हुआ व्यवहारिकता निभाता है और तो और यहां तक कहा कि आप तो एक ही बार मिली थी, परन्तु भूली नहीं। उर्मिला ने कहा अच्छा? तो साफ जाहिर है कि वह भी तुम्हें बहुत चाहते हैं। प्रेमा ने बड़े उदारता से उर्मिला को कहा तुम्हारे इस ज्ञानोपदेश के लिए तुम्हें धन्यवाद देती हूँ। अच्छा? तैयार हो जाओ, आज अभी अजीत जी के साथ ही उनके गाँव चलना है। दोनों तैयार होकर चलने को उद्यत ही थी कि अजीत अपनी कार लिए दरवाजे पर खड़े थे। दरवाजा खोलकर स्वागत के अन्दाज में बोले आइए....आइए.... प्रेमा एक क्षण असमंजस की स्थिति में हो गयी थी, लेकिन उर्मिला ने इशारा किया प्रेमा तुम आगे बैठ जाओ। अजीत भी यही चाहते थे काफी लम्बा रास्ता था इसलिए बातचीत लाजिमी थी। अजीत और उर्मिला का प्रथम परिचय था परन्तु अजीत ने बड़े अपनत्व भाव से कहा उर्मिला जी आपको बहुत-बहुत धन्यवाद नहीं तो प्रेमा जी आज भी मुझे ड्राइवर की भूमिका में खड़ी कर देती। नहीं-नहीं आप ऐसा कैसे सोच लिए मैं आपका बहुत सम्मान करती हूँ। वैसे ही जैसे नागपुर में किया था अजीत ने चुटकी ली...एक छोटा सा किस्सा सुनाने लगे कि प्रेमा जी को छोड़ने जाना था, मैं गाड़ी ड्राइव कर रहा था और यह पीछे बैठी थी। प्रेमा ने सकुचाकर कहा मैं सोच रही थी मुझे कोइ ड्राइवर छोड़ने जायेगा और हम दोनों पीछे की सीट पर बैठेंगे, अच्छा जी उसके बदले मैं आज क्षमा मांग लेती हूँ। आह्लादित होकर अजीत बोले हम दोनों के बीच क्षमा और याचना कहाँ से आ गयी केवल उर्मिला जी को ही रहने दीजिए। उर्मिला क्यों चूके

उसने तुरन्त प्रश्न कर दिया अजीत जी आप अपने साथ अपनी पत्नी को क्यों नहीं लाए। अजीत ने मुस्करा कर कहा मैं अभी कुँआरा हूँ और शायद कुँआरा ही रहूँ? उर्मिला की उत्सुकता और बढ़ गयी जिसके कारण उसने एक व्यंग्यबाण चला ही दिया कि.... आप भी स्त्रियों से पलायन करने वाले जीवों में से ही हैं। नहीं!!! उर्मिला जी नहीं!! मैं उन अभागों में से एक हूँ जो अपनी रमणी से अपने हृदय की बात कह नहीं सका और मन में एक आस लिए उसकी प्रतीक्षा में आज तक भटक रहा हूँ। उर्मिला ने तुरन्त कहा कोई दूसरी रूपवती नहीं मिली क्या? नहीं उर्मिला जी रूप की तो संसार में कमी नहीं है, परन्तु रूप, गुण, शील, स्वभाव का मेल बहुत कम देखने को मिलता है। यह सब कुछ उसमें मुझे एक साथ दिखा और क्षणभर में मेरा हृदय पुलकित होकर उसे अपना मान बैठा। गहरी मित्रता के लिए समय की लम्बाई जरूरी नहीं होती उसके लिए तो मन की गहराई की जरूरत है। मैं उसे जीवन पर्यन्त नहीं भूल पाऊँगा जिस पल को उसके साथ जीया हूँ उसी पल के साथ ता-उम्र जी लूँगा। उर्मिला ने व्यंगात्मक लहजे में हंस कर कहा आपने बहुत जल्द हिम्मत हार दी शाहबहादुर । अजीत ने प्रेमा की ओर देखा दोनों की आंखें चार हो गयीं पुनः तिरछी नजर से देखते हुए बोले मैं आज तक ऐसा वीर नहीं देखा जो रमणियों से परास्त न हुआ हो, ये हृदय पर गहरी चोट करती हैं, जिसमें असह्य पीड़ा होती है! प्रेमा कुछ न बोलकर गम्भीर मुद्रा में अजीत को एकटक निहारती रही? वह कौन सी रमणी है, जिसके लिए अजीत इतने अधीर हैं। विचार मंथन की प्रक्रिया अन्तरमन में चलायमान थी तब तक गाड़ी गाँव के करीब आ गयी। दूर से स्वामी जी पर्णकुटी की सजावट दिख रही थी। भव्यता अनुपमेय थी। अजीत हम दोनों को गुरुजी के पास ले गये बड़े ही आत्मीयता से परिचय कराया। गुरुजी का गौरवर्णी शरीर अग्निवस्त्र में देदिप्यमान हो रहा था, घुंघराले बाल छोटी-छोटी दाढ़ी बिल्कुल दूसरे विवेकानन्द जैसे दिख रहे थे। बड़े आदर भाव से हम लोगों को बिठाया और रात्रि विश्राम का आग्रह किया तथा हम तीनों की व्यवस्था किसी शिष्य के आवास पर सुनिश्चित की गयी। अजीत को पुरुष वर्ग के शयन कक्ष में सोना पड़ा और हम दोनों को महिलाओं के शयनकक्ष में। रातभर दोनों केवल स्वामी जी की चर्चा करते रहे। परन्तु प्रेमा का मन बार-बार अजीत के लिए बेचैन हो उठता था। उर्मिला तो बिल्कुल

स्वामी जी की आराधना में लीन हो गयी थी। इसी उहापोह में कब नींद आ गयी इसका भान ही नहीं हुआ, सुबह उठकर हम तीनों तैयार होकर कुटिया के तरफ पैदल चल पड़े उर्मिला आगे-आगे मैं पीछे.... अजीत के साथ। मन को बहुत बांधने की कोशिश की परन्तु विचलित मन नें धोखा दिया तत्क्षण अजीत आसमान की चादर ओढ़े निखिलान्तक दृष्टिपात कर अपलक मुझे निहारने लगे.......प्रेमा नख से शिख तक सिहर गयी। पुनः अपने को संभालते हुए पूछा क्यों! अजीत जी मैं आपसे एक प्रश्न पूछूँ। अजीत ने कहा पूछिए। पुनः प्रेमा ने कहा वह कौन रमणी है जिसे आप... अजीत चुप... प्रेमा बल देकर बोली। मेरे प्रश्न का उत्तर देना उचित नहीं है क्या? या मेरा कोई अधिकार नहीं है पूछने का, क्यों? अजीत चुप। प्रेमा अपने को उपेक्षा का शिकार मानती हुयी अजीत को समझाने के लहजे में बोली। जिस प्रेम के बारे में आप निश्चयपूर्वक नहीं बता पा रहे हैं या अनिश्चय की स्थिति में हैं! वह प्रेम, प्रेम नहीं है। सौभाग्य है आपका कि आप को परीक्षाओं की घड़ी से गुजरना नहीं पड़ा वरना अन्तहीन प्रेम के पक्षाघात को सहना पड़ता। अजीत गहरे विचार में डूब कर बोले? प्रेमा प्रेम का आदि और अन्त अक्षुण्य सहृदयता है। जो मैं संयोग और वियोग की घड़ी में नहीं सोच पाया तुमने वह भाव आज जगा दिया। वैसे प्रेमा प्रेम के उत्कर्ष की परिभाषा रमणियां ही दे सकती हैं। पुरुष कभी प्रेम के आदर्श में आत्म समर्पण नहीं करता वह प्रेम को स्वार्थ और वासना से सम्पृक्त मानता है और यही प्रेम के साथ घोर अन्याय है। परन्तु मुझे विश्वास है कि आज जो शिक्षा मुझे मिली है, उससे मेरे जीवन में अब कोई रहस्य छुपा नहीं रह जायेगा। उसी समय उर्मिला तीक्ष्ण स्वर में बोली आओ..... पूजा शुरू होने जा रही है, और हम दोनों पूजा में जा बैठे वह भी साथ थी। वह ध्यानालीन कृष्ण जन्मोत्सव की लीला देखने लगी परन्तु मेरा मन पूजा में नहीं लग रहा था। एक अनजान अबूझ प्रश्न मेरे दिमाग में चल रहा था। वह कौन है? जिससे अजीत प्रेम करते हैं मेरा अशान्त हृदय संभल नहीं पा रहा था और उनके अविचलित अविश्वास ने मुझे और अशान्त कर दिया था। हृदय द्रवित होते हुए भी मन उनके प्रेम, प्रमोद, विश्वास से आबद्ध हो चुका था। सम्पूर्ण सांस्कृतिक, धार्मिक कोलाहल में अजीत ने हमेशा मुझे अपने अति करीब रखा और पूजा के अन्तिम घड़ी में मेरे पीछे खड़े होकर दोनों कन्धों पर अपना दोनों हाथ

रखकर मुझे रोमांचित कर दिया और मैं निर्विकार रूप से सबके सामने खड़ी थी। पुनः मेरी ओर अपने कोरों से देखते हुए दूर जाकर खड़े हो गये यह उनकी सामाजिक बाध्यता थी। सच्चाई तो कुछ और थी मन से परछाईं की तरह वह मेरे साथ-साथ चलते रहे, वह उत्साह उनका देखने लायक था अपनी बात होठों पर न आ जाय इसका वह स्वांग भरते रहे और बोले प्रेमा भौतिक, सामाजिक और धार्मिक प्रथा ने मेरी बुद्धि को संकुचित कर दिया है, इतना ही नहीं इसे धार्मिक रूप देकर पाप-पुण्य जैसे बन्धनों में जकड़ रखा है। मेरा चंचल मन संयत न रह सका, और विषयान्तर प्रश्न पूछने को उद्यत हो उठी मैं पुनः बोली अजीत जी वह कौन सी नवयौवना है, जिसे आप मन में बसा रखे हैं। एक बार और पूछने की घृष्टता करती हूँ। अजीत हंसते-हसंते लोटपोट हो गये बोले वह आप ही हैं। आप इसे सच माने या न माने परन्तु संसार में आपका एक व्यक्ति ऐसा है जो आपके रंच मात्र के संकेत पर अपने प्राण न्यौछावर कर सकता है। आप जैसी रमणी रत्नप्रभा स्त्री पाकर कोई भी पुरुष अपने भाग्य पर इतरायेगा। लज्जावश मेरा मुख लाल हो गया। खुशी में आँखों से आँसू छलक आये अन्तःस्थल भर आया, अकेले में शायद मैं न रोती परन्तु अजीत सामने थे मैं अपने को रोक न सकी, पुनः आँसू पीती हुयी बोली मैं आपसे क्षमा मांगती हूँ। मेरे मन में जो विभ्रम पल रहा था। जिससे मैं अनिर्णय की स्थिति में पहुँच चुकी थी........बात को बीच में काटते हुए अजीत ने बोला प्रेमा छोड़ो यह भ्रम और विभ्रम की स्थिति। सुनों? जीवन की पहली किरन, तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही हैं। तुम्हारे निर्णय पर मेरे जीवन की दिशा और दशा तय होनी है। उसके बाद मैं सामाजिक अवरोधों को दूर करने का उपाय ढूँढूगा। प्रेमा की आँखों में हर्ष के आँसू रूकने का नाम नहीं ले रहे थे आँखों की लालिमा में झाँककर अजीत भाव विह्वल होकर बोले प्रेमा! तुम्हारे ये आँसू तुम्हारी विवशता दर्शा रहे हैं। तुम मुझसे दूर रह सकती हो परन्तु मेरे हृदय से नहीं। प्रेमा ने तत्काल उत्तर दिया अजीत यह बातें सुनने में अच्छी लगती है जीने में नहीं सपने सुहाने होते हैं पर उनमें असलियत नहीं होती है। सपने-सपने होते हैं, हकीकत में तब्दील नहीं हो सकते। अजीत आप स्वप्न को सत्य में क्यों नहीं बदल देते। प्रेमा क्या? तुम्हारे माता-पिता की स्वीकृति मिलेगी। तुम अच्छी तरह जानती हो कि आदर्श वैवाहिक बन्धन में बंधने के लिए माता-पिता की स्वीकृति आवश्यक है। जब

तक वह तैयार नहीं होंगे तब तक मैं तुम्हारा सहचर कैसे बन सकता हूँ यह मेरी विवशता है। प्रेमा तड़प कर बोली तो क्या? तुम मुझे अस्वीकार कर रहे हो। नहीं! प्रेमा नहीं! तुम ऐसा न समझो मैं तुम्हारे बिना शान्तिपूर्वक जीवन न जी सकूंगा परन्तु हिन्दू नीति शास्त्र के अनुसार वैवाहिक बन्धन की अधिमानता है। इसके अलावा प्रेम और व्यक्ति का कोई मूल्य नहीं है। इसी कारण मैं वैवाहिक प्रथा को सभी बुराइयों का मूल समझने लगा हूँ, क्योंकि मैं जिसे स्वीकार करता हूँ न उसे अपनी इच्छा से अपना बना सकता हूँ और न ही उसके गर्वणी, मानिनी, स्त्रीत्व का निर्वाह कर पा रहा हूँ। प्रेमा यह वाक्य सुन कर गम्भीर हो गयी। अजीत ने हंसकर कहा- अब कोई चिन्ता की बात नहीं। आग बुझाई जा सकती है? पर राख को बुझाकर कोई क्या करेगा। घबराओ मत प्रेमा! प्रेम के पथ में अनेकानेक कठिनाइयां सामने खड़ी है, परन्तु हमारे इस प्रेम के आवेग को बुद्धि के सहयोग की आवश्यकता है। तुम कभी मुझे दोषी मत मानना मैं तुम्हारे सतीत्व की रक्षा करूँगा। प्रेमा प्रेम एक पूजा है। संसार में मनुष्य अपने को धिक्कारता हुआ न जिए बल्कि जीने के लिए अपनी हर तृप्ति सुख शान्ति मुट्ठी में बन्द कर ले और भूल जाए उन स्मृतियों को जो जीवन में विराग पैदा कर भावनात्मक कुण्ठा से उन्हें ग्रस्त कर दे। प्रेमा अपलक अजीत को निहार रही थी, उसकी आँखों में आँसू डबडबा ही गए, अजीत ने दोनों हाथों से छलकते आँसुओं को पोंछते हुए बोले, प्रेमा अब बस बहुत हो चुका यह तुम्हारे लिए आँसू होंगे मेरे लिए मोतियों से कम नहीं इस पर सिर्फ मेरा अधिकार है कुछ कहने सुनने की कोई आवश्यकता नहीं है। तुम मेरी हो सदा मेरी रहोगी धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करो। तब तक उर्मिला आ गयी, बोली क्या बात है आप दोनों पूजा में शरीक होकर भी बिल्कुल अलग थलग दिखाइ दे रहे थे। अरे? प्रेम के पुजारी मैं जानती थी आपको जितना प्रेमा प्रेम करती है उससे कई गुना ज्यादा आप प्रेमा के नेह में आबद्ध हैं। एक कर्तव्य परायण पुरुष कर्तव्य पथ पर चलते हुए अपनी व्यथा कथा कह रहा था उस समय उसका मुख मण्डल चन्द्रमा के तरह प्रकाशमान हो गया था और उसके आँखों से प्रेम की किरणें निकल रही थी, वह कोई सामान्य जन नहीं हो सकता, अपनी विशिष्टता के लिए जाना माना एक पौराणिक पुरुष ही होगा। अच्छा ही हुआ मैं भी साथ में थी। आज आपने मेरे मोक्ष का द्वार खोल दिया गुरु की कृपा के बिना ज्ञान की

प्राप्ति संभव नहीं है। मैंने स्वामी जी को गुरु मान लिया तो उम्र भर उनकी दासी जनों की तरह सेवा करूँगी। कुटिया की देखरेख बाग बगीचे बागवानी सीचूंगी और उनके अधूरे कार्य को पूरा करूँगी अगर मेरी हजार जाने होती तो भी मैं उनके कुटिया को सजाने संवारने में लगा देती लेकिन ऐसा प्रतीत होता है मानो यह सन्यासी मेरी आत्मा में रच बस गये हैं और उनकी ज्योति प्रखर होती हुयी मेरे निकट आकर निःशब्द मनोहर राग मेरे पार्श्व में विराजमान हो गया जिसके फलस्वरूप उनकी वेद वाणी मेरे प्राण पोषिणी औषधि का कार्य कर रही है। मैं यहाँ से जाना नहीं चाहती हूँ लेकिन हृदय में उपजी इस आंधी तूफान जैसी वृत्ति को सहजने का भरसक प्रयास करूँगी। अधरों पर इसकी एक बूंद भी टपकने नहीं दूंगी।

उर्मिला की व्याकुलता, विह्वलता उसके चेहरे रूपी दर्पण से स्पष्ट दिख रही थी। उसने अपने जीवन का निर्णय अविवाहित रहकर प्रिय सन्यासी के प्रेम में अर्पण कर देने का मन बना लिया था। ऐसा अजीत और प्रेमा दोनों ने महसूस किया। अजीत ने समय की नजाकत समझते हुए कह ही दिया उर्मिला जी बनवासी की तरह जीवन यापन करना पड़ेगा महलों में रहने वाली सुकुमारी कैसे वीतरागी सन्यासी के साथ जीवन यापन करेंगी। यह वाक्य ज्यों ही पूरा हुआ उर्मिला का अन्तर्मन कांप गया............अतिशय पीड़ा........तन मन धू-धू कर जलने लगा...........

❑❑❑

परिष्कार

अच्छा? बहुत बातें हो गयी अब मैं फोन रखता हूँ, जी नहीं, अभी आप फोन नहीं रखेंगे..... बड़े ही अनुनय विनय, राग-अनुराग से रेखा ने आदेश के स्वर को मुखर किया.........उत्कर्ष के होठों पर एक हल्की सी मुस्कान की ध्वनि सुनाई पड़ी, फिर बिना कुछ कहे बोले सुनाओ.....थोड़ी देर शान्त भाव से मेरी आपत्ति सुनते रहे फिर बोले तुम मेरी पत्नी की अकुलाहट सुनोगी तो शायद मुझे कभी नहीं रोक पाओगी- रेखा ने बीच में ही बात काटते हुए कहा मेरा जी ही नहीं भरता इसलिए तुम्हें नहीं जाने दूँगी, न ही फोन रखने दूँगी, उत्कर्ष हँस पड़े। हँसते-हँसते बोले सुनों? वे मेरे लिए कितने सपने बुनी होगी उसका अपना घर होगा, पति होगा आदि.....आदि.... एक बात बताऊँ जब मेरी नई-नई शादी हुयी थी तो मैं एक महीने के लिए विदेश चला गया था, तब उसने मुझे एक पत्र लिखा था, तुम पढ़ोगी तो मुझे कभी दोष नहीं दोगी। रेखा ने कहा छोड़ो मैं कोई पत्र-वत्र नहीं पढ़ने वाली तुम और तुम्हारी पत्नी पुराण का ठेका मैंने थोड़े ही लिया है। उत्कर्ष कुछ क्षण चुप रहे फिर बोले अच्छा अब फोन रखूँ कल पत्र लेता आऊँगा पढ़ोगी तो भी ठीक नहीं पढ़ोगी तो भी................नहीं-नहीं मैं जरूर पढूँगी। कहते हुए मैंने फोन रख दिया। रात भर मुझे यह चिन्ता सताती रही कि पत्र में ऐसा क्या लिखा है? जो उत्कर्ष मुझे पढ़ाना चाहते हैं। मन में उत्सुकता थी जल्दी रात बीते और पुनः मैं कल उत्कर्ष से मिलकर पत्र माँग लूँ। खैर समय की सूई स्वयं ही अपनी परिधि तय कर लेती हैं- वह समय आ ही गया जब हम दोनों आमने-सामने थे। मैंने तपाक पत्र माँग लिया। अच्छा? उत्कर्ष पत्र दो! जरा देखूँ तो सही वह कौन शत्रु है, जो हमसे आपको दूर करना चाहता है। मेरी खुशी को जला कर खाक कर देना चाहता है। उत्कर्ष अद्वितीय मुस्कान बिखेरते हुए बोले शायद पत्र पढ़ने के बाद वह लेखिका तुम्हारी शत्रु नहीं मित्र बन जाय तो तुम मुझे क्या दोगी, रेखा ने

बड़े ही तिरस्कृत भाव से कहा जी.... नहीं चाहे वह कोई भी हो, जो आपको हमसे दूर ले जाना चाहता हो वह मेरा मित्र कभी नहीं हो सकता। उसे तो मैं अपना घोर शत्रु ही कहूँगी। उत्कर्ष ने कहा यह सच है क्या? पर तुम ऐसा क्यों सोचती हो तुम्हें इतना भय क्यों सताता है। मैंने तुम्हें वचन दिया है, तुम्हें उन्नति के चरम पर पहुँचाने का दायित्व मेरा है। मेरे इस काल्पनिक नवीन विधा पर तुम्हारा क्या अधिकार है? कम से कम यह अधिकार तो मेरे पास सुरक्षित रहने दो। इस प्रकरण में तुम्हें किंचित भाव से विचलित नहीं होना चाहिए। रेखा ने उत्कर्ष की कोई बात नहीं सुनी क्योंकि पत्र उसके हाथ में आ गया था जिसे वह एक ही क्रम में पढ़ लेना चाहती थी, ताकि उसके भाव में कोई व्यतिक्रम न आ जाय यह उसकी अभिव्यक्ति थी।

मेरे प्राण.....

तुम विदेश जाते समय यह कह कर गये थे कि जाते ही पत्र लिखूँगा, परन्तु तुम्हारा कोई पत्र नहीं आया। कई दिनों बाद एक पत्र मिला जिसमें लिखा था कि यहाँ काम कुछ ज्यादा बढ़ा लिया है उसे शीघ्र ही समेट कर अगले रविवार को वापस आ जाऊँगा। परन्तु एक रविवार क्या? कईयों दिन, वार और रविवार बीत गये। तुम्हारा रास्ता देखते-देखते मेरी आँखें पथरा गयी परन्तु तुम्हारी सूरत देखने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। मैं प्रतिदिन वियोग दंश झेलती रही पर तुम नहीं आये। एक नजर आकाश की तरफ ही रहती है, जो भी वायुयान हवा में उड़ता दिखाई देता है, लगता है? तुम उसी में बैठे उन झरोखों से मुझे देख रहे हो? किन्तु बाद में निराशा ही हाथ लगती है। अकिंचन मन बार-बार कई आशंकाओं से घिर जाता है। अकेले का दंश सर्प दंश से कम नहीं होता? मेरे प्राण! आगे मैं क्या कहूँ जानती हूँ, तुम अपना समय कहीं व्यर्थ नष्ट नहीं कर सकते। मन और ह्रदय विवश है। मेरे पंख होते तो मैं उड़कर तुम्हारे सन्निकट पहुँच जाती और तुम्हारे सागर जैसी अथाह प्रेम की गहराई में अपने को समाहित कर देती। तुम कब आओगे? मैं प्रतिक्षण मर-मर कर जी रही हूँ। किसी भी जोड़े को देखते ही दिल बैठ जाता है। यहाँ तक कि खुले आकाश में विचरण करने वाले पक्षियों के जोड़े गोधूली के समय जब अपने नीड़ में जाते हैं तो मेरे ह्रदय में अचूक अनजानी सी कसक उठती है। आह भर कर....एकदम निरूपाय सी....आशा और विश्वास के साथ, क्या? एक पत्र

और भेजोगे या मुझे तुम्हारी प्रतीक्षा करनी पड़ेगी? वैसे मेरे देवता आप? स्वंतन्त्र हो। मेरा वियोगी हृदय आजीवन तुम्हारी प्रतीक्षा करेगा। प्रेयस का प्रणय रास-विलास रह-रह कर झलकने लगता है, हृदय की चित्कार है कि पत्र के जवाब में तुम खुद वापस आ जाओ।

"तुम्हारी"
मैं

पत्र पढ़ते समय रेखा के चेहरे पर न जाने कितनी बार विषाद की लहरें हिलोरें ली और चली गयीं। पुनः रेखा ने पत्र उत्कर्ष को लौटा दिया। उत्कर्ष भी बिना किसी टिप्पणी के पत्र अपने पाकेट में रख लिये। कुछ क्षण दोनों निर्विकार रूप से एक दूसरे को देखकर मौन साधे रहे। फिर वही रोज की दिनचर्या। उत्कर्ष धीर-गम्भीर, शान्त एवं निश्चल अपने को पूर्णतः संतुष्ट दर्शाते हुए अपने कार्यों में व्यस्त हो गये, किन्तु रेखा उत्कर्ष के ठीक विपरीत दिख रही थी। न वह अपना कार्य ठीक से कर रही थी न ही पढ़ाई-लिखाई में मन लग पा रहा था। उत्कर्ष से रेखा की मानसिक पीड़ा छिपी न रह सकी। एक दिन उत्कर्ष ने कहा रेखा चलो? एक दो दिन के लिए हम दोनों कहीं बाहर चलते हैं। स्थान बदल देने से पुरानी यादें पीछे छूट जाती है। दोनों प्रवास पर थे, परन्तु मन विचलित था। कुछ क्षण दोनों एक दूसरे में समा जाने के लिए विकल दिखे। पर? भरे हुए घड़े में आप कितना जल भरोगे? वह तो बाहर ही गिरेगा, जिससे परती धरती सींचित होगी। सोंते के जल में अगर बरसाती झरने का पानी मिल ही जाय तो उसका क्या महत्व है। भावनायें जब जन्म ले लेती हैं तो लतरबेलि की तरह पनपती चली जाती हैं। रेखा की आँखों से नींद गायब थी। वह अपने पार्श्व में गहरी नींद के आगोश में समाये उत्कर्ष को देखती रही अनवरत। अन्दर एक छटपटाहट थी, जिसको वह दबाने की बार-बार कोशिश कर रही थी। परन्तु उसकी दृष्टि में उत्कर्ष को देखने की ललक साफ झलक रही थी। मान्यताओं की जकड़न से वह उबर नहीं पा रही थी। जब से उसके पत्नी का पत्र पढ़ लिया था तब से वह स्वयं ही अपने नजरों में दिन प्रतिदिन गिरने लगी थी। ग्लानि से भरा हुआ हृदय यह स्वीकारने लगा कि उत्कर्ष के प्रति उसका प्रेम स्वार्थपूर्ण है, क्योंकि उसे उनका साथ अच्छा लगता है, इसलिए वह दुराग्रह से अपने प्रेम पाश में बाँधें रखना चाहती है। उत्कर्ष के

पत्नी की नम्रता उसका शील-स्वभाव धर्मपरायणता और अपने पति के प्रति असीम स्नेह और विश्वास के आगे रेखा का प्रेम अति तुच्छ सा लगने लगा, और वह अपराधबोध से ग्रसित हो गयी। तथा अपने ही दृष्टि में दीनहीन सी दिखने लगी। संकल्पित मन अचानक एक दिन निर्णय कर ही लिया कि उत्कर्ष को बन्धन पास से मुक्त रखना ही श्रेयष्कर होगा।

उत्कर्ष का व्यक्तित्व बहुत ही नम्र, उदार, दयालु प्रकृति का है, वह भी विशेषकर स्त्रियों के पक्ष में। इसी कारण वह रेखा का आग्रह नहीं टाल सके चाहते हुए भी। परन्तु रेखा ने आज निश्चय कर लिया कि वह उत्कर्ष को जाने से कदापि नहीं रोकेगी, उन्हें अपने जीवन से विदा कर देगी। आह! भरकर..... मैं भलिभांति जानती हूँ कि उनका मेरे से दूर होना बहुत खलेगा मर-मर कर जिन्दा रहूँगी, फिर भी यह कहाँ का न्याय है कि मैं अपने स्वार्थपरता में एक अच्छे पति-पत्नी के प्रेम में सेंध लगा दूँ या एक दूसरे से दूर रहने के लिए बाध्य करूँ। नहीं! यह अब संभव नहीं है। जो मेरी मनोदशा होगी उसको चुपचाप सह लूँगी पर उन्हें कभी न रोकूँगी- कभी नहीं..........! द्वितीय दिवस उत्कर्ष समय पर आये ढेर सारी बातें की रेखा भी हँस कर (वह हँसी होठों पर ही थी) उनके हर प्रश्नों का उत्तर देती रही, बिल्कुल अन्मनस्क सी उसकी आत्मा कहीं न कहीं रो रही थी। उसे पता था उत्कर्ष के बिना वह एक पल भी नहीं रह पायेगी, अगर रही भी तो एक बेजान मूरत की तरह। उसी बीच वार्तालाप में बोल पड़ी उत्कर्ष आज के बाद हम दोनों अब नहीं मिलेंगे। एक दूसरे से विलग रहेंगे, न आप मुझसे मिलेंगे नहीं कोई बातचीत, बस आज हम लोग आखिरी बार मिल रहे हैं। उत्कर्ष बड़ी विनम्रता से मुस्कराते हुए बोले जी......नहीं, आप मुझसे नाराज हो गईं क्या? अरे इतनी भी क्या जल्दी है? आराम से विदा ले लूँगा, कम से कम आप को कुछ क्षण के लिए ही खुश तो कर लूँ। तुम्हें खुश रखने की खातिर ही तो मैंने इतनी मेहनत की। मेरे सब किये कराये पर क्यों पानी फेर रही हो। आज नहीं फिर कभी चला जाऊँगा? कहते हुए हँस पड़े। रेखा ने उत्कर्ष की तरफ बड़ी ही मार्मिक दृष्टि डालते हुए कहा- उत्कर्ष जी आपसे मैं कभी नाराज हो सकती हूँ क्या? अपने हृदय पर हाथ रखकर उन धड़कनों से पूछ लिजिए। वह विश्वास के साथ आपको बता सकेंगी, तब तो आपको किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं पड़ेगी? मैं तो

भलीभाँति जानती हूँ, आप मेरे पर कभी अविश्वास नहीं करेंगे। परन्तु जिस प्रकार आप मेरे प्रणय निवेदन को स्वीकार कर लिये थे, उसी आग्रह अनुनय-विनय पूर्वक प्रणय भार से मुक्त हो जाइए। इस अनुरोध को आप स्वेच्छा से मान लेंगे तो मेरा आत्म परिष्कार सम्भव होगा......उत्कर्ष की दृष्टि उठी ही थी कि रेखा की दृष्टि से टकरा गयी। उत्कर्ष निर्निमेष, अपलक रेखा को देखते रहे.......। रेखा ने अपनी नजरें जमीन में गड़ा दी। उत्कर्ष पुनः कम्प्यूटर में गाना लगा कर सुनने लगे।

"....सजनी रे....तुमसे नेहा लगा के...."

□□□

एक पत्र लड़की के नाम

प्रिय वैष्णवी,

असीम स्नेह,

आशा करता हूँ सकुशल होगी। मैंने कई पत्र दिये पर किसी का कोई उत्तर नहीं मिला। चलो? मैं यह मानकर चल रहा हूँ कि तुम्हारी ओर से किसी भी तरह का कोई उत्तर आयेगा भी नहीं । वैसे मैंने हर आगत संभावना को स्वीकार कर लिया है और स्वयं को इस योग्य भी तकरीबन बना ही लिया है कि कुछ भी झेल सकूँ। कल पन्द्रह (15) मार्च है, जानता हूँ किसी भी तरह की तारीख का कोई अर्थ नहीं है तुम्हारे पास क्योंकि तुम भी कहीं न कहीं उस स्थिति में अवश्य ही पहुँच गयी हो जहाँ से पीछे मुड़कर देखना शायद संभव न हो। अपने दो-तीन पत्रों में मैंने लिखा था कि तुम आ जाओ बिना यह जाने समझे कि इसमें तुम्हारी संभाव्यता कहाँ तक हो सकती है या इसे तुम यूँ ही कल्पना की उड़ान में रंगे मन की उपज कह सकती हो, जो भी हो तुम अन्यथा न लेना मेरी किसी भी बात का। बहुत पहले प्रेमचन्द की एक कहानी पढ़ा था 'नशा'! एक साधारण घर का लड़का अपने मित्र के साथ उसके घर जाता है, उसका मित्र एक जमींदार परिवार का है। पहले तो लड़का या पात्र "मैं" सकुचाता है पर अपने मित्र के व्यवहार से उसका संकोच दूर हो जाता है। घर पहुँचने पर जमींदार का लड़का उसका (मैं) परिचय जमींदार के बेटे के रूप में आमज़न से कराता है । "मै" पर एक खास तरह का नशा चढ़ जाता है झूठा नशा बात-बात में नौकरों को डाटता फटकारता रहता है, झूठे दिखावे करता है, सचमुच में समझ रहा है कि वह जमींदार का ही बेटा है। एक अवसर ऐसा आया जब उसका मित्र उसे उसकी सीमांए बता देता है और तत्क्षण (मैं) का नशा उतरने लगता है। ठीक यही बात मेरे साथ भी हुई। बगैर अपनी सीमाएं जाने बड़े दावे और अधिकार से कह दिया कि तुम आ जाओ। यह भी कोई

बात हुई? खैर मेरी धृष्टताओं के लिए मुझे क्षमा करना।

सिक्किम के चुँगथांग इलाके में रह रहा हूँ। किसी भी बात की कोई कमी नहीं। पहले खाने पीने की थोड़ी तकलीफ होती थी अवश्य पर कुछ दिनों से स्वयं खाना बना रहा हूँ, कच्चा-पक्का, जला, अधजला, और कम-ज्यादा जो भी होता है, पेट भर जाता है। सबके बाद भी मेरे पास दो हाथ तो है? बनाने-खाने में तकलीफ अवश्य होती है पर इससे क्या? पढ़ने-लिखने का समय नहीं मिल पाता तो भी क्या हुआ? रहना है रह ले रहा हूँ, चाहे अच्छी तरह रहूँ या बुरी तरह मुझ पर शायद अब किसी तरह के विषाद का असर नहीं पड़ेगा, अब ऐसा लगने लगा है। शायद यही सच है? कोशिश यही करता हूँ कि अस्वस्थ न हो जाऊँ क्योंकि यहाँ की जलवायु बड़ी ही रंग बदलने वाली है। छुट्टी के दिन तिस्ता के किनारे बैठकर लहरें गिनने में गुजार देता हूँ, और कार्य दिवस में हड़बड़ी ही लगी रहती है। इस बार होली की छुट्टी में सोच रहा हूँ न्यू बोगाई गाँव चला जाऊँ। विमल, हरेन और दिनेश उप्रेती के यहाँ एक-दो दिन रह लूँगा। दो-चार बातें करने के वास्ते लोग मिल ही जायेंगे। बस यूँ ही सब कुछ चल रहा है। आशा करता हूँ कि आशीष से तुम्हारी मुलाकात हुयी होगी? क्योंकि उसके छोटे भाई की शादी कलकत्ते से हुई थी। इस शुभ अवसर पर वह तुम्हें अवश्य बुलाया होगा। मैं तो जा ही नहीं पाया जिस भी कारण से हो उसके घर जा तो नहीं पाया? मैं तुम्हें किसी तरह का कोई कष्ट नहीं पहुँचाना चाहता हूँ। ना जाने कब से कितनी बार मिलने की सोच कर भी नहीं मिल पाता हूँ। कब जाऊँगा? निश्चित नहीं कर पा रहा हूँ। जाने का एक उद्देश्य भी है कि आशीष के पास कई चुनिन्दे, पुराने कैसेट छोड़ आया था उसे ले आऊँ और फिर यहाँ एक टेपरिकार्डर खरीद लूँ क्यों कि कभी-कभी बहुत अकेलापन महसूस करने लगता हूँ।

तुम निश्चिन्त रहना मैं अब तुम्हें किसी भी तरह से डिस्टर्ब नहीं करूँगा। तुम्हारी दुनियाँ में दखल देने का न तो मेरे पास कोई हक है और नहीं ऐसा कोई इरादा, सो बेफिक्र रहना। वैसे एक बात स्पष्ट रूप से बता दूँ, तुम कभी संकोच न करना यह दुनियाँ विश्वसनीय तो रह ही नहीं गयी है। हो सकता है तुम्हें कहीं ऐसा लगे कि मैं तुम्हें कभी किसी तरह का नुकसान पहुँचा सकता हूँ या परेशान कर सकता हूँ तो ऐसी स्थिति में अगर कोई सजीव या निर्जीव वस्तु मेरे

पास हो जो तुम्हारी शांत दुनियाँ में उथल-पुथल मचा दे तो मुझे लिखना मैं उसे तुम्हारे पास भेज दूँगा। याद रखना तुम्हारे खोने की चिन्ता मुझे सता रही हैं.....एकाकी जीवन में कोइ रस नहीं है। भूलकर भी भूल नहीं पा रहा हूँ। इसके बाद भी मैं कायर आदमी नहीं जो अपने प्रेम और सौन्दर्य की दुखभरी कहानी को सुन्दर, शोभन, मधुर न कह सकूँ। जानबूझकर मैं तुम्हें फोन नहीं कर रहा हूँ, क्योंकि इससे तुम्हारा नुकसान हो सकता है और मैं इस तरह का कार्य करना नहीं चाहता? आरोप-प्रत्यारोप, क्या खोया-क्या पाया आदि चीजों को मैं करीब-करीब भूल चुका हूँ। सम्वेग का रौ चाहे जितना तीव्र हो किसी से कभी कुछ कहने नहीं जाऊँगा। जहाँ भी रहो सुखी रहो, प्रसन्न रहो, स्वस्थ रहो एवं मेरे जीवन की सारी खुशियाँ तुम्हें समर्पित मेरी यहीं कामना है। मैं कैसा हूँ? क्या कर रहा हूँ, कैसे रहता हूँ, किस स्थिति में रहता हूँ, इस तरफ झांकने का कभी कष्ट मत करना। मेरे मन में जो दब रहा है उसे परतों में दब जाने दो उकेरने का प्रयास करना बेमानी होगी शायद?

विदा देते और विदा लेते समय तुम्हें गा के सुनाता हूँ :-

आखिरी गीत मुहब्बत का सुना लूँ तो चलूँ
मैं चला जाऊँगा, दो अश्क बहा लूँ तो चलूँ
आज मैं गैर हूँ, कुछ दिन हुए मैं गैर न था
मेरी उल्फत मेरी चाहत से तुझे बैर न था
मैं हूँ अब गैर, यकीन दिला लूँ तो चलूँ
तेरी दुनिया से मैं एक रोज चला जाऊँगा
और गये वक्त की मानिन्द नहीं आऊँगा
फिर न आने की कसम आज मैं खा लूँ
तो चलूँ ....आज मैं खा लूँ तो चलूँ..................

सस्नेह (मैं)

□□□

गोधूली में सुशिक्षिता

सरला चंडीगढ़ से कलकत्ता के लिए रवाना हुयी ट्रेन का सफर था। बड़ा सुहाना मौसम शीत लहर अपने चरम पर थी। फिर भी मन में हजारों हजार प्रश्नों के बावजूद निखिल से मिलने की उत्कण्ठा थी। सफर में कोई साथ न हो तो मन उद्विग्न सा रहता है। परन्तु सरला साथ में "आवारा मसीहा" (विष्णु प्रभाकर) की एक प्रति रखी थी। ट्रेन में बैठते ही निखिल का फोन आया, तुम ट्रेन में बैठ गयी न? लगता है ट्रेन सही समय पर पहुँचेगी। तुम शायद मेरे से पहले पहुँच जाओगी? चलो! फोन रखता हूँ, रात में बात करेंगे। सरला का मन बड़ा व्यथित हो गया कि उनका बहुत कम समय मेरे हिस्से में आया उसमें भी समय साथ नहीं दिया, मेरे खुशी के दो-चार घंटों में से ही और समय कमतर हो गया। खैर...... वह हर पल की खबर उन्हें देती रही, भावों व उद्‌गारों से अवगत कराती रही......। रात में उन्हें सोने दे ऐसा सोचकर "आवारा मसीहा" पढ़ने लगी। "आवारा मसीहा" बाबू शरतचन्द्र की जीवनी है। अपनी पुस्तकों में शरत बाबू स्वयं को खोलकर रख दिये है। एक प्रसंग है कि "ये सब उपन्यास की बातें हैं, लेकिन भावहीन नहीं है। कभी अवसर प्राप्त हुआ तो एक कहानी सुनाऊँगा। सुनने में कथा-कहानी की तरह अवास्तविक लगेगी, लेकिन इससे अधिक वास्तविक सत्य मेरे जीवन में और कुछ नहीं है लेकिन क्या एक तरफा प्रेम कम शक्तिशाली होता है? क्या वह अपने आप में मधुर नहीं होता है? क्या सफलता ही उसके होने का प्रमाण है? मन ही मन किसी के लिए अपने को विसर्जित नहीं किया जा सकता है क्या? इस वेदना को स्नेह कहो, प्रेम कहो, आयु का दोष कहो, पर इसके अस्तित्व से इन्कार नहीं किया जा सकता है। उसमें प्रेम की भूख अपार है, लेकिन तृप्ति का कोई साधन नहीं है। यह अतृप्ति दर्द के रूप में कुण्डली मारकर उसके अन्तर में रम गयी। जिसकी अभिव्यक्ति देवदास और बड़ी दीदी के रूप में हुयी। जिसमें असफल प्रेम की

प्रतिमाएं उभर कर सामने आयी हैं। इतना मार्मिक प्रसंग पढ़ते समय उसका हृदय विदीर्ण हुआ जा रहा था। क्योंकि सरला भी अपने प्रेम को एक तरफा ही मानती है, निखिल उसे बहुत स्नेह करते हैं परन्तु अपने जीवन शैली में न तो कोई बदलाव ला सकते हैं न ही विराम। उनका जीवन अबाध गति से गतिमान है। सरला के जीने की जिजीविषा ने ही निखिल को सामंजस्य बनाने को बाध्य किया होगा? ऐसा उनके भावों और विचारों से झलकता है, अपितु विरह वेदना ही जीवन और यौवन का आवेग है। बुद्धि के द्वारा इसे नापा नहीं जा सकता, हृदय से ही आदर्श, यथार्थ, समस्या, समाधान आदि सम्पृक्त हैं। सरला मन ही मन यह स्वीकार कर लेती है कि मेरे जीवन में निखिल का कोई विकल्प नहीं, चाहे नीति के आधार पर अथवा अनीति के आधार पर किसी विशेष अवस्था में अगर आशान्वित प्रतिफल नहीं मिलता है, तो प्रणय का यह अक्षुण्य भार जीवन से सम्पृक्त रहेगा। सफर में "आवारा मसीहा" के प्रसंग मानों उसकी आपबीती सुना रहे हैं, इसी उधेड़बुन में फँसी रही कि तत्क्षण उसक़े सोच की दिशा बदल गयी। अचानक हृदय परिवर्तन .... संवेदना की सबसे नाजुक नब्ज दब सी गयी या निखिल ने दबा दिया.........न परिभाषित किया, न उद्घोषित बल्कि अकिंचन मन की वेदना को बढ़ा दिया, उसनें भी कोई प्रतिकार नहीं किया। शायद इन्द्रियों की सूचना मस्तिष्क को पहुँच चुकी थी और अब लगता है वे सरला की कमजोरी बनते जा रहे हैं। खैर..... दुर्बलता पर सबलता विजय प्राप्त करेगी। यह आत्मविश्वास है। फिलहाल मन के उद्वेगों को लिपिबद्ध करना शायद कोई गुनाह न होगा अचानक मन की विकलता ने लेखनी का सहारा ले लिया। सरला ने निखिल को पत्र लिखा...

प्रिय,

मैं जानती हूँ आपको अच्छा नहीं लगेगा किंचित कोने से भी, परन्तु मेरा अधूरापन जब तक यथार्थ था मुझे कभी भयावह या भयाक्रान्त नहीं लगा। अब एहसाह बदल गया है। मैं अपने को अपने तईं पूर्णता में परिभाषित करती हूँ। मैं यह जानती हूँ यह हकीकत नहीं कल्पना है एकदम कोरी कल्पना, फिर भी मानसिक बन्धन का आभास करती हूँ। आपसे सिर्फ एक अनुरोध है! मेरे साथ जुड़ी इन परिस्थितियों को कभी आप शोषित नारी की कहानी का नाम मत देना। मेरे पास कोई बाध्यता नहीं है शोषित और प्रताड़ित होने का, मुझे

बेचारगी जैसे शब्दों से बहुत चिढ़ है? मेरी आत्मा मेरा विवेक जो कहता है वही करती हूँ। आप उसे दुर्बलता कहें या भीरूता या आत्मयंत्रणा....स्वतन्त्र हैं आप। अमिट गहरी तन्हाइयों का डेरा डाले हुए मेरे जीवन के वह अमूल्य निधि हैं, जिसको किसी बन्धन, किसी सम्बन्ध, किसी काल, किसी समय में बांधना मानवीय भावना को ठेस पहुँचाना है। मेरी पूर्णता के आत्मबल हो, कभी-कभी मैं सचमुच कुण्ठाग्रस्त हो जाया करती थी परन्तु मेरे मन-हृदय पर जब से आपका कब्जा हुआ है, मेरी सारी कुण्ठाएं, वीभत्स विचारों की गठरियां कई सौ वर्ष पुरानी रही होंगी, ऐसा प्रतीत होता है। आप मेरे जीवन के अंश नहीं अथाह सागर हो... मैं कहीं रहूँ, किसी भी परिस्थिति में रहूँ, गोते तो अथाह सागर में ही लगाया करती हूँ। अब मुझे अकेलापन तो नहीं परन्तु अनुपस्थिति का एहसास होता है?

आदमी होने के नाते यह मेरी मानसिक कमजोरी हो सकती है। आप मेरे अति आवश्यक जुड़ाव हो, शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक सभी अर्थो में सिर्फ मेरे अपने तईं। आप क्या सोचते हैं इससे मेरा कोई मतलब नहीं है। परन्तु आप समझा-बुझाकर मेरे भावना को ठेस मत पहुँचाइयेगा। मैं आपको अपने हेतु कभी परेशान या अपमानित नहीं करूँगी क्योंकि आप मेरे मन के सार्थक साध्य हो। आपके प्रत्यक्ष साधना में नहीं बल्कि परोक्ष साधना में विश्वास रखती हूँ। विश्वास सफलता की कुंजी है। इसे मत तोड़ियेगा। मुझे यह भय है कि कभी आप मेरे सम्बन्धों पर मुझे झकझोरने लगेंगे तो मैं निरूत्तर हो जाऊँगी। क्योंकि इस विषय पर मैंने किसी प्रश्नोत्तरी की कोई कल्पना नहीं की है। न ही इसके आगे-पीछे क्यों, कैसे, किसलिए, किसी भी भूमिका को स्पष्ट करने की इच्छा है। इस बात का कोई अर्थ नहीं है। परन्तु मानसिक जुड़ाव के परिप्रेक्ष्य में कोई प्रश्न उठ सकता है?

आप ही ने मेरे हृदय को युग जीवन के प्रति सजग होने का स्पष्ट आदेश दिया है। अपने सीमा में परिबद्ध, सम-सामयिकता से अनुप्रेरित, बर्हिमुखी एवं अन्तर्मुखी प्रवृत्ति को सहारा दिया है। स्पर्श मात्र से सजीवता का आभास दिया है, प्रणय संचरण करने वाली चेतना को मुखर किया है। बहुत कुछ नया है, जो कहा एवं लिखा नहीं जा सकता है। समय का अभाव है, यह रोना! मात्र बहाना है? सुख और सुखानुभूति की कल्पना में हम अपने वर्तमान को नहीं जी

रहे हैं। मेरे हिस्से में आपका सबसे कम समय आया है, वह भी मैं अपने में समेट नहीं पा रही हूँ। इस बात का दुःख आज भी है कल भी रहेगा। यह मेरे मन का उद्वेलन है, सच कुछ और है................ स्नेहिल हृदय समर्पित....... तुम्हारी.....

□□□

पिता के नाम पत्र

आदरणीय पिता जी,

प्रणाम, आपका 8-8-94 का लिखा पत्र मिला। सारे समाचारों से अवगत हुआ। इन दिनों मेरी मुलाकात अपने पूर्व परिचितों से नहीं हो रही है और चौधरी जी से भी मुलाकात नहीं हो पायी है। एक दिन बस में अवश्य मिले थे पर ज्यादा बातें नहीं हो पायी। मास्टर साहब के छोटे भाई (लल्लन जी) की समझ और उनकी सोच अभी भी बदली नहीं है लेकिन मुझे कोई आश्चर्य नहीं हो रहा है। आश्चर्य इसलिए भी नहीं हो रहा है कि उनकी समझ अभी भी परिपक्व नहीं हो पायी है कि वे सारी बातों को तार्किक रूप से समझ सकें। मुझे बुरा तो लगा ही है कि वे आपको धमकी दे रहे हैं, क्योंकि यह बुरी लगने वाली बात ही है तथा इस कारण और भी बुरा लगा कि उनकी धमकी की वजह भी मैं ही हूँ। अगर वे मुझे सैकड़ों गालियां भी दे देते तो मैं उनकी बातों पर ध्यान नहीं देता। क्योंकि किसी भी स्तर पर उनसे मेरा किसी तरह का जुड़ाव नहीं है और न तो मैं उनकी बातों का परवाह ही करने वाला हूँ। मेरी एक बात की गांठ बाँध लीजिए कि व्यक्ति को जब वे सारी चीजें मिल जाती हैं, जिसका वह पात्र नहीं होता तो इसकी परिणति वही होती है जो मास्टर साहब के भाई की हो रही है। वे धौंस किसे दिखा रहे हैं और किस बात की धौंस दिखा रहे हैं? इतना अहंकार अच्छा नहीं होता सच तो यह है कि उनका अभी तक किसी आदमी से पाला ही नहीं पड़ा। किसी की आलोचना करना मेरा स्वभाव नहीं है, किसी की बुराई करने की भी मेरी आदत नहीं है। तथापि यदि कोई उल्टी-पुल्टी बातें करे तो उसके भी सहने की सीमा होती है। यदि मास्टर साहब में दम है तो मुझसे बात कर लें, मैं उनके भाई से क्या बात करूँगा, वह दमदार आदमी नहीं है। मैं मास्टर साहब को तत्काल समझा दूँगा। इतने दिनों बाद मास्टर साहब को अचानक मेरी याद क्यों आयी? इतने दिनों

में मास्टर साहब ने यह महसूस किया कि मैं क्या कर रहा हूँ? अच्छा या बुरा? मास्टर साहब की शिक्षा कुछ खास जगहों तक ही सीमित होकर रह गयी। व्यक्ति की शिक्षा कामयाब तभी होती है जब उसका सही उपयोग किया जाय, वरना शिक्षा-शिक्षा न रह कर अपना ही माखौल उड़ाने वाला तमाशा बन कर रह जाती है।

आज से नहीं, शुरूआत से ही मेरे और मास्टर साहब के परिवेश में काफी अन्तर रहा है। मैंने जो कुछ भी किया है अपने बल पर किया है, लाख कठिनाइयों के बावजूद। मैं किसी बैशाखी का सहारा लेकर इतनी ऊँचाईयों पर नहीं पहुँचा हूँ। वैसे कमाने के बहुत सारे तरीके थे मेरे पास भी, पर मैंने ऐसा नहीं किया क्योंकि इसके पीछे शायद मेरे संस्कार काम कर रहे थे। एक नैतिकता का भाव छुटपन में ही जाग उठा था मेरे मन में भी। मैं बहुत कम उम्र से यह अनुभव करता रहा हूँ कि मेरा बाप एक ऐसा शख़्स है जिसे सारे लोग ठगते रहे हैं, उसके कंधे पर बंदूक रखकर चलाते रहे हैं, और दिन-प्रतिदिन मालामाल होते रहे हैं। बदले में इस शख़्स को क्या मिला है? केवल गरीबी, हिसाब न रख पाने के कारण संस्था के पैसों का घर से भुगतान और झूठ की वाहवाही! यह वाहवाही देने वाले भी वे लोग ही रहे हैं जिन्हें बराबर लाभ मिलता रहा है, तथा लूटने-खसोटने की बराबर आजादी मिलती रही है। बावजूद सबके मुझे ऐसा कभी महसूस नहीं हुआ कि मेरा बाप कुछ गलत कर रहा है, क्योंकि तब तक मुझे ज्ञान हो चुका था कि कुछ लोग केवल इसीलिए होते ही हैं कि जीवन भर अपनी नैतिकता को लेकर ही जीते रहे। आपको शायद कभी इस बात की याद आए कि मैंने कहा हो कि आप लूट-खसोट कर पैसा क्यों नहीं बनाते! मैं जानता था कि आपकी जो आमदनी है, उसमें जितना कुछ हुआ है, उससे अधिक हो भी नहीं सकता! तो वही सारे संस्कार मुझमें भी हैं। पर इसके अतिरिक्त भी मुझमें जिस भावना का उदय हुआ है, वह यह है कि मैं कभी भी अपने-आपको किसी भी स्तर पर किसी भी परिस्थिति में गिराऊँगा नहीं। ऐसी बात नहीं है कि मुझे लोगों ने ठगा नहीं है, ठगा है, बार-बार ठगा है, लेकिन किसी को भी मैंने कुछ दिया ही है, लिया कुछ भी नहीं। मैं यह आशा भी नहीं रखता किसी से कि कोई बदले में मुझे कुछ दे। यह मेरा अहंकार नहीं व्यक्ति होने की पहचान हैं........... आपको लगता होगा कि मैं

अचानक गुस्सा हो जाता हूँ मुझमें अहंकार की मात्रा ज्यादा है या मैं अपने-आपको दूसरे से अलग समझता हूँ परन्तु यह बात तो है ही नहीं, मुझे जो लोग जानते हैं करीब से उनसे पूछकर देख सकते हैं कि क्या यह सारे दुर्गुण मुझमें हैं? एक बार मैंने छोटे भाई से कहा कि तुमने एल० आई० सी० दो-दो बार करवा लिया इसका क्या अर्थ होता है? यदि जीवन बीमा कराना हो तो यू० एल० आई० पी० क्यों नहीं? कहने लगा "मुझे पता नहीं", पता नहीं, यह कहकर कोई अपनी चमड़ी नहीं बचा सकता! युग तेजी से बदल रहा है। इसके साथ यदि लोग नहीं चले तो मीलों दूर पिछड़ जायेंगे। सबसे पहले सोचना यह है कि क्या हमें उन्हीं संस्कृति और संस्कारों में रहना है, जिसमें अब तक रहते आये हैं? एक बात स्पष्ट रूप से बता दूँ कि पैसा हो जाने से संस्कार नहीं बदलते। मास्टर साहब के पास यदि पैसा हो गया है तो क्या उनके संस्कार बदल जाएंगे? क्या कर रहे हैं मास्टर साहब समाज के लिए? बाल, बच्चों के लिए? मास्टर साहब का परिवार क्या जानता है कि दुनियाँ क्या होती है?..................पत्नी..............? बच्चे? मैं सोच रहा था कि शादी नहीं करूँगा क्योंकि मेरे साथ बहुत सारी बातें ऐसी हो गयी जिनके बारे में मैं सोच भी नहीं सकता था। बहुत कम लोग जानते हैं और पूरी बात तो कोई जानता ही नहीं, यहाँ तक कि मैं भी नहीं! शादी न करके भी अच्छी तरह और मजे से गुजारा कर सकता हूँ। लड़कियों की कमी नहीं रही कभी भी मेरे लिए लेकिन आदमी मिलना बड़ा ही मुश्किल काम है। एक सांवली सी साधारण, सामान्य सी लड़की में मुझे क्या दिखा, इस प्रश्न का उत्तर है मेरे पास! एक बात और भी बता दूँ कि तकरीबन बहुत जोर देकर ही मैंने उसे राजी किया था। क्यों? इसलिए कि मेरे विचारों से तनिक भी हटकर सोचने वाले को मैं सहन ही नहीं कर पाऊँगा। यदि किसी ने मेरे लिए जाने या अनजाने में कभी कुछ किया हो, जिसका सम्बन्ध मेरे अस्तित्व से हो तो उसका आभार मैं कभी भूल नहीं सकता! अन्तर है, काफी अन्तर है! एक व्यक्ति के लिए मैंने तकरीबन अपना सब कुछ, विद्या, बुद्धि, बल, मान-सम्मान, अहंता और समय दे दिया था, बदले में मुझे मिला क्या? गालियां..! आपको जानने की आवश्यकता नहीं है इस विषय में! खैर ....मास्टर साहब का समाज मुझे रोटी नहीं देगा, मास्टर साहब की जाति मुझे कुछ भी कहे, मैं पहले आदमी हूँ बाद में

मेरा धर्म, मेरी जाति, मेरा प्रदेश, मेरी भाषा...............! आपके मना करने पर मैं मास्टर साहब को पत्र नहीं लिख रहा हूँ। इसलिए आप बेफिक्र रहिए! किसी को कोई सफाई देने की आवश्यकता नहीं है। आप किसी के गुलाम नहीं हैं। इस बात का ध्यान रखिएगा ....पत्र की प्रतीक्षा में ....

आपका ही
बेटा
मैं

□□□

मृत्यु का उत्सव

पद्मा बड़ी ही खूबसूरत 20-21 साल की मेरे दोस्त की प्यारी बहन थी। दोस्त की बहन यानी मेरी छोटी बहन जब भी हम और दीपेन एक साथ होते थे तो पद्मा बहुत खुश होती थी। पता नहीं वह क्या देखती थी हम दोनों में, कभी एकटक निहारती थी कभी हंसती थी। खूब अच्छे से चाय नास्ते की प्लेटें सजाकर हम लोगों के सामने रखकर कहती देखो तुम दोनों के लिए मैंने बड़े मन से बनाया है खा लो मैं तुरन्त उसका हाथ पकड़ कर बैठाती, वह कुछ देर बैठती फिर यह कहती हुयी उठकर चली जाती कि दीपेन तुमसे कहाँ मिल पाता है आज पकड़ा गया है खूब बातें कर लो और हम लोग हंस देते ....

अभी-अभी मैं पद्मा के घर से आयी हूँ आज बड़ी थकान हो गयी थी खाना खाया और बिस्तर पर चली गयी रेडियो लगाकर विविध भारती का प्रोग्राम छाया गीत सुन ही रही थी तब तक रात के सन्नाटे को भंग कर भयानक तूफान आ गया मेरा मकान बहुत छोटा है इसलिए तूफान आते ही सब हिलने लगता है। हाथ-पांव फूल जाते हैं न जाने क्या होगा प्रकृति जब रूठ जाती है तो तहस-नसह कर देती है प्रकृति में अपार शक्ति है, देने का अक्षय स्रोत है तो लेने की अदम्य उत्कंठा भी, मकान मानो थर-थर कांप रहा था, उसकी दीवारें फट सी गयी उसमें से आकर हवा के झोंको ने जलते हुए दीपक को बुझा दिया जिसकी रोशनी अब तक मकान में उजाला फैलाए थी। प्रकृति की मार पड़ती है तो सब सहना पड़ता है।

उपाय विहीन होकर अंधकार में डूबते हुए एकान्त में मन से निद्रा देव की आराधना कर रही थी लेकिन कामना पूरी होने की संभावना नहीं दिख रही थी कहीं-न-कहीं अन्तर मन में ये तूफानी हवा मकान को उड़ा न दे यह भ्रम समाया हुया था। साथ ही पद्मा की बीमारी मेरी वेदना को बढ़ा रही थी जो यन्त्रणा वह आज सह रही थी मानों मृत्यु दरवाजे पर दस्तक दे रही हो इस

भीषण यंत्रणा के बीच बिस्तर पर रहकर रात भर करवटें बदलती रही। अचानक भोर में किसी की आवाज सुनाई दी मैंने सोचा इस काली अंधेरी रात में कौन हो सकता है? मैंने बिस्तर से उठकर दरवाजा खोला तो देखा दीपेन खड़ा है। उसे इतनी रात में आया देख मैं परेशान हो उठी किसी अनहोनी की कल्पना मात्र से ह्रदय कांप गया। मैंने पूछा बहन पद्मा को कुछ हो तो नहीं गया? दीपेन बड़ी हिम्मत जुटाकर रो-रोकर कहने लगा पद्मा बेहोश पड़ी है शायद वह ज्यादा देर जिन्दा नहीं रहेगी, चलो जल्दी से डाक्टर बुला लाएं मैं थोड़ी सी भी देर न करके दीपेन के साथ डॉ. प्रभाकर शुक्ला को बुलाने के लिए निकल पड़ी लेकिन तूफान अपनी रफ्तार कम नहीं कर रहा था रास्ते में दीपेन बताने लगा पद्मा आते समय बोल तो रही थी लेकिन उसका शरीर काला पड़ता जा रहा था पर उसकी कही हुयी बातें मेरे कानों में अभी भी गूंज रही हैं। "दीपेन दा छाती में बहुत दर्द हो रहा है, शायद सांप काटने के बाद विष इस तरह नहीं फैलता जिस तरह मेरे पूरे शरीर में दर्द हो रहा है। मैं शायद और देर तक जिन्दा नहीं रहूगी" वह अपने शरीर के चोट का वर्णन करती हुयी बोल रही थी और शरीर से लगातार खून की धार बह रही थी। कैसी दयनीय दशा थी पद्मा की पत्थर दिल इंसान भी उसकी यह हालत देखकर चित्कारने लगेगा, शोक संतप्त हो कर दीपेन ने कहा ऐसा क्यों हो गया पद्मा को क्या नहीं था उसके पास रूप, गुण, सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति थी फूलों में गुलाब की श्रेष्ठता अनुभव करने की उसकी अपनी अद्भुत क्षमता थी अनार जैसे दाँत निकाल कर हर समय हंसती रहती थी। हम दोनों पद्मा के बारे बातें करते-करते डॉ. के पास पहुँच गए परन्तु तूफ़ान में कोई कमी नहीं हुयी मैंने कई बार कालबेल बजायी परन्तु कोई रिस्पांस नहीं मिल रहा था परन्तु मिले भी कैसे इतनी बड़ी अट्टालिका जो ताजमहल होने का भ्रम पैदा कर रही थी या यूं कह लिजिए उससे सुन्दर प्रतीत हो रही थी। इन लोगों का कितना सुन्दर जीवन है। ये बड़े लोग समय का सही सदुपयोग करना जानते हैं इसलिए रात की नीरवता की परवाह किए बगैर जीवन जीने की उत्कट अभिलाषा रखते हैं। हम जैसे गरीब के लिए संसार की सुन्दरता कहाँ है? बार-2 कालबेल बजायी पर कोई जवाब नहीं। संभवतः डाक्टर दम्पत्ति गहरी नींद में सुनहरे सपने बुन रहे होंगे या रति क्रीड़ा के अथाह सागर में गोते लगा रहे होंगे। इस बार फिर कालबेल बजायी

जब कोई उत्तर नहीं मिला तो मन विक्षोभ से भर गया लगा बंद दरवाजे को जोर से धक्का मारना ही होगा और हर हालत में डॉ0 को ले चलना पड़ेगा। बहुत देर बाद डॉ. की धर्मपत्नी दोनों हाथों से आंख मलती आकाश के तारों जैसे चमकती बिजली की रोशनी में भी हाथ में टार्च लिए बाहर निकली मेरे चेहरे पर जलाकर देखी शायद सुहानी नींद से उठी होने के कारण हम दोनों पर अतिशय नाराज दिख रही थी शायद दीपेन और मेरे सम्बन्ध पर शक की सूई भी घूम गयी होगी इतनी काली तूफानी रात में आदमी औरत यानी लड़के और लड़की का साथ आना उन्हें ठीक नहीं लगा बड़े ही रूखे स्वर में पूछी इतनी रात तेज तूफान में आप लोग यहां किससे मिलने आये हैं। हम दोनों दीन भाव से डॉ. के बारे में पूछा तो वह तुरन्त बोली इतनी रात में तूफ़ानी दौर में डॉ. कहीं नहीं जायेंगे आप लोग जाइए वे नहीं जा सकते उनकी दृढ़ता से हमें बड़ा आश्चर्य लगा। हम इतनी तूफानी झंझावातों को झेलकर अपनी जिन्दगी की परवाह न करके एक फूल जैसे निष्पाप जीवन के प्राणों की भिक्षा मांगने के लिए उनके द्वार पर खड़े हैं और वह कुछ जानने समझने का औपचारिकता भी नहीं निभा रही हैं उनकी बुद्धि का अन्दाजा लग गया? मैं तत्काल हाथ जोड़ते हुए विनम्र भाव से बोली मैडम हम लोग बड़ी मुसीबत में फंस गए हैं। एक मासूम जिन्दगी की भीख मांगने आपके घर आये हैं, हमारी प्राणों से प्यारी बहन पद्मा को जीवन दान दीजिए। इस दर्द भरी बात को सुनकर शायद डॉ. की पत्नी का मन पिघला और वह मुझे थोड़ा इंतजार करने को कहते हुए घर के अन्दर चली गयी। इधर अभी तूफान रूकने का नाम नहीं ले रहा था पेड़-पौधों का नृत्य मानों अप्सराओं को रिझाने का काम कर रहे थे। मेघ अपनी अतिशय वृष्टि से धरा को तृप्त करने का मन बना लिया था, देव सुरा और सुन्दरियों के क्रीड़ा में लिप्त हो चुके थे। काश कहीं प्रलय की संभावना तो नहीं बन रही है? इसी बीच डॉ. साहब हाथ में खैनी मलते हुए हम लोगों के सामने खड़े थे और मेरे आने का कारण जानने लगे। तब दीपेन ने कहा डॉ. साहब जल्दी चलिए घटना की विस्तृत जानकारी बाद में ले लिजिएगा मेरी एकमात्र बहन है वह मृत्यु और जीवन से संघर्ष कर रही है। अगर देर होगी तो शायद उसके प्राण पखेरू उड़ न जाय। दीपेन की बात सुनकर डॉ. साहब हमारे साथ चलने को राजी हो गए। परन्तु वह मुंह के अन्दर ही अन्दर बड़बड़ा रहे थे

इतनी रात को मेरी सुन्दर नींद भंग कर तुम दोनों ने गड़बड़ कर दिया। दीपेन आगे डॉ. बीच में और मैं पीछे-2 चलती रही हम सबका एक ही मकसद है, खोती हुयी जिन्दगी को बचाना और वह जिन्दगी जो हर वक्त किसी को खुशी देने के लिए तत्पर रहती है खुशी देना और गम पीना जिसका स्वभाव है। ईश्वर ने उसे इस संसार में शायद कुछ खास उद्देश्य से भेजा होगा बड़ी विचित्रताएं थी उस भोली लड़की के मन में बार-2 उसके कान्तिपूर्ण चेहरे को सोचकर काँप जाता था ....

मैं डॉ. साहब को पद्मा के साथ घटी घटना के बारे में विस्तृत रूप से बताने लगी डॉ. साहब दीपेन अपने घर का एकमात्र लड़का है, उसकी एक ही बहन पद्मा है और उसकी शादी की पूरी तैयारी दीपेन को ही करनी है, उसकी शादी तय हो चुकी है। उसकी तैयारी में दीपेन बहुत परेशानी में फँस गया है क्योंकि शादी के लिए खर्चे के नाम पर उसके पास एक कौड़ी नहीं है। अभी वह बेरोजगार है और अब शादी के लिए बहुत कम दिन रह गए हैं। बीच में एक सप्ताह और बाकी है। इसलिए उसने अपनी जमीन में से दो बीघे जमीन बेच दी है, जिसमें लहलहाती फसल लगी हुयी थी इसका उसे बहुत दुःख है। खैर इसी पैसों से वह शादी की तैयारी में जुट गया है। डॉ. साहब दीपेन बहुत दुःखी है। अगर पद्मा को कुछ हो गया तो उसकी वृद्धा माँ अकेले ही रह जायेगी वैसे भी माँ तो अभी से अश्रुधारा प्रवाहित कर रही है कि पद्मा के विदाई के बाद मैं कैसे रहूँगी। क्योंकि माँ का हृदय अपनी संतान के लिए हमेशा सुकोमल ही रहता है। वैसे भी जिसकी दो ही संतान हो एक लड़का और एक लड़की उसको तो यह चिन्ता हर वक्त सताती रहती है। इसी तरह योजनाबद्ध तरीके से शादी की तैयारी चल रही थी कि कल अचानक इन कल्पनाओं को ग्रहण लग गया क्योंकि सोचने से ही सारे कार्य समय पर नहीं हो जाते है। जब कर्म और भाग्य एकमत होकर अंजाम दे तभी कुछ संभव है। लगता है पद्मा ससुर के घर जाने के बदले स्वर्ग जाने के लिए तैयार होकर निकली थी जैसे हिरण का अपने शरीर का मांस ही दुश्मन होता है वैसे ही पद्मा का रूप, गुण "अभिज्ञान शाकुन्तलम्" की शकुन्तला या "आषाढ़ का एक दिन" की मल्लिका से कम नहीं था। डॉ. साहब मैं बार-बार घटनाक्रम को बताना चाहकर भी घटनाक्रम तक आने पर हृदय-मन-बुद्धि साथ नहीं दे पा रहा है। परन्तु बात

कुछ ऐसी है कि मुझे आप को बताना ही पड़ेगा हाँ तो घटना यह है कि पद्मा अपनी शादी का निमंत्रण देने के लिए दीपेन के साथ एक रिश्तेदार के घर पैदल ही जा रही थी और रिश्तेदार के घर पहुँचने से पहले ही बीच रास्ते में कुछ पुलिस के जवानों ने उसे घेर लिया काफी तकझक के बाद दीपेन को बहुत मारा-पीटा तथा एक दरोगा ने पद्मा को अलग हटाकर उसी स्थान पर पद्मा के साथ बलात्कार किया और चलते बने इस समय उसकी स्थिति बहुत नाजुक है, हमारे आने तक उसके शरीर से खून की धार बह रही थी अरे डॉ. साहब अब घर आ ही गया देखिए बात करते-करते हम लोग कब पहुँच गए पता ही नहीं चला हम तीनों घर के अन्दर प्रवेश किए मां चुपचाप रो रही है। दीपेन को देखते ही दहाड़े मारने लगी और पद्मा खून में सनी हुयी चेतना शून्य हालत में पड़ी थी डॉ. ने पद्मा के शरीर पर हाथ रखते ही उसे मृत घोषित कर दिया और माँ जो दहाड़े मार रही थी वह बेहोश होकर गिर पड़ी तुरन्त डॉ. ने पद्मा को छोड़कर माँ का इलाज किया कुछ देर में माँ को होश आया पद्मा की इस मृत्यु को माँ सह न सकी और एक बार आंख खोलकर देखी फिर गिर पड़ी और सदा के लिए धरती की गोद में सो गयी। जन्म लिया है तो मरना ही होगा अपितु इस मौत की तो कल्पना नहीं की जा सकती है। सौन्दर्य मौत का कारण हो, संतान का मोह मौत का कारण हो क्या यह सत्य, हृदय स्वीकार कर सकता है? कभी नहीं.... कभी नहीं।

मैं और दीपेन लाचारी और बेबशी को आत्मसात करते हुए न्याय की गुहार लगाने के लिए अदालत के दरवाजे पर दस्तक दे रहे थे.............

□□□

नव वर्ष पर स्नेह भार

प्रिय सृष्टि,

प्यार,

आशा करता हूँ तुम सकुशल होगी। मैं भी ठीक हूँ लेकिन पूरी तरह से ठीक नहीं कह सकता क्योंकि तुम मुझे सबसे अधिक बेचैन कर दे रही हो। पता नहीं क्यों अब तुम्हारे बिना एकपल भी नही रह पा रहा हूँ। आज शाम को 6:30 बजे आफिस से लौटा। आने के बाद न्यूजपेपर पढ़ने बैठ गया। उसी समय बिजली चली गयी, पुनः बिजली आने पर चित्रहार देखते हुए यह पत्र लिख रहा हूँ। आजकल ऑफिस में बहुत काम करना पड़ रहा है और काम करते-करते थक जा रहा हूँ। असल में थक तो मैं मन से भी गया हूँ। क्योंकि मन जो केवल मेरा था, तुमने पूरी तरह से उसे चुरा लिया है। तुम किसी के बात को लेकर चिंतित मत होना। धैर्य रखो, मेरे जैसा धैर्य रखना सीखो। समस्या कुछ भी नहीं फिर भी बहुत समस्याएं हैं मेरे साथ। लेकिन मुझे स्वयं पर विश्वास है कि इन समस्यायों पर विजय पाने के लिए कोई न कोई रास्ता निकल ही आयेगा। सबसे पहले तुम अपने मन की सारी आशंकाओं को निकाल दो। मैं जानता हूँ अच्छी तरह जानता हूँ कि बहुत से लोगों के मन में यह प्रश्न उठा होगा कि मैंने तुम्हें ही क्यों चाहा? है न? देखो, एकबात तुम्हें स्पष्ट रूप से बता दूँ कि पहले मैं आदमी हूँ बाद में और कुछ! मेरे पास और कुछ तो नहीं है लेकिन आदमी के मन को समझने की शक्ति अवश्य है। तुममें वह अफुरंत सौन्दर्य है जो मेरे जैसे व्यक्ति की चेतना और मन की कोमल भावनाओं को सही रूप दे सकता है। अपने रंग को लेकर तुम्हारे मन में इतना कष्ट क्यों है? तुम्हारे पतले होंठ, आँख, नाक और चेहरे पर रहने वाली हंसी पर लाखों सफेद और पीले रंगों वाली लड़कियां पानी-पानी हो जायेंगी, तुम नहीं जानती कि गोरे रंग का आकर्षण उन पुरुषों में होता है जो स्वयं काले होते

हैं। इन सावलें पुरुषों में गोरी औरतों के प्रति बहुत प्रबल आकर्षण होता है वे कोमल भावना और हंस मुखी चेहरा नहीं देखते, देखते हैं रंग लेकिन सच तो यह है कि गोरे पुरुषों को गोरी लड़कियों के प्रति कोई आकर्षण नहीं होता। इस बात को मैं जानता हूँ और अच्छी तरह जानता हूँ। हर आदमी अपने से विपरीत रंग का आदमी खोजता है इस बात को जान लो और तुम्हारे मन में गोरे रंग का इतना ही आकर्षण है तो मैं तो हूँ ही। मैं तुमसे अलग कैसे हूँ? चिन्ता न करो हम दोनों से जो तीसरा होगा या होगी वह मेरे जैसा गौरवर्णीय, सुदर्शन होगा। जो तुम्हारे बाल, तुम्हारे होंठ, तुम्हारी नासिका और तुम्हारी हंसी लिए आयेगा। यह ख्याल मुझे बहुत आनन्दित करता है, तुम्हारे सामने व्यक्त करने में मुझे रंच मात्र का संकोच नहीं, यह जानते हुए भी कि तुम किसी कीमत पर इस खुशी के लिए तैयार नहीं हो! पता नहीं तुम किस मान्यताओं के घेरे में रहकर अपने बनाए विचारों में खोयी हुयी हो। तुम्हें घनघोर बादल रूढ़िवादी सोच से घेरे हुए है परन्तु मेरे मन में चाँद का एक भाग उसके ऊपर से तैर जाता है और फिर तुम्हारे यादों में डूब जाता हूँ। लगता है? अपने स्नेह का किराया जीवन देकर ही चुकाना पड़ेगा और मन में आज के ढलते दिन के बाद नये आगाज के साथ नया दिन, नया सबेरा, नया वर्ष शुरू हो जाएगा, इस नये वर्ष का

बधाई कार्ड और पत्र भेज रहा हूँ। ....

प्रिय सृष्टि सुखद प्यार?

और वर्षों की तरह यह वर्ष भी समाप्त हो गया, चन्द दिन बाकी हैं इसके भोर होने में। फिर एक वर्ष शुरू होगा तारीखें बदलेंगी, पुराने कैलेण्डरों को उतार दिया जाएगा दीवारों से या जिन्हें नहीं उतारा जाएगा उन पर धूल की मोटी परत जमा हो जाएगी। जब एक नया वर्ष आता है तो मैं महसूस करता हूँ विगत वर्ष यूं ही गुजार दिए मैंने। समय ठहरता नहीं, घड़ी के काँटे थमते नहीं, यह निरन्तर गतिशील रहते हैं। जप्त तो हो जाता है केवल आदमी, एक जगह ठहर जाता है, ऊपर से नीचे की ओर लुढ़कता है, ढलान पर चलता रहता है। शिखर की ऊँचाई और सागर की तलहटी की गहराई में कितना अन्तर है, पर ये दोनो चरम बिन्दु पर हैं चढ़ाव और उतार के........................ सोचता हूँ कि इस वर्ष मैंने क्या पाया, क्या खोया? पायी बीमार बैंक की

नौकरी और खोया अपना सबकुछ..........! इस पाने और खोने के हिसाब-किताब में खोना इतना भारी पड़ा कि पाने का स्वाद फीका हो गया। किस-किस जद्दोजहद में जिया ख्याल नहीं कर पा रहा हूँ, इतने सारे झंझावात हैं कि ....! लेकिन जो लोग समय को दोष देते हैं वो सच्चाई से मुँह छिपाते हैं। समय जो बीत गया, समय जो आयेगा-दिनों, सप्ताहों, माहों, वर्षों या युगों, शताब्दियों के शक्ल में! वह तो एक ही तरह का होता है, यह तो आदमी है जो अपनी मान्यताओं को समय पर थोप कर खुद से छुट्टी पा लेना चाहता है। लोग कहते हैं कि समय बड़ा खराब हो गया या समय बड़ा अच्छा था, समय का अच्छा होना या खराब होना इस सभ्यता पर पड़ने वाली छाया मात्र भर है, या उसे यों कहा जाए कि इस सभ्यता का अवक्षेप उस पर काई के परतों की तरह जमा होता रहता है। किसी खास समय पर दोष थोपना मनुष्य की कमजोरी छिपाने का जरिया मात्र है, क्या करें समय ही अनुकूल नहीं था, क्या करें समस्यायों ने कुछ सोचने का मौका ही नहीं दिया, क्या करें समय ने साथ नहीं दिया ....! यदि ऐसा नहीं होता तो मैं समझता मनुष्य शायद मनुष्य होने की सीमा का अतिक्रमण कर चुका होता पर ऐसा सम्भव नहीं होता मनुष्य के अन्दर का पशु कभी मरता नहीं, कहीं जाता नहीं समय आने पर वह जागृत होता ही है, एक क्षण के लिए ही सही पर इसके साथ ही मनुष्य को अतिरिक्त सुविधा यह मिली है कि वह अपने मन से भाग नहीं पाता..!........!...........!............और मन में उपजे विचारों का प्रतिबिम्ब उसके दर्पण में साफ झलकता है ....इस प्रतिबिम्ब को दरकिनार करना भी उसके लिए कत्तई सम्भव नहीं? बावजूद सबके एक वर्ष बीत रहा है। नया जो भी हो, चाहे वर्ष, चाहे स्थिति, चाहे एहसास, चाहे मान्यता, चाहे गतिशीलता, चाहे संम्भावना चाहे ....जो कुछ भी..................मुबारक हो तुम्हें! विगत की सभी त्रासदी आगत की खुशियों में निमज्जित हो जाएं, नई आस्था, नई सोद्देश्यता, नए विचार, नयी मान्यताएं, नयी कार्यशीलता के अंकुर प्रस्फुटित हो, फिर नयी शाखें, नयी कोपलें ....यह आगत नूतन वर्ष मुबारक हो, तुम्हारे लिए मेरी यही कामना है। कोरे कागज पर भावनाओं में पल रही आकृति के स्वरूप में कार्ड के माध्यम से गुलाब का फूल पत्र के साथ भेज रहा हूँ सहेज के रख लेना संम्भव हो तो ....

"ढेर सारी अनुरागमयी शुभकामनाएं इस कार्ड के साथ तुम्हारे लिए क्योंकि तुम सदा चिन्तन में रही हो, एक विशिष्ट अर्थ में और मेरी आकांक्षाएं तुम्हें कहेंगी, मेरे मन में तुम्हारे अनुपस्थिति का चिन्तन अर्थ आज वाले विशिष्ट दिन को ही नहीं आज के विगत आज के शुभ कामना वाले दिन और आगत के बीच वाले दिनों के बीच भी" और? "मेरे ये गुलाब? तुम्हारे उन विचारों की अनुकृति है

जो! तुम्हारे साथ ही मह मह -महकतें हैं

तुम्हारी याद आती है क्योंकि तुम मेरे लिए इतनी विशिष्ट हो"।

यह दिन मुझे कुछ याद दिला गया और विगत की बातें अचानक मन में कौंध गयी। सहमति - असहमति अपनी जगह हैं पर जो बात वस्तुपरक हो या यथार्थवादी हो तो वह व्याख्यात्मक हो ही जाती है। उसे न मानना और संदिग्ध विश्वासों या यों कहो कि अंधविश्वासों की बातों को आँख मूंदकर स्वीकार कर लेना मुझे नहीं भाता। सबके बाद व्यक्ति की खोपड़ी में दिमाग नाम की कोई चीज होती है। यह दिमाग ही है जो हर अच्छी बुरी समसामयिक घटनाओं, अवसरों, उत्सवों के विश्लेषण का उत्तरदायित्व निभाता है। मुझे इस बात पर आश्चर्य होता है कि तथा कथित शिक्षित लोग सबसे ज्यादा अंधविश्वासी क्यों होते हैं? क्या उनकी शिक्षा में ही कोई कमी रह गयी होती हैं अरे... शायद हां, क्योंकि आज जो लोग कुशिक्षा के दौर से गुजर रहे हैं वहां सत्यान्वेषण के विचारों को ताक पर रख दिया गया है।

□□□

पूरब - पश्चिम

शाम पौने सात बजे होटल के कमरे में अकेली बैठी थी, चारों ओर घोर अँधेरा घिर आया था। कलकत्ता जैसे शहर में निरा अकेले बन्द कमरे में बैठकर विगत की यादों में डूब गयी दिन और तारीखें याद आ गयी और विगत का यात्रा वृतान्त स्मृति पटल पर छा गया, मानो ऐसा लगा जैसे रात के अंधेरे में रोशनी आ गयी। जीवन के कड़वे-मीठे अनुभवों का रसपान करते हुए जिन्दगी किसी तरह एक मुकाम पर पहुँचने में एक युग बीत गया। असल में शिक्षा जगत में नौकरी करने के बाद से मुझे बड़ा संतोष मिला था परन्तु भौतिक जीवन से विरक्ति हो गयी थी। शादी-विवाह, घर-परिवार इन ख्यालों को मन में आने ही नहीं दिया। बस एकला चलो....... इसी सिद्धान्त को अपनाकर जीवन बिता लूँगी। इसी कारण रुपये-पैसे की चिन्ता कभी रही ही नहीं, अकेले आदमी के लिए जितना मिलता है पर्याप्त है और परिवार के अन्य सदस्य नौकरी कर ही रहे हैं, खेती-बारी अच्छी है, इसी कारण किसी बात की चिन्ता कभी रही ही नहीं। फिलहाल मन बड़ा व्यवसायी होता है, उसे अपने हानि-लाभ की चिन्ता सबसे ज्यादा सताती है किन्तु मेरे मन में एक वियोग की बाड़ी बन चुकी थी। हृदय रूपी इस सदन से एक प्रेम का निष्ठावान पुजारी विलग हो गया था, जिसके कारण मैं बहुत मर्माहत थी। वेदना से पूरित मानसिक स्थिति से संघर्ष करते-करते थक गयी थी। मन की अवस्था इतनी विगलित हो गयी थी कि मुझे हर जाने- अनजाने व्यक्ति पर बहुत गुस्सा आता था। दरअसल अपने आक्रोश और मन में पल रही घृणा को दूसरों पर उड़ेलना चाहती थी, क्योंकि मेरे लिए दर्द ही दवा बन चुकी थी। दवा से लाभ इतना हुआ कि मन में संकल्प कर लिया था कि किसी भी पुरुष के तरफ कभी भी जीवन पर्यन्त प्रेम परक दृष्टि से नहीं देखूँगी। उसके बाद कभी भी किसी को देखकर किसी भी तरह का आकर्षण नहीं होता था। ऐसे ही समय में एक दिन तुम्हें देखा? राजसी वस्त्र में पौरुषता के ओज से परिपूर्ण वाणी की माधुर्यता का

आगाज लिए हुए इस छवि ने मेरा मन मोह लिया। नहीं! मुझे रोको मत जो कहना है कह लेने दो। बहुत दिनों के बाद लिखने की इच्छा जागृत हुई है। काफी दिनों से कोई कहानी लिख नहीं पायी हूँ। मेरे अंतरंग प्रसंगों को पढ़ोगे तो तुम्हें लगेगा की कोई दिलचस्प कहानी पढ़ रहा हूँ। हाँ! तुम एक सेमिनार में लेक्चर दे रहे थे, अचानक मेरे मन की अवस्था विचित्र सी हो गयी। क्यों? नहीं जानती.......। फिर बार-बार कोशिश करती रही कि तुम्हे देख लूँ परन्तु तुम्हारी एक झलक तक नहीं दिखी। इस बात का अनुभव शायद तुम्हें उस समय नहीं हुआ होगा? तुम भला जानते ही कैसे? इसके बाद अचानक मेरी मनोदशा बदलती चली गयी और मैं अपनी छटपटाहट की साक्षी स्वयं थी। दीर्घकाल तक तुम दिखायी नहीं पड़े। एक-एक बात याद है मुझे? पुनः जब तुम नहीं दिखे तो मैंने यह मान लिया कि सेमिनार में कोई अतिथि वक्ता आया होगा जो अब चला गया। निराश हताश मन में एक और निराशा जन्म ले ली। काश कोई अनजान राही के बारे में कुछ बता पाता या मैं किसी से पथिक का पथ पूछ पाती। मैं इन अनछुए पहलुओं से अनभिज्ञ थी..........। कुछ दिनों बाद अचानक तुम्हें फिर देखा? लगा मेरी सारी सुप्त भावनाएं जागृत हो गयी हो। वह अद्भुत क्षण था! तब से अनवरत तुम्हें देखने के लिए मन बराबर छटपटाता रहता था। तुममें कौन-सा आकर्षण था इसकी व्याख्या तो मैं नहीं कर पाऊँगी क्योंकि कुछ प्रशन अनुत्तरित होते हैं। इनका मात्र अनुभव किया जा सकता है, बताया नहीं जा सकता। आज भी मेरे जीवन में सबसे बड़े आकर्षण के केन्द्र बिन्दु तुम हो। बीच-बीच में मैं सोचा करती थी कि तुमसे ये कहूं न कहूं, तुम्हारे पास जाऊं न जाऊं, तुम्हें देखूं न देखूं क्योंकि देखने के बाद या किसी कारण वश न देखने के बाद मन बिल्कुल उदास हो जाता था। तुम नहीं जानते, छिप-छिप कर मैं कितनी बार रोयी हूँ। लगता था मेरी कोई प्रिय वस्तु खो गयी है। मेरा यथार्थ कल्पना में बदल गया, जाने अनजाने प्रिय पथिक परछाईं की तरह साथ-साथ चलने का संकेत मात्र था। ठीक उसी समय सम-सामयिक परिस्थितियों के प्रभाव वश कुछ खास लोग बड़े अपनत्व भाव से मुझे अपने में सम्पृक्त करने की हजारों कोशिशें की, परन्तु मेरी आँखे तुम्हें ही खोजती रहती थी। फिर भी मैं चुपचाप नियति की धार देख रही थी, मेरा प्रेम झरनें के जल की तरह निरन्तर प्रवाह मान था परन्तु ह्रदय व्यथित था। मेरी

विवशता.....या लिप्तता...? सोचती थी कि यदि मैंने तुमसे कुछ कहा और तुमने ना कर दिया तो मेरा भ्रम टूट जायेगा और मैं स्वयं टूट जाऊँगी बुरी तरह! इसी भय से तुमसे कभी मैंने कोई स्पष्ट बात नहीं की और कोई माध्यम नहीं था जिससे मैं बात कराने की पेशकश करती। ऐसा न ही कोई विश्वास पात्र था न कोई बन सकता था, और किसी भी स्तर पर मेरा साम्य था ही नहीं, लघु वार्तालाप ही कभी-कभी संयोग बन जाता था। उद्वेलन का यह आरोह और अवरोह मैंने अपने अन्दर कितनी बार देखा था, अगर इसी तरह मन की व्यग्रता बनी रही तो मैं पागल हो जाऊँगी। मेरा आकुल विकल मन अव्यवस्थित हो गया। बिल्कुल अजीब स्त्री हूँ? असल में मैं बहुत कुछ या ज्यादा कहने में विश्वास नहीं रखती हूँ। इसी कारण मेरे बारे में लोंगो को भ्रम हो जाता है। लेकिन सत्य तो यह है कि प्रत्येक भावना पर मैं बिल्कुल नजदीकी नजर रखती हूँ। इतनी सी बात समझ लो कि मैं एकदम से खुले विचारों की व्यक्ति और अपने सिद्धान्तो की पक्की हूँ। चाहे कोई अपने-आप को जितना बड़ा आदमी बने मुझे आक्रांत नहीं कर सकता। मेरे पास बस मेरा अपना स्वाभिमान है। इसी स्वाभिमान के कारण मैं किसी के सामने घुटने नहीं टेक पाती। संस्कृति की दुहाई भर नहीं देती बल्कि नैतिकता में रच बस कर जीना चाहती हूँ। बने बनाए रास्ते पर न चलकर स्वयं पगडंडी बनाकर चलने की अभ्यस्त हूँ। सम विषम परिस्थियों में मजे मजाये एक रस दृढ़ता के साथ जीवन वृत्त को आकार दिया है। वर्तमान इसका साक्षी है। गुलाब की पंखुड़ियों की तरह नहीं उसकी कांटों की तरह चकरघिन्नी सदृश्य शैलवन कानन में जीजिविषा का उत्सव मनाया। तुम नहीं जानते? मेरे अंतरंग क्षण एवं अतिशय घनिष्ट लोग मेरे ख्वाबों एवं ख्यालों से रोज ही रूबरू होते थे। जिसमें यथार्थ, कल्पना, दर्शन, साहित्य पर विशद विवेचना जरूरी सी जान पड़ती थी। लोगों ने यहाँ तक कहा कि केवल किताबी दुनियाँ से जिन्दगी नहीं जी जा सकती, चाँद और तारों की बात कर लेने भर से पेट नहीं भरता क्षुधा की तृप्ति के लिए, जीवन के विविध आयामों तक पहुँचने के लिए कई पायदानों से गुजरना पड़ता है। मेरे अन्दर अनन्त सम्भावनाएं थी, अच्छा लिख लेती थी, अच्छा पढ़ लेती थी, अच्छा गा लेती थी, अच्छा खेल लेती थी, अच्छा फोटोग्राफी कर लेती थी, अच्छा खाना बना लेती थी, अच्छा परिधान धारण करती थी, अच्छा बोल लेती थी, अच्छा

अभिनय कर लेती थी और भाषा विज्ञान पर अच्छी पकड़ थी। लेकिन पिछले चौदह, पन्द्रह सालों से बिल्कुल लगता था कि मैं जड़ हो गयी हूँ। मैं अपनी कमजोरी भी तुम्हें बता दूँ यदि अच्छा खाना नहीं मिला तो मन दिन भर खिन्न रहता था। यदि कपड़ा ठीक से साफ न हो तो पहनने का मन ही नहीं करता था। यदि लिखने बैठी और भाषा एवं लिखावट ठीक नहीं हुयी तो कागज ही फाड़ती रहती थी। साधारणतया आज कल गुस्सा नहीं आता लेकिन एक बार गुस्सा आ जाने के बाद दूसरों का तो कुछ नहीं बिगड़ता स्वयं ही नर्वस हो जाती हूँ। मैं कभी भी किसी से ईर्ष्या नहीं करती इसी कारण जो लोग इर्ष्यालु होते हैं मुझे पसन्द नहीं। बुराई करना और बुराई सुनना मेरी फितरत नहीं। यह बात हमेशा ध्यान में रखना कि कोई आदमी बल और धन से बड़ा नहीं होता। बड़ा होता है अपने कर्मों से, अपने विद्या बुद्धि से लेकिन उसकी विद्या बुद्धि सकारात्मक होनी चाहिए। बुद्धि एक चोर में भी होती है लेकिन वह अपनी बुद्धि का प्रयोग नकारात्मक कार्यों में करता है। कुछ लोगों कि यह आदत होती हैं कि वे अपने को बड़ा दिखाने या अपनी शिष्टता साबित करने के लिए दूसरों को छोटा दिखाकर स्वयं बड़ा बन जाते हैं। आज के युग में ९९ प्रतिशत मामलों में ऐसा ही होता है, लेकिन दूसरों को नीचा दिखाकर न तो कोई बड़ा हुआ है न तो कोई बड़ा होगा भविष्य में। ऐसी बातों से मुझे सख़्त नफ़रत है। आज के युग में मानव जीवन इतना जटिल हो गया है कि वह जीवन के मूल अर्थ को ही भूल गया है। Progress यानी उन्नति शब्द का अर्थ बिल्कुल बदल गया है, इसी प्रकार आधुनिकता यानी Modernity का अर्थ भी अनर्थ बन कर रह गया है। Progress या Modernity आदमी के मन की एक अवस्था है और जो हमारे सिद्धान्त हैं, वे अच्छे हैं या बुरे उनकी जांच परख करने के बाद बिना किसी पूर्वाग्रह के जो निर्णय लिया जाता है, मैं तो उसी को Modernity मानती हूँ। जिस तरह व्यक्ति का सुख वाह्य (external) नहीं होता उसी प्रकार आधुनिकता भी external नहीं होती। कोई नए ढ़ंग के कपड़े पहनता है, नए ढ़ंग के बाल रखता है तो उसे इतना ही कहा जा सकता है कि वह आधुनिक फैशन के कपड़े पहन रखा है। नये तरीके से अपना बाल बना रखा है इससे अधिक कुछ नहीं। वह मन से आधुनिक है या नहीं यह कहना मुश्किल होता है यदि शराब पीने और जींस पहननें से ही लोग आधुनिक बन

जाते तो क्या कारण था कि इस देश से जातिवाद नहीं मिट पाया, लगातार साम्प्रदायिक दंगे हो रहे हैं, लोग चोरियां कर रहे हैं, घूस ले रहे हैं, चारों ओर अनाचार फैला हुआ है, रोज सैकड़ों भगवान पैदा हो रहे हैं, ज्योतिष लोगों की दुकानें चल रही हैं, दहेज के लिए औरतों को जलाया जा रहा है, बेटा न पैदा करने पर औरतों को सताया जा रहा है, जिस समाज में बेटी बोझ लेकर पैदा होती है, वह भी क्या कोई समाज है? जहां रुपये के बल पर न्याय को अन्याय और अन्याय को न्याय में बदल दिया जाता है, यह कैसी व्यवस्था (सिस्टम) है? जहां चपरासी कुछ वर्ष में करोड़पति बन जाता है जिस देश के नेता जनता के पैसे मारकर करोड़पति बन जाते हों.....वह देश, वह व्यवस्था, वह समाज एक अंधे युग में चल रहा है। सुख खरीदा नहीं जाता। सुखी व्यक्ति वही होता है जो दुःख को अपने नजदीक आने ही न दे। मैं यह नहीं कहती कि भूखा रहकर कोई सुखी रह सकता है लेकिन किसी को पेट भर भोजन मिले, कपड़ा मिल जाए, रहने के लिए थोड़ी सी जगह मिल जाए और अपने साथ एक ऐसा आदमी मिल जाए जो उसी के विचारों वाला हो तो शायद वही सबसे सुखी इन्सान होता है। अगर कोई देवी देवता नहीं मानता भगवान को कर्मकाण्ड के द्वारा प्रसन्न नहीं करता तो इसका यह मतलब नहीं कि वह बुरा आदमी है। वह भगवान को प्रतीक रूप में मानते हुए कर्म के प्रति सचेत है तो वह बुरा आदमी क्यों? वैसे सगुण एवं निर्गुण भक्ति कि उपादेयता है तो वह है मनुष्य का आत्मबल, उसका आदमी के प्रति निश्छल स्नेह, प्रेम, अनुराग............इसके अतिरिक्त कर्मकाण्ड का कोई खास अर्थ नहीं रह जाता। वैसे मेरे विचार से व्यक्ति भगवान से बड़ा होता है क्योंकि वह कुछ तो कर सकता है? भगवान आदमी के मन की आस्था है, विश्वास है...........राम-कृष्ण, रहीम-रसखान, दादू-रैदास नानकदेव- मुहम्मद साहब-यीशु, ये सारे मानव के पूर्ण मानव होने के प्रतीक है बस। तुम्हें लग रहा होगा कि मैं उल्टी-पुल्टी बातें कर रही हूँ। हाँ? लेकिन सत्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता यही सच है शायद? और मेरे पास सत्य से साक्षात्कार करने की क्षमता है। चलो अच्छा ही हुआ बहुत ज्ञान की बातें हो गई या मैंने ज्ञान देने का भ्रम पाल रखा था। शेष फिर कभी..........पूरब की दिशा पश्चिम की ओर..........सात समुन्दर पार अपनी जमीर की दुहाई देने की बहस शुरू होगी।

□□□

डाकिया–डाक टिकट

अचानक एक छोटी सी घटना याद आ गयी मैं जब बहुत छोटी थी, तो हर ग्रीष्मावकाश में पिता जी कहीं घुमाने ले जाया करते थे, एकबार 1978 में हम लोग कलकत्ता गये क्योंकि वहाँ मेरे चाचा जी का घर था। जाने से दो उद्देश्य पूरा होता था एक तो मेरा घूमना दूसरा परिवार के सभी बच्चों का एक साथ मिलना यूँ सोच लो एक पंथ दो काज। हम सभी भाई-बहन तकरीबन हम उम्र ही थे एक-दो साल नीचे-ऊपर एक महीने की छुट्टी? यह सोचकर मन गद्गद था, चाचा जी का घर बड़ा बाजार में था और मेरे कुछ रिश्तेदार तथा पिताश्री के कुछ जान पहचान के लोग नेहाटी, कांकीनाड़ा, गौरीपुर, चंदननगर बैरकपुर में रहते थे। अक्सरतः हम लोग उनके यहाँ कभी डबल डेकर बस से, कभी ट्राम से घूमने जाते थे। एक दिन हमलोग खेलते-खेलते बेलूर मठ जाने का मन बना लिये और चल पड़े समुद्र के किनारे। वहाँ से बड़ी स्टीमर से बेलूर मठ के लिए रवाना हुए। क्या ही मनोरम दृश्य था। समुद्र की लहरों पर स्टीमर का रेंगना, लहरों का खेलना.... हम तीन लड़कियां और चार-पांच लड़के हम उम्र ही शायद थोड़ा बहुत अन्तर रहा होगा। कलकत्ता जैसे शहर में हमलोगों के साथ कोई गार्जियन नहीं था। उसमें जो सबसे सचेत व्यक्ति था उसे ही हम लोगों ने अगुआ मान लिया और वह भी अपने धर्म का निर्वाह करने लगा, इधर मत जाओ, उधर मत जाओ आदि...आदि... कुछ ही देर में हम लोग बेलूर मठ पहुँच गये, वह दिव्य स्थल आध्यात्मिक ज्ञान की पूँजी मैं कैसे उसका बखान करूँ, अतिशय मनोरम दृश्य था, दुग्ध धवल निर्मल हुगली के मध्य में मैं जब पहुँची मन सिहर सा उठा क्षणभर के लिए हृदय भावों से भर गया परन्तु तत्क्षण तरूण मन ग्रीष्म ऋतु में कान्ति की आभा बिखेरती तन्वंगी गंगा की अविरलता दोनों किनारों के बीच की निश्छलता देख मैं निष्प्रभ निर्निमेष दत्तचित्त बैठी थी। सुषमा, मधु और मैं उस रमणीक स्थल में बने मठों

मंदिरों इमारतों से लेकर एक-एक रज, कण धूल को देखने के लिए लालायित थे। घूमते-घूमते थकान हो गयी तो पोस्ट आफिस के सामने जा बैठी। अब साथ के लोग परेशान होने लगे और खोजने निकल पड़े। विशाल परिसर में साथ छूट जाने के बाद मिलना मुश्किल था। अचानक प्रदीप की नजर पड़ गयी और बोल पड़ा वो देखो पोस्टआफिस के सामने बैठी हैं ये सब महा देवियाँ... तब तक गार्जियन महोदय दौड़ लगाते आये जो अपने को सबसे बड़ा समझते थे बोले यहाँ क्या कर रही हो? उनका सम्बोधन सीधा मेरी ओर था अगर तुम्हें डाक टिकट ही खरीदना था तो मेरे से बोलती? देख रही हो कितनी लम्बी लाईन लगी है? आज विवेकानन्द पर टिकट जारी हुआ है। सुबह से शाम हो जाएगी टिकट पाना मुश्किल हो जाएगा और तुम पागलों की तरह बैठी हो जैसे पोस्टमैन डाकटिकट हाथ में ला के देगा। मैं चुपचाप निर्विकार रूप से वह अधिकारबोध देख रही थी बिना कुछ बोले... पुनः! अचानक बोल पड़ी अरे? मैंने कब कहा कि तुम डाकटिकट खरीदो या खरीदकर मुझे दे दो, तुम अनायास मेरे उपर बरस रहे हो। सभी साथी चुपचाप अपलक मुझे निहार रहे थे मैं अवाक! अचानक वह चला गया। हम सभी उसी की राह देख रहे थे, वो आ जाय तो चलूँ परन्तु सज्जन दूर-दूर तक दिखायी नहीं दे रहे थे... फिर सभी मित्र मुझे ही इस दोष का भागीदार बना बैठे कि तुम्हें इतनी कड़वी बात नहीं बोलनी चाहिए थी। वह कितना संवेदनशील है, उसे कितनी चोट पहुँची होगी, अतिसंवेदनशील जो ठहरा आदि...आदि... तुम नहीं जानती कि आज तक उसनें कभी झूठ नहीं बोला, अभिमान से दूर बड़ा ही स्वाभिमानी है। उसका साहित्यिक मन किसी का दुःख दर्द सहन नहीं करता। तुम्हें पता है? कितना भी जाड़ा पड़े वह गर्म कपड़े नहीं पहनता, केवल एक चादर ओढ़कर जाड़ा काट लेता है। मैंने पूछा क्यों? तो अशोक ने कहा तुम्हें एक कहानी सुनाता हूँ। एक बार की बात है एकदिन कड़कती ठण्ड में हमलोग स्कूल जा रहे थे (वैसे कलकत्ते में जाड़ा कम पड़ता है) हम सभी दोस्त पैदल स्कूल जाते थे रास्ते में झोपड़ पट्टियाँ बहुत होती थी। एक दिन वह सुन्दर सा स्वटेर पहना था क्योंकि मंत्री का बेटा जो ठहरा! एक दिन रास्ते में एक बुड्ढा ठंड से कांप रहा था उसने अपना स्वेटर निकालकर दे दिया और मुझसे बोला अशोक आज के बाद मैं गरम कपड़े नहीं पहनूँगा। तब से आज तक वह गरम कपड़े

नहीं पहनता और तब उसकी उम्र क्या थी पता है? सात वर्ष सोच लो! कोई छोटा बच्चा इतना दयावान हो सकता है, जिस उम्र में बच्चे खेलने खाने में लीन रहते हैं उस उम्र में उसने एक मिशाल कायम की। तब से आज तक मैं इसकी सारी बातें आँख मूंदकर मान लेता हूँ। आज भी अपने पाकेट मनी से गरीब बच्चों को पढ़ाता है। खुद अपनी किताबें अपने से जरूरतमन्द जूनियर साथियों को देता है और खास बात बताऊँ इस शर्त के साथ कि तुम लोग मेरा नाम नहीं बताओगे। मैंने कहा अच्छा! अभी- मेरी जरूरत उसे कैसे पता चल गयी कि मुझे डाक टिकट खरीदना है, इतना भाषण देकर लापता हो गया और आप सभी लोग मुझे कटघरे में खड़ा कर इतनी सारी बातों से अवगत कराये हो तो आप यह भी चाहते होंगे कि मैं अपना दोष स्वीकार कर लूँ? यहीं न! तब तक देखा लम्बे डग भरता हुआ सौन्दर्य और मेधा का धनी, संवेदनशीलता का प्रतीक मेधावी छात्र आ गया और मेरे हाथों में डाक टिकट की कई प्रतियाँ रखते हुए कहा यह लो जगजीवन बाबू, विवेकानन्द, नेहरू, गाँधी कई नामचीन हस्तियों पर जारी डाक टिकट है, इन्हें सम्भाल कर रखना और इसके पहले का भी संग्रह है घर चल कर दे दूँगा, आगे का संग्रह तुम खुद खरीद लेना अगर संभव हुआ तो नहीं तो मैं कर ही रहा हूँ तुम्हारे काम आ जायेगा। एक ही सांस में इतनी सारी बातें सुना दी। मैं चुपचाप सुनती रही, सारे साथी मुझे घूर-घूर कर देखते रहे मुझे कुछ खास समझ में नहीं आया। पुनः हम लोग बेलूर मठ घूमने लगे। जहाँ विवेकानन्द पढ़ते और सोते थे उसी जगह जाकर मैं रूक गयी और सभी लोग आगे बढ़ गये। मेरा मन विवेकानन्द के विगत और आगत के बारे में जानने को उत्सुक था, तब तक अजय आकर मेरे कंधे पर हाथ रखकर पूछा तुम अकेले क्या सोच रही हो? बीच-बीच में रुक जाती हो इस भीड़ में अगर गुम हो गयी तो मैं क्या जबाब दूँगा तुम्हारे पिता श्री को। यह छोटा-मोटा कस्बा नहीं है जो सभी लोग एक दूसरे को जानते हैं, यह महानगर है यहाँ किसी को किसी से मतलब नहीं होता। एक दूसरे के बारे में कोई जानना-समझना नहीं चाहता, सभी अपने में मशगूल रहते हैं और एक तुम हो कि?...कभी अकेले कभी अपने सहेलियों के साथ लुकाछिपी खेलने लगती हो मेरी तो जान ही सुख गयी थी। मैंने पूछा क्यों ऐसी भी क्या बात है आप क्यों चिंतित हैं...सुनकर अजय बोल पड़े कि क्या तुम चिन्ता मुक्त कर

दोगी? चलो फिर कभी...अब हम लोग घर के लिए रवाना हो गये पहुँचने में काफी देर हो गयी थी। सात बज चुके थे। आज के बाद शायद ही घूमने को मिले ऐसा मैं सोच रही थी, परन्तु ऐसा कुछ हुआ नहीं, शायद महानगर के लिए यह समय अधिक नहीं था। खैर कल सुबह हम लोग रवीन्द्रालय, विक्टोरिया पैलेस देखने को निकले। अगले दिन शान्ति निकेतन देखने का प्रोग्राम बना लिया अजय के निर्देशन में। उस दिन मैं नहीं गयी और सभी लोग गये। वापसी के दौरान अजय, मधु और अशोक मुझे देखने मेरे घर आये। मैं बैठी शरतचन्द्र का उपन्यास गृहदाह पढ़ रही थी। मधु ने कहा अच्छा तो आप बिल्कुल ठीक हैं, गृहदाह पढ़ने के लिए नहीं आयी महरानी! तो अब कल क्या इरादा है साथ चलने का या नहीं...मैं कुछ कहती तब तक मधु ने हंसकर कहा आज अजय दा का मुखमालिन्य देखने लायक था... पुनः तीनों निकलने लगे उसी समय अजय मुझे एक लिफाफा पकड़ा गये, मैंने सोचा कि आज कोई नया डाक टिकट जारी हुआ होगा, देखने की उत्सुकता थी? लिफाफा उलट-पुलट कर देखा कोई चित्र नहीं, अन्दर देखा एक पत्र था। बिना सम्बोधन..... "सुनो चरित्र में भावना का समावेश हो जाए तो उसे रोमानी शब्द योजना में बाँध देना चाहिए, क्योंकि मैंने एक भावना में भावना का चयन किया है। मेरे लिए यही भावनात्मक सम्बन्ध और सम्बन्धों से बड़ा है। वास्तव में मैं अपनी भावना से प्रेम करता हूँ जो मूल रूप से अति कोमल है, बड़ी ही पवित्र है, न इसका कोई आदि है न अन्त है" यह बात मेरे समझ में नहीं आयी। मैंने पत्र यूँ ही उठाकर रख दिया फिर कभी चर्चा नहीं की। तब तक मुझे वापसी करनी पड़ी क्योंकि छुट्टियां समाप्त हो रही थी। मैं फिर वही चिर परिचित भाव-भूमि पर उतर आयी और दिन समय यूँ ही गुजरने लगे कई वर्षों बाद एक शादी में अजय गांव आया तो मुझसे भी मिलने मेरे घर आया। जाते समय फिर वही लिफाफा, इस बार जो लिखा था वह बिल्कुल स्पष्ट था परन्तु फिर बिना सम्बोधन।... "मैं तुम्हें शब्द जाल में नहीं उलझाना चाहता हूँ लेकिन जो भाव मेरे मन के आर-पार हो रहे हैं, उन्हें कहूँ भी तो कैसे? खुद ही डाक लिखता हूँ, खुद ही डाकिया हूँ, मल्लिका तुम्हारे सामने मैं अपने को कालिदास की भूमिका में पाता हूँ तुमसे एकबार आपसी रिश्तों पर शास्त्रार्थ करना चाहता हूँ करोगी न?... दूसरे दिन मेरे पास आकर बोला कल मैं वापस जा रहा हूँ पता

नहीं कब मिलना हो!" तुम्हारे बिना मैं अपने आपको अपूर्ण पाता हूँ, वैसे आज से ही नहीं सुदीर्घ काल से तुम मेरी अनवरत आकांक्षा रही हो! मैं जोर से हंस पड़ी अजय तुम मुझे कभी भावना, कभी आकांक्षा, कभी मल्लिका का नाम देकर रोमानी प्रसंग की चर्चा करते हो? मैं पूछती हूँ भावना में भावना का चयन क्या होता है? क्या तुम समझा पाओगे... मेरा जीवन संघर्ष पूर्ण रहा है बचपन में ही विडम्बना बस जीवन की दशा-दिशा बदल गयी, अभिनव रंग स्याह काले धब्बे में बदल गया। अजय! आम बोल चाल की भाषा में मैं तुम्हें बता दूँ कि भावनाओं से जीवन की आवश्यकताएं पूरी नहीं होती। यह शब्द उन्हीं के लिए महत्व रखता है जिनका अंश मात्र प्रेम खंडित न हुआ हो। जिनकी आत्मा में आनन्दानुभूति का पुट हो। मैं उन भाग्यशालियों में नहीं हूँ। जन्म लेने से पहले ही भाग्य हमसे विदा ले लिया था शायद। मैं कहता हूँ अब बस भी करो... कम से कम मेरे सामने तो चुप रहो मेरी खुशी के लिए! भाग्यवादी लोग या जो भाग्य को कोसते हैं वह कर्म से विमुख रहकर सब कुछ पाने की लालसा रखते हैं। मैं अपने कर्म से अपना भाग्योदय मानता हूँ जो कुछ भी आज हूँ मैं सिर्फ अपने तईं सिर्फ और सिर्फ अपने तईं... फिलहाल चलता हूँ जाने से पहले तुम्हारे सामने प्रेम याचना करता हूँ स्वीकारोक्ति होगी तो भी नहीं होगी तो भी मेरा तुम्हें अजस्र प्रेम... न उसका आदि है न अन्त है। कल भी था, आज भी है, और सदा रहेगा। अच्छा यह तुम्हारे लिए पुराना डाक टिकट का संग्रह लाया हूँ रख लो.... क्रमवार :-

(1) प्रथम दिवस, भारतीय सुदूर सम्वेदन उपग्रह-1 ए 650

(2) प्रथम दिवस "सह-अस्तित्व का एक मात्र विकल्प सामूहिक विनाश है" विश्व शान्ति - 650 जवाहर लाल नेहरू

(3) प्रथम दिवस ब्रीज ओ0 पी0 राघवा - 1921-1990-30

(4) प्रथम दिवस स्तनपायी जल जीव - 650, 400

(5) प्रथम दिवस टाटा स्मारक केन्द्र - 200

(6) प्रथम दिवस ड्रग्ज से सावधान रहिए - 500

(7) प्रथम दिवस बाबू जगजीवन राम - 100

आज विदा लेता है? तुम्हारा डाकिया और डाक टिकट।

□□□

चाँद और सूरज

मैंने भाभी से कहा भाभी तुम मुझे कितना ढाढ़स बँधाओगी मैंने जीवन की उस सच्चाइयों को अपने आंख से देखा है। जिसे कभी झूठलाया नहीं जा सकता उस पर कोई तर्क-विर्तक करना एक बेमानी होगी क्या तुम यह मानने से इंकार करोगी कि चांद में शीतलता नहीं होती या सूर्य में तपिश नहीं होती या पृथ्वी गोल नही है या समुद्र में गहराई नहीं होती अथवा आसमान की ऊँचाई नहीं होती। दिन में सूर्य नहीं निकलता है और रात में चाँद नहीं दिखता है। कहो एक बार कहो तुम ऐसा नहीं मानती सिर्फ एक बार? भाभी निर्निमेष मुझे निहार रही थी। मैं आखिर इतनी भावकुता पूर्ण सवाल क्यों करती जा रही हूँ वह तो सिर्फ मुझे समझा रही थी कि दीदी तुम खुश रहा करो तुम्हें कुछ करना है ऊँचाइयों के उन शिखर पर पहुँचना है जहाँ महादेवी वर्मा, महाश्वेता देवी, प्रभा खेतान अमृत्ता प्रीतम और शिवानी पहुँची है। भाभी रोज जिन्दगी के मोड़ पर मेरा यह विश्वास छूटता है और दूसरे मोड़ पर जुड़ जाता है। विश्वास 100 बार छूटता और पुनः 101 बार जुड़ जाता है। मेरे जीवन का रखवाली करने वाला सिर्फ यही एक नम्बर मेरे जीवन भर की गणित की रखवाली करता है। भाभी चुपचाप मेरी ही राम कहानी सुन रही थी। अचानक मैंने अपने दोनों हाथ भाभी के सामने फैलाते हुए कहा देखो यह दंश देख रही हो? मैं सब कुछ भुला सकती हूँ पर इस दाग को कभी मिटा पाऊँगी यह मेरे मरने के बाद मेरे साथ ही जलेंगे। तुम मुझे कितना ढ़ाढ़स बंधाओगी। भाभी न जाने कब किस घड़ी में इस अनिष्ट और अँधकार का साथ हो गया जानती हो? भाभी बहते पानी से बन्द पानी में तैरना बड़ा कठिन होता है। घंटों बातें करते-करते ननद और भाभी को कोई देख न ले कोई कुछ सुन न ले भाभी अपने कमरे में ले गयी और ननद का सिर अपने गोदी में लेकर सहलाने दुलारने लगी ..... वह सो गयी पुनः घबरा कर जागी और दोनों हाथों से भाभी को पकड़ती हुयी बोली एक दिन मैं जीवन का श्रृंगार किये बैठी थी। जुड़े में बेला-चमेली की मालाएं

लटकी हुयी थी। पैरों में झनझनाते नूपुर बाँहों में कृष्ण चूड़ा हाथों में बाघम्बरी मुँह वाला सोने का कँगन गले में अद्भुत मोहक स्वर्ण जड़ित हार मांगों में चमकता सिन्दूर, नासिका में रत्न जड़ित नथ और कर्ण में झूमके लटक रहे थे, गह-गह लाल रंग की बनारसी साड़ी में सजीधजी मैं प्रिय का इंतजार कर रही थी.... उसी वक्त घर का मुख्य द्वार धीरे-धीरे खुला और फिर गम्भीर गौर वर्णी सुदर्शन वर मेरे सामने आकर बोला हे अबोध बाला तुम्हें शायद यह पता नहीं है जिसके लिए तुम सोलह श्रृंगार किये बैठी हो। वह तुम्हारे लिए कब का मर चुका है। मैं तुम्हे अस्वीकार करता हूँ। मेरे अक्षय भंडार की अधिकारिणी हो परन्तु मेरे पर तुम्हारा क्षणांश अधिकार नहीं है या यूँ कह लो मैं तुम्हें इससे वंचित करता हूँ और सुनो जगतप्रतिष्ठा के खातिर तुम्हें यह नवजीवन जीना होगा .... मैं अवाक् उसका सत्य वचन सुनती रही। कर भी क्या सकती थी .... मेरी सारी कल्पनाएं हजारों स्वप्नों की कड़िया एक-एक कर टूटती चली गयी और मैं इन सम्बन्धों की पराकाष्ठा एक निशान चांद और सूरज में ढूंढ़ती रही तथा सीधे-सीधे तादाम्य बनाकर जीवन जीने की ललक लिए निशा का अन्तिम प्रहर और ऊषा काल का आगमन उसी समय मेरे शरीर में एक कम्पन हुआ। आँख भर आई, आँखों से नींद मानो गायब हो चुकी थी। प्यास के मारे होंठ फटे जा रहे थे ..... सुहाग की सेज, फूलों की सुगन्ध और आत्मा की बेहोशी.... मैं इन्हीं विचारों में लीन थी तब तक मंदिर में घंटे-घड़ियालों की आवाज सुनाई दी। शायद पुजारी दीपों और फूलों से भरी थाली लेकर भगवान की आरती उतार रहे होंगे; उसी क्षण मुझे ख्याल आया प्रदूषित वातावरण से सीचें हुए फूल-फल की गन्ध से देवता भी पत्थर बन गये हैं। क्योंकि पहले तो ये देवता ऐसे नहीं थे जो सच और झूठ का निर्णय न करें, भक्ति और श्रद्धा की लाज न रखें। आज इन्हें न कुछ दिखाई देता है न ही कुछ सुनाई देता है। ये सचमुच पत्थर हो गये हैं .... उसी समय आज का अखबार आज की ताजा खबर के साथ ..... गली में आवाज लगाते एक लड़का अखबार बेच रहा था। उसने मेरे दहलीज पर भी अखबार फेंक दिया। मैंने झट अखबार उठाया ज्यों ही प्रथम पृष्ठ खोला। एक खबर आँखें फाड़े संसार की तरफ देख रही थी। तीसरा महायुद्ध .... मेरे मन में एक टीस उठी .... कृत्रिम खाद से पैदा अन्न और डिब्बा बन्द पानी खाने-पीने से लोगों की नसों में पवित्र लहू पैदा करने

के बजाय विकार ही पैदा होगा और उन्हें कृत्रिम जीवन जीने के लिए बाध्य होना पड़ेगा और उससे जो जन्म लेगा उसकी मुस्कुराहट उसके होठों से कोसों दूर होगी या उसकी असली हंसी मर जायेगी। यह सोचकर मुझे चक्कर आने लगा। धूल से सनी हुयी राह पर मैं सांस लेने के लिए सचेत होकर खड़ी हो गयी मेरी आंखे सजल हो गयी थी। मेरा विश्वास टूटता नजर आ रहा था .... मुझे अचानक लगा जैसे कमरे का दरवाजा खुला हो या ऐसे खुला हो जैसे कोई बहुत दूर से चलकर आया है। मैंने सुना "मैं आ गया हूँ" आने वाले की जुबान के एहसास से शरीर में एक कम्पन मात्र हुआ। मुझे पता था तुम आओगे यह मेरे विश्वास ने मुझे जवाब दिया। मेरी मिटती हुयी जिन्दगी में एक पल का ठहराव आ गया और वही एक पल मेरी जिन्दगी को मौत से खेलते हुए जीत लिया। एक पल के फर्क से मौत हार गयी और जिन्दगी जीत गई जैसे एक अंकगणित के नम्बर से अविश्वास हार गया और विश्वास जीत गया मैंने आंखों में लालसा भर कर दोनों हाथ जोड़ सूर्य को प्रणाम किया। यही कहा- साहस, शक्ति, तेज, प्रकाश-पुंज से पूरित अपने व्यक्तित्व जैसा व्यक्तित्व दीजिए देव ताकि मैं स्वर्णिम आभायुक्त जीवन जी सकूँ। कुछ समय बीता ही था कि मन वियोगी सा लगने लगा। यानी वियोग जब अपने अन्तिम बिन्दु पर पहुँचता है तो वही क्षण मोह की पराकाष्ठा होती है। हाँ कभी-कभी मन द्रवीभूत हो जाता था। शायद यही कारण था मुझे शैशव की याद आ रही थी। भाभी यह सच है कि भारतीय सभ्यता और संस्कृति में पला बढ़ा मानवीय प्रकृति पुरुष अपनी पत्नी का स्वामी होता है वही व्यक्ति अपनी प्रेमिका का दास होता है। क्योंकि शैशव बिल्कुल वैसे ही है, वह एक अच्छे पति भी है और स्नेहासिक्त प्रेमी भी परन्तु उसकी यही दोहरी मानसिकता उसके व्यक्तित्व का दोष भी है। भाभी बोली! नहीं...नहीं... आप इसे दोष नहीं कह सकती है। दीदी बिना ईश्वर की इच्छा से व्यक्ति कुछ नहीं कर सकता। कभी-कभी व्यग्रता के काँटों में फूल खिलते है। ननद हंस देती है और कहती है यह तुम्हारा तर्क नहीं भाभी यह तर्क का आभास मात्र है। तुम नहीं जानती एक ओर उसके पत्नी का सर्मपण और दूसरे तरफ मेरा आकर्षण इस दोहरे खींचाव में वह टूटे-बिखरे यह मैं कैसे बर्दास्त कर पाऊँगी। खैर ऐसा होगा नहीं वह बड़ा ही संयत अपार मेधा का धनी संतुलन बनाकर गृहस्थी की गाड़ी चलाता है, परन्तु कभी-कभी

घटनाएं शीघ्र घट जाती है तो निष्कर्ष भी तुरन्त सामने दिख जाता है। भाभी मुझे क्षमा करना मैंने अपने मन के सारे राग-अनुराग की गुत्थियां आपके सामने परोस दी है। मैंने तुम्हे बहुत परेशान किया। कुछ देर तक हम दोनों एक दूसरे को देखते रहे ....। भाभी ने कहा, तनाव की चरम सीमा एक ऐसे टूटन-घूटन पर समाप्त होती है जहाँ से व्यक्ति तनाव मुक्त हो जाता है। दीदी अभी तक मैंने जो कुछ सुना-समझा उस आधार पर कह सकती हूँ कि शैशव और आप की कहानी एक ओर प्रगल्भ यौवन और दूसरी ओर् उद्दाम सौन्दर्य की छटपटाहट है। दीदी इसे गम्भीरता से नहीं टाला जा सकता। यही तो रहस्य है? भाभी एक गम्भीर रहस्य .... दोनों एक दूसरे के आकर्षण में आकण्ठ डूबे होने पर भी अत्यधिक प्रशासनिक तनाव में प्रेम के लिए अवसर ही कहाँ निकाल पाते हैं। भाभी का मुख मालिन्य गहराता जा रहा था। चुपऽऽऽ बिल्कुल चुप ..... अचानक नवजात शिशु की तरह मुझे अपने आलिंगन पास में आबद्ध कर भावावेश में बोल पड़ी दीदी तुम अभी तक एक तरह से अविवाहित हो। कालान्तर में भी विवाह मत करना.... हाँ प्रेम करना, उसे विस्तार देना, परन्तु प्रेम पीड़ा के घनत्व में कभी मत उलझना। .... क्योंकि प्रेम का विस्तारीकरण मोहकता की पराकाष्ठा है और गहराई उसके घनत्व में अतिशय मोह। प्रेम के विस्तार में अनुभूतियों के आदान-प्रदान की संभावना होती है। परन्तु प्रेम के मोहकता की गहराई में मात्र समर्पण। प्रेम विस्तार में विचारों की स्वतन्त्रता है अपितु प्रेम की मोहकता में पराधीनता। यह सत्य है कि प्रेम की पराधीनता बड़ी सुःखद होती है उसका प्रतिफल भी एक सीमा तक सुखदाई होता है पर आगे चलकर दुःखदाई हो जाता है। भाभी हृदय की जिन अनुभूतियों को तुम प्रेम की संज्ञा दे डाली उसके होने और न होने का आत्म संघर्ष अथवा आप बीती की जितनी बड़ी से बड़ी कहानी बना दी जाय या यूं कह लो उसका विस्तार ही तो जीवन है। कहते-कहते जूही की आँखे सजल हो गयी, रूँधे हुए गले से कहती रही। भाभी सबके बावजूद दुनिया इतनी अकृतज्ञ है मैं नहीं जानती थी ...... इसके आगे वह कुछ नहीं बोल पायी ..... भाभी सांत्वना के स्वर में बोली आप इतनी सारी बातों पर ध्यान न दें दीदी? मैं तो एक सच्ची हितैषी होने के नाते आपको केवल सचेत किया है। कहीं शैशव को लेकर आप दिग्भ्रमित न हों जाय। दीदी आपके हाथों के निशान एक ऐसे शिशु और शैशव का द्योतक है

जो आपसे कभी जुदा नहीं होगा जिसके आगमन से संसार प्रकाशवान होता है जिसके दूरीगमन से निशा अपने पांव पसार चांदनी रात में समस्त संसारी जन एवं प्रकृति को शीतलता प्रदान करती है। जिसके आगे-पीछे पृथ्वी चक्करघिन्नी की तरह गोल-गोल घूमा करती है। उसे आप स्वयं धारण कर चुकी है वही आपका पालक, पति, पिता, संरक्षक है। आप क्यों अपने को स्वयं से धिक्कारती रहती है ...... बस बहुत हो गया। अभी हम दोनों का दर्शन शास्त्र अपनी-अपनी तर्कों के माध्यम से परिपूर्ण भी नहीं हुआ था कि दरवाजे के बाहर भइया बैठे चाय पी रहे थे। आवाज लगायी जूही देखो शैशव तुमसे मिलने आये हैं ..... मैंने दाँतों तले अँगुली दबायी। हे ईश्वर तुम्हारी माया अपरम्पार है। बाढ़ की नदी और प्रेम ने कब अपने मर्यादा की रक्षा की है। खैर ..... जूही शैशव जब एक साथ मिले तो शैशव बिना संकोच जूही का हाथ अपने हाँथों में रखते हुए बोले तुम कैसी हो ...... जूही को लगा मानों उसके हथेली पर किसी ने आग का गोला रख दिया हो जो कभी बुझ नहीं सकता और वह भीतर ही भीतर उसके ताप का अनुभव करते हुए कुछ न बोली। बरसात के दिन थे उसी समय मेघों का गर्जन यह बता रहे थे कि कुछ ही देर में मूसलाधार बारिश होगी फिर क्या था अब जूही और शैशव अपने घर की तरफ रवाना हो गये। रास्ते में बारिश आरम्भ हो गयी। शैशव एक सघन वट वृक्ष के नीचे खड़े हो गए। वृक्ष की सघनता के कारण वर्षा से कुछ राहत मिली परन्तु दोनों अच्छी तरह से भींग चुके थे। गीले वस्त्र में सौन्दर्य की मादकता और बढ़ जाती है। शैशव ऐसे क्षण में अपने को रोक नहीं पाये बोले मैं तुमसे प्रेम करता हूँ जूही.... वह अपने आप में सकुचाती चुप रही ..... तत्क्षण शैशव करीब आकर पूछे क्या? तुम मुझसे प्रेम नहीं करती? उसका चुप मौन निमंत्रण न दे दे ? वह तत्क्षण बोली प्रेम पुरुष के लिए उसके जीवन का एक हिस्सा है और नारी के लिए प्रेम उसका सम्पूर्ण वजूद होता है। इसका तात्पर्य? शैशव ने पूछा। जूही ने एक नई परिभाषा गढ़ दी। "तात्पर्य यह कि हिस्सा केवल शारीरिक खेल तक सीमित रहता है और वजूद अपने परिधि में संकल्पित मन और आत्मा दोनों को समेट लेता है।" शैशव बात को काटते हुये विश्वास की दुहाई देते है। जूही ने प्रतिकार किया शैशव तुम इस परिस्थिति में प्रेम का इजहार क्यों किए .... जब घनघोर बारिश हो रही है। साँझं का प्रहर है। मेघ जल के साथ

अंधेरा भी घना होता जा रहा है और हम तुम एक निर्जन स्थान पर खड़े हैं ..... उन्मुक्त हँसी-हँसती हुयी बोली यह वासना के सारे उपकरण माने जाते हैं समझे ऽऽऽ .... इसलिए कहती हूँ कि तुम मुझसे प्रेम नहीं करते जानते हो प्रेम की परिधि में सच और झूठ की कोई जगह नहीं है। सच और झूठ तो विवेक पर आधारित है। अपितु प्रेम सबसे अलग एक अनुभूति है, मात्र समर्पण किया जा सकता है। जूही की कथ्यों से शैशव के भावों को धक्का लगा उसने कहा- जूही विश्वास करो मेरा प्रस्ताव भी कोई हँसी मजाक नहीं जो मात्र शरीर तक सीमित है। तो! तुम मुझसे प्रेम करते हो? (हाँ) शैशव ने अपनी बात बल देकर कहा। तब तो शैशव हम लोग दूर रहकर भी पास रह सकते हैं। तब इस सुनसान की, अँधेरे की, बरसाती मौसम की कोई आवश्यकता नहीं है। थोड़ी देर बाद वह शैशव के निकट स्वयं आयी और उसके कान में बोली हम दोनों मन से एक दूसरे से प्रेम करते हैं, करते रहेंगे परन्तु तुम इसको तन तक मत लाना क्योंकि शारीरिक पराधीनता समस्त कष्टों की जड़ है। इतना कहते ही जूही गम्भीर हो गयी उतनी ही गम्भीर जितनी रात हुआ करती है। वह कुछ कहना चाहकर भी चुप हो गयी। उसके अन्तःकरण में एक बिजली सी चमक रही थी। सूर्य की तपिश और चांद की शीतलता के घर्षण से मानों बिजली पैदा हो रही हो। एक बात कहूँ शैशव– कहो? तुम किसी से नहीं कहोगे शपथ लो। मैं अपनी शपथ लेता हूँ– अरे शैशव तुम्हारा क्या अस्तित्व है जो तुम अपना शपथ ले रहे हो? तो मैं तुम्हारी शपथ लेता हूँ, अरे शैशव मैं भी तुम्हारी तरह ही क्षणभंगुर हूँ। अच्छा तो मैं भगवान की शपथ लेता हूँ। अब तो भगवान पर से भी विश्वास उठने लगा है। तो तुम बताओ किसकी शपथ लूँ? "अपने और तुम्हारे मन में उपजे प्रेम की"। इस बार जूही की मुस्कुराहट शैशव को अन्दर तक आप्लावित कर गयी। शैशव बड़ी गम्भीरता से बोले तो लो मैं अपने प्रेम की सौगन्ध खाकर कहता हूँ तुम्हारी कही बात किसी से नहीं कहूँगा। तो तुम कान खोलकर सुन लो "मैं विवाह नहीं करूँगी।" आखिर क्यों? शैशव का सपना शिखर से धरती पर आ गिरा। जूही शैशव का हाथ पकड़ कर बोली, शैशव मैंने अपने भाभी को वचन दिया है। मैं शादी नहीं करूँगी फिर सारा सन्दर्भ सुनाकर जूही शान्त हो गयी–शैशव बार-बार पूछते रहे तो तुम कभी भी विवाह नहीं करोगी..... कभी नही? ..... कभी नही? .....। मैं अपने वचन की रक्षा प्राण

देकर भी करूँगी शैशव। इसमें रक्षा और अरक्षा का भाव कहाँ पैदा होता है यह तो जीवन की एक संगत है जिसकी थाप से यह सम्पूर्ण धरा सुवासित है और तुम अपने जीवन में नीरवता भरे प्रेम का वरण कर रही हो। आश्चर्य ....। शैशव यही तो मेरे जीवन का रहस्य है। इस सूरज और चाँद के प्रतीक चिह्न की, जो आज भी मेरे साथ है, कल भी रहेगा। अंतिम सांस तक जूही यही कहते हुए तड़प उठी! शैशव देखो-देखो .... ये मेरे दोनों हाथ एक बार देख लो ...... शैशव मेरे चाँद और सूरज सिर्फ एक बार....।

□□□

हरियाली और आग

ऊषा काल की लालिमा लीना के चेहरे पर साफ झलक रही थी सपने का अभिनव रंग निखरा हुआ था। रातभर उसे नींद नहीं आयी, अन्जानी रोमानी आस्था से सराबोर उसकी आंखे बार-बार घड़ी की सुइयों को देखती फिर सुबह के इंतजार में चमक उठती थी। गाल दहक रहे थे, उसके भीतर एक उल्लास हिलोरें मार रहा था जिसके झोकों से पूरा बदन (नख-शिख) झूम रहा था जिसे याद कर-करके लीना उमंगायित हो रही थी।

उसे अपना सपना याद आ रहा था जिसे वह बहुत दिनों से संजोए थी, कालेज में वह अपने सहेलियों के साथ खड़ी थी अचानक तेजस उसके सामने आकर खड़ा हो गया और धीरे से बोला मेरे साथ चलो? लीना पूछी कहाँ नदी के किनारे, तेजस ने इशारा किया दोनों चल पड़े। उस नदी के किनारे दोनों तरफ ऊँचे-ऊँचे देवदार के वृक्ष लगे थे तथा छोटे बड़े अन्यान्य पेड़ पौधे थे उसके बीच बैठ दोनों ने लुका-छिपी जैसे खेल खेलने शुरू किये उसमें दोनों घने पेड़ों के ओटों में छिप-छिपकर प्रेम का इजहार कर रहे थे उसी बीच लीना भावमग्न होकर कुछ सोचने लगी तब तक तेजस ने पीछे से आकर अपनी दोनों हथेलियां उसके कंधों पर रख दी और देवदार के ऊँचे वृक्षों ने अपने सिरों और बूंटों से दोनों को पैरों से सिरों तक अपने ओट से ढक लिया था लीना मैंने तुम्हें ढूंढ़ लिया है।.... तेजस ने लीना के कानों के पास जाकर धीमे से कहा ... यह भी कोई बात हुयी, लीना ने उलाहने की दृष्टि से तेजस से कहा ..... "मैंने तुम्हें ढूंढ़ लिया है" तेजस ने फिर कहा और कुछ ऐसी नजरों से लीना की ओर देखा कि वे नजरें ह्रदय में उतर गयी और दोनों हथेलियां लीना के कंधे पर पड़ी थी पेड़ों के पत्तों ने अपनी बाहें फैलाकर दोनों को ढक रखा था और दोनों के शरीर में हो रहे कम्पन एक साथ घुल मिल रहे थे। आपसी वार्ता में अपने आपको भूलकर उस नदी के भींगे किनारे पर ऊँचे देवदार के वृक्षों की ओट में लीना

और तेजस की तेज चलती सांसे एक दूसरे से टकरा रही थी।

सपने की याद से लीना की सुबह रंगारंग थी। उसके चेहरे का रंग निखर आया था। आज का उगता सूरज लीना को नव जीवन देगा जो लीना से छूट गया था ..... लीना तेजस के मन पसन्द कपड़े पहनी और अच्छे से तैयार होकर तेजस के घर पहुँच गयी, आज तेजस के साथ उसे सैर-सपाटे पर जाना था। तेजस भी अतिशय खुश थे। दोनों ट्रेन में साथ-साथ बैठे। बैठते समय अपने निकट खड़े तेजस को देखकर लीना के शरीर के सारे तार झनझना उठे। लीना मन ही मन सोचने लगी ऐसा तो उस समय नहीं हुआ था जब हम दोनों पहली बार मिले थे। उसे तेजस पसन्द था इतना कि जितना कोई और पसन्द नहीं था। ऐसी झनझनाहट पहली बार उसके शरीर में उत्पन्न हुयी थी। तेजस उसके मन मस्तिष्क में छाया हुआ था लेकिन आज उसे लगा कि तेजस उसकी नस-नस में समाया हुआ है ..... उसके बगल में खड़े तेजस भी उसी नजर से देख रहे थे जैसे वर्षों पहले देखा था। तेजस तुम कितने अच्छे हो लीना सकुचाते हुए बोल पड़ी, दाएं-बाएं लोगों को बचाते हुए। अपने भीतर से उठते हुए उमंगों और भीतर से मंद-सुगन्ध मुस्कानों को दबाते हुए ट्रेन में खिड़की के पास जा बैठी। उगते हुए सूरज की पहली किरण के साथ ही बादलों के कुछ नन्हें-नन्हें टुकड़े जगह-जगह पड़े थे और लीना के आंखों के सामने आ-आकर टकराने का आभास मात्र दे रहे थे। लीना के होठों पर एक गीत के बोल उभरते रहे फिर वह स्पष्ट रूप से गाने लगी—

"आज चली पुरवाई पीड़ा के पट खोल गयी
तुम मेरे सपने में आए चितवन चंचल चित्त में रस घोल गयी ....."

लीना थोड़ी सकुचाई क्या यह मेरा अलापना मिलन से विछोह नहीं बन जाएगा? और मेरे प्रणय के कायनात पर काले बादल नहीं छाएंगे? मैं यह क्या सोच रही हूँ! लीना की छटपटाहट तीव्र से तीव्रतर होती जा रही थी। हृदय का कौन सा तंतु उसके खुशियों को दबा रहा था। वह अच्छी-भली, हँसती-गाती-मुस्कराती लड़की आज अचानक गमगीन सी दिखने लगी, उसके मिलन का गीत, विरह का गीत बनता नजर आ रहा था ..... अरे? आह! अभी-अभी मैंने प्रसन्नताओं का मुंह देखा था, अभी आकाश में चाँद निकला था क्षण भर में यह क्या हुआ। अभी-अभी नीले बादल घिर आये हैं। क्षण भर पहले तुम्हारे

मिलन की चर्चा और अब विछोह का जिक्र होने लगा है। लीना का मन बार-बार बादलों के उन टुकड़ों को अपने हाथों में लेकर तोड़ डालने का कर रहा था तथा सूरज के सम्पूर्ण किरणों को धरती पर लाकर बिछा देने का। पुनः लीना एक बारगी बोली-

"आज हवा ने मुझसे कहा सुन तो लो जरा,
राहों में मुझसे टकरा गया था तुम्हारा सिरफिरा''।।
आंखें दो-चार हुईं तो कहा सुनो ए हवा,
उसके पास से जब भी गुजरना तो ....
बता देना बेइंतहा प्यार का नजारा ......

लीना एक टक आकाश को निहारती बीच-बीच में छुप-छुप कर तेजस को देख लेती थी, शायद तेजस भी ...... पर छुनें की ललक लिए हुए लीना ने सोचा कि आज की सुबह के साथ उसके रात के सपने का सम्बन्ध था तभी तो सूरज की लाल किरणें और नीला मेघ टुकड़ों में बटा हुआ होकर भी आपस में घुल-मिल रहे थे, शायद इसीलिए उसकी प्रसन्नताएं और उदासियां एक-दूसरे से जूझ रही थी। तब तक साथ चल रहे अन्य साथियों ने आवाज लगायी अरे? लीना एक-एक कप चाप पी ली जाय। तेजस ने चाय मंगवाया। चाय के चुस्कियों के साथ इधर-उधर की छोटी मोटी बातें होती रहीं सबने अपने को ताजा महसूस किया, परन्तु लीना के चेहरे का रंग उड़ गया था और उधर बादलों का रंग धीरे-धीरे बदलने लगा, नीले से काला होता जा रहा बादल चारों ओर घनें कुहरे से ढक गया सुबह का दूसरा पहर पहचानना कठिन सा हो गया। इसी बीच छोटी-छोटी बातों को भूलकर लीना के मन में एक बड़ी बात ने जन्म ले लिया। कोई ख़ास बात समझ में नहीं आ रही थी परन्तु रह-रहकर उसका दिल घबराने लगता था, अचानक साथ में बैठी जुगुनू बोल पड़ी लीना तुम क्यों घबरायी सी लग रही हो। मन की खुशी और व्यग्रता का कोई माप तौल नहीं है जो देखा और परखा जा सके। आज सुबह मैं बहुत खुश थी परन्तु अब न जाने... और वह हाथ में ली मोबाइल में रखी तस्वीर देखने लगी जुगुनू का भी ध्यान उस तस्वीर पर चला गया उसने देखते ही बोला लीना कोई किसी के ख्यालों में क्यों आता है। लीना उसकी ओर देखते हुए बोली तुम क्या कह रही हो उसने कहा यह तस्वीर मेरे दिन के जागरण और रात की नींद के

साथ ...... कहते-कहते रूक गयी परन्तु लीना के हृदय में उसकी पंक्ति बिजली सी चमक गयी जुगुनू का मुख मलिन हो गया और लीना का चेहरा पीला पड़ गया, उधर आसमान भी नीले से काला और अब काला बादल अपने को नन्हीं जल की बूँदों में बदल लिया था। घनघोर वर्षा होने लगी खिड़की से बारिश की बूँदों को देखकर लीना सोचने लगी कि भरे बादल हल्के होते जा रहे हैं। उसी प्रकार मेरे आंसुओं की झड़ी लग जाये और उसका भरा हुआ मन हल्का हो जाए। सभी एक दूसरों की बातों में मसगूल थे तब तक ट्रेन गन्तव्य पर पहुँचने वाली थी। गुवाहाटी स्टेशन से बस द्वारा हम शिलांग चेरापूंजी के लिए चले। बड़ा ही मनोरम दृश्य था। चेरापूंजी और शिलांग का अति मनोहारी दृश्य देश भर में प्रसिद्ध है। सड़क के दोनों ओर चाय बगान एवं उसको तोड़ती टोकरी बांधे बालाएं मानों ऐसी लग रहीं थी जैसे हरी घास में रंग-बिरंगे फूल खिले हों। तेजस न चाहते हुए भी चेरापूँजी में अपने साथी जनों के साथ अलग कक्ष में रूके और मैं अलग यह भी एक विडम्बना थी। फिर हम दोनों रोज की आपाधापी और सैर-सपाटे में मसगुल हो गए। सभी लोग नदियों, पहाड़ियों की अतल गहराईयों और ब्रह्मपुत्र की अद्भुत छटा, उद्दात तरंगे, लहरों की अठखेलियों को अपने में समेटे हुए थे। भाव विह्वल मन मानों ऐसा हो गया जैसे प्रकृति के गोद में कोई नन्हा बच्चा स्वच्छन्द विचरण कर रहा हो और वहीं तेजस तथा लीना की जीवन गाड़ी अपने-अपने स्थान पर हिचकोले खा रही थी। फिर भी निःशब्द हम दोनों एक-दूसरे के साथ अतिशय सुख का भान कर रहे थे। तेजस लीना को बहुत चाहते हैं परन्तु जुगुनू को कम नहीं। इस विचित्रता की व्याख्या नहीं की जा सकती थी। लीना इस ठंडे प्रदेश में रहकर भी भीषण अग्निदग्धता की शिकार हो गयी थी। अचानक उसके भीतर एक कसक सी उठी उसने सोचा कि वह तेजस और जुगुनू के बीच क्यों खड़ी है, उसे मिट जाना चाहिए। तेजस पर उसका कोई अधिकार नहीं था। "मैंने तुम्हें ढूँढ लिया है" तेजस की आवाज आयी उसका सपना "मैंने तुम्हें ढूँढ लिया है"। तेजस की आवाज फिर आयी तेजस उनके कानों के पास नहीं बल्कि उसके भीतर बोल रहे थे। लीना ने जोर से अपने हृदय को दबा लिया कहीं उसके मिलन की बेला बिरह वेदना के गीत न बन जाय। तेजस सबसे बेखबर प्राकृतिक सुषमा को अपने में समेटे हुए मेरा बहुत ख्याल रखते थे,

उठने-बैठने, घूमने, खाने आदि का परन्तु लीना का मन इस कदर विकल था काश एक लम्हा तेजस के साथ वह बैठ पाती ऐसा नहीं हुआ ...... फिर भी साथ रहे एक दिन हम सभी पहाड़ की ऊँचाइयों पर पहुँच गये जहाँ बादल बिल्कुल करीब दिख रहा था, बार-बार मैं तेजस को देख रही थी यह बताना चाह रही थी कि तुम बिल्कुल वैसे ही मेरे लिए हो जैसे बादल, इन्हें कोई चाहकर भी नहीं छू सकता परन्तु तेजस दो पाटों के बीच चलता हुआ जुगुनू को हर क्षण सम्बल प्रदान करता रहा और मैं उस वक्त अपने को बेसहारा महसूस कर रही थी। तेजस भी विकल दिखे शायद यह तेजस की मजबूरी थी ...... क्षण भर का समय मिल गया। लीना तेजस से पूछी "क्या आपने किसी से प्रेम किया है" तेजस भी इसी प्रश्न को दुहरा दिये। लीना बोल पड़ी मैंने शायद एक प्रेम करने के सिवा और कुछ किया ही नहीं है और देखो न! आज मेरा मिलन ही मेरा वियोग बन गया। घड़ी भर का संयोग जीवन भर का वियोग दे गया है। हाँ तेजस कई बार जीवन में मिलन बिछुड़न जैसा होता है और बिछुड़न मिलन जैसा होता है दोनों साथ रहकर भी अलग रहते हैं। तेजस आपका दिल बहुत बड़ा है। मैं आपका मुकाबला नहीं कर सकती। मैं तो भाग्य की मारी हवा से उजड़ी हुयी डाली की वह फूल हूँ जो कभी किसी गुलदस्ते में न सजाया जा सकता है, न भगवान को चढ़ाया जा सकता है। दीर्घ श्वास लेकर तेजस ने अपने को संयत किया। डूबते सूर्य का नजारा देखने लायक था जैसे तारे जमीं पर आ गये हों, शहर की चमकती छटा की खूबसूरती का वर्णन करते लोग अघाते नहीं थे उसी वक्त जुगुनू ने तेजस को आवाज दी, तेजस अभी, हामी भरते ही परन्तु उसी वक्त वह उनके पास आकर बोली तेजस अगर दाता का दिल बड़ा हो जाय तो क्या लेने वाली की झोली बड़ी हो जानी चाहिए? तेजस ने कहा चाहने और पाने की एक चाह स्थिर नहीं रह पाती जुगुनू यह उस टूटी टहनियों की तरह हो जाती है, जिसे अपने हरे होने की याद ही न हो ..... अगर किसी एक रात उस टहनियों में हरी कोंपलें निकल आयें तो इसे नजर का चमत्कार या कोरी कल्पना कह सकती हो। खैर इस बहस को समय की मांग पर छोड़ दो .... लीना यह सब सुन रही थी, फिर अचानक उठकर चुपचाप चली गयी। तेजस ने अपने कमरे की बिजली नहीं जलायी, अंधकार और भी गहरा हो गया था लेकिन तेजस को इस पर यह दिख गया

कि लीना किस सोच में पड़ गयी। तत्क्षण आवाज दी लीना ..... "जी" क्या सोच रही हो? सोच रही हूँ कि जब भी किसी को प्रेम हो जाता है तो उसे रोना क्यों पड़ता है यह कहते हुए उसकी आंखे सजल हो उठी तेजस ने कमरे की बिजली जलायी पहले उसे लीना के आंसुओं की याद आयी फिर उसकी हंसी ..... लीना ने उलाहना भरे अंदाज में तेजस की ओर देखा जैसे कह रही हो "जीवन के दिन अधिक नहीं हुआ करते तेजस .... लीना मुझे अपने से ज्यादा तुम्हारी चिन्ता है। लीना बोली शुक्र है कोई तो हमारा है। तेजस का स्वर कांप गया वह आगे कुछ नहीं कह सका। अगर लीना को जुगनू की बात पता होती तो वह अपने मन का बलिदान कर सकती थी, परन्तु उसके जीवन में यह कसक बनी रहेगी भले ही तेजस उसे प्रेम-स्नेह करते है सब कुछ वह लीना के लिए करते हैं। 24 घंटे में वह 4-5 घंटे लीना के बारे में ही सोचते रहते हैं परन्तु कहीं न कहीं हम दोनों के बीच एक नारी मानों पहाड़ की तरह खड़ी हो चुकी थी जिसके पार जाना हम दोनों के लिए एक विकट समस्या बन गयी। सत्य समय-समय पर बदलता रहता है। अभिलाषा की प्यास बुझती नहीं, न ही संतुष्ट होती है, लीना मन ही मन गुन-गुनाने लगती है ......

मुझको तुम बरखा न समझो आग की दरिया हूँ मैं ....।
तुम्हारे एक तब्बसुम के लिए तरसती रहूँगी मैं।

तेजस प्रकृति के उन्मादी वादियों में विछोह की घटनाओं से घिरते जा रहे थे। कैसे लीना को समझाएं वह है कि कुछ भी समझने को तैयार नहीं है, सच्चाई उससे कोसों दूर है जुगनू अपने-आप में मस्त, तेजस के आवभगत में व्यस्त तेजस पर उसका सम्पूर्ण अधिकार है, यह भान करा रही थी .... खैर तेजस की आकुलता कम होने के बजाय बढ़ रही थी हम दोनों या तीनों साथ रहकर भी बहुत दूर हों, ऐसा लग रहा था। तेजस आज सुबह से ही परेशान... बिस्तर से निकलकर सुबह की ताजी हवा से मुखातिब निमग्न एकटक हरियाली और नीरवता का चरम उत्कर्ष देख रहे थे और वही लीना अभी रात के आगोस में अपने परछाई से बात कर रही थी। लीना की उदासियों की गिनती नहीं की जा सकती है। अब तक उसके जीवन में सिर्फ दो व्यक्ति ऐसे आये थे जिससे वह जीवन की हर परत खोल सकती थी। लेकिन आज लीना का दर्द इतना बढ़ गया था कि दो में से किसी से यह दर्द नहीं बांट सकती थी। कोई अन्य प्रकार

की पीड़ा होती तो वह तेजस से बांटती और तेजस बड़े दुलार-प्यार से उसे समझा कर शान्त कर देते जब कभी ऐसे क्षणों से गुजरना हुआ तो तेजस लीना को अपनी चौड़ी छाती से लगाकर दोनों हथेलियों के पौरूष ओज से सहलाते तथा कोरों से बहते आंसुओं को कोमल हाथों से पोंछते हुए अजस्र प्रेम का एहसास करा देते थे तब लीना की आंखों में एक चमत्कारिक सौन्दर्य दिखाई पड़ने लगता था और वही आज लीना अपने सपने टूटने के एहसास मात्र से कांप जा रही थी वह सोच रही थी कि मेरे पास तेजस के सिवा था ही क्या वह भी आज किसी दूसरे की अमानत बन गया। वह पुनः खाली की खाली पड़ गयी बिल्कुल खाली और यह खालीपन उसके आंखों में मूर्तिमान होकर बस गया। हर किसी ने देखा परन्तु कोई भी कुछ भान नहीं कर सका परन्तु तेजस ने जब लीना की यह अवस्था देखी तो उसके भीतर कुछ ऐसी हलचल हुयी उसका जी चाहा कि वह अपने आप को लीना के आंखों में घोल दे तेजस को देखकर लीना के होंठ कांपते परन्तु उसकी वेदनाओं के निकलने का मार्ग न मिलता लीना की चुप्पी तेजस के होठों पर अंकित हो गयी वह जानता है कि लीना जुगुनू को एक पल भी सहन नहीं कर पाती है फिर भी जुगुनू की लेखकीय विविधताओं का वह कायल था। उसके हर क्रिया-कलाप उसके सर आंखों पर न जाने क्यों-न जाने क्यों ..... उसके वशीकरण मंत्र का प्रभाव था या तेजस के सम्बन्धों की उदारता .... लीना के जीवन में तेजस एक परछाई की तरह चलते रहे सिर्फ अपने तईं। उसके लिए न दिन के प्रकाश से कोई अन्तर आता था न ही रात के अंधकार से वह जहाँ कहीं बैठती, खड़ी होती, बातचीत करती हमेशा एक परछाईं उसके साथ खड़ी रहती थी उसके होठ बन्द रहते पर वह पूरा-पूरा दिन उस परछाईं से बात करने में गुजार देती और वह परछाईं उसके हर बात का उत्तर देती उसके आंसुओं को अपने हथेलियों पर लेती, अपनी उंगुलियों से उसके होठों को हंसा देती और उसको अपने अंक पास में भर लेती और एक जीवन दायिनी शक्ति पूरे शरीर में प्रवाहित हो जाती, लीना यह भान करती रही, उपस्थिति, स्पर्श, वाणी की ओजस्विता उसके साथ है। वह उसके नाक नक्श पर नाज करती थी, तेजस जैसे दो रूपों में जी रहा था। एक सबकी नजर में दूसरे परछाईं के तरह केवल लीना के लिए ..... एक दिन वह बहुत उदास हो गयी। वह सोचने लगी जो तेजस सबको

दिखाई देता था उस तेजस को लोगों ने मुझसे छीन लिया परन्तु अन्य को जो नजर नहीं आता उस तेजस को लोग कैसे छीन पाएंगे जो मेरे साथ रहता है और हमेशा-हमेशा मेरे साथ रहेगा। धीरे-धीरे लीना की मनःस्थिति बेकाबू होती जा रही थी घर के लोग परेशान होकर डॉ. के पास गये, डॉ. ने कहा इनकी एक ही दवा है इन्हें सुन्दर- स्वस्थ्य, अधिक से अधिक सौन्दर्यपरक वातावरण में रखा जाय। इनके साथी प्रसन्नचित हों। उसके घर में आने-जानें वाले दो-तीन लोग ही थे जैसे जुगुनू, तेजस, विजय आदि। लीना मन से संकल्पित थी कि वह अपने मन की वेदना तेजस के सम्मुख प्रकट नहीं होने देगी बल्कि अपने वेदना के घावों पर नई कोरी पट्टियां बाँध लेगी। उसके रिसते घावों पर भी उसे विश्वास था कि वह तेजस से छुपा लेगी परन्तु ऐसा न कर सकी कई बार तेजस के पास बैठे-बैठे तेजस और उसकी परछाईं एक दूसरे में घुल मिल जाते थे। हाथ पसार-पसार देखती उसकी परछाई उससे अलग खड़ी नजर आती। वह घबरा उठती है फिर अकेले पड़ी-पड़ी निढाल बेजान महसूस करती पुनः उसकी परछाई उसके पास आ जाती और अपनी बाहों में समेट सात समुन्दर पार का चक्कर कराते अपने में समाहित कर लेती ..... आह भरकर ...... लीना ने अपनी मां से कहा माँ मेरा सांस छुटा जा रहा है ..... "तेजस"। वह कहते-कहते चुप हो गयी। लीना पागलों जैसी हरकतें करती थी। माँ सहम गयी बातें करना उसने बन्द कर दिया ...... अचानक एक दिन फिर "तेजस" बोल कर बिस्तर पर निढाल सो गयी रात भर छटपटाती रही नींद उसके आंखों से कोसों दूर थी। ..... न जाने कब उसे नींद आ गयी। संयोगवशात् तेजस घर आया पूछा माँ लीना कहाँ है? माँ ने कहा वह सो रही है। तेजस ने कहा मैं लीना को जगाऊँ ..... माँ हाँ-हाँ क्यों नही? ...... फिर तेजस लीना को जगाने उसके सिरहाने जाकर खड़ा था। वह दुनिया से बेखबर गहरी नींद में थी उसको क्या पता था कोई उसे एक टक निहार रहा है। इधर तेजस भी सोच रहा था लीना को इस कदर देखे उसे वर्षों बीत गये थे। वह न तो उसके करीब बैठा था और न उसे ठीक से देख पाया था। वैसे तो वह बचपन से ही लीना को न जाने कितनी बार छुआ होगा परन्तु आज तेजस उन दिनों की अपेक्षा कुछ अलग सा अनुभव कर रहा था। वह लीना से दूर खड़ा था उसके बावजूद लीना के बदन से कोई खुशबू उसके बदन में प्रवाहित हो रही थी। एक प्रकार का वेग

बार-बार उसके मन को कुछ बता रहा था यानी वह पूर्ण रूप से लीना को प्रेम करता है। अपितु आज वह जो जी रहा था, वह क्षण उसे हारे हुए पथिक की याद दिला रहा था अचानक उसे अपने अन्दर एक नशा का भान हुआ और वह लीना का हाथ झट अपने हाथों में ले लिया ...... आह ...... हाथों को अपने हाथ में ले लेना आसान था परन्तु हाथ छोड़ना बहुत कठिन है। इधर लीना के शरीर में एक हरकत हुयी मानों लहरें चल रही हों उसकी आंखें खुली तो तेजस उसके सामने खड़ा था। न जाने लीना रात भर क्या-क्या सपने बुनते रही या ईश्वर से क्या वरदान मांग रही थी जो सबेरे स्वच्छ अधखिली धूप में उसका वरदान फूलता-फलता नजर आ रहा था। लीना का चेहरा खिल उठा उसके सपने साकार हो गये थे। क्षणभर में तेजस और लीना के आंखों में सपनों का एक गुम्बदनुमा ऊँचाइयों को छूता महल खड़ा हो गया। उसके सुनहले कंगूरे और चमकती दीवारों की ओट में लीना अपने को छुपा लेना चाही ...... लेकिन कभी ऐसा हो नहीं सकता। लीना यह सोच कर कांप गयी। उसकी नजरे जमीन में गड़ गयी और गड़ती चली गयी। अनन्त गहराईयों में जिसका कोई अन्त नहीं है। उसके हृदय के तन्तु तार-तार हो गए, तेजस-जुगुनू के साथ ही रहेगा आह ...... फिर वह दहाड़े मार कर गिर पड़ी। तेजस भी घबराए माँ भी घबरा गई ..... लीना बेहोशी की हालत में काफी देर तक रही कुछ देर बाद होश में आ गयी परन्तु तब तक उसके चमकते दीवारों वाला सपनों का महल धराशायी हो चुका था ...... तेजस घंटों उसके पास बैठा रहता था परन्तु लीना के कल्पना का प्रतीक तेजस और उसकी परछाईं एक हो गयी थी। उसके बाद उसका प्रेमाश्रय उसका साथ छोड़ दिया उसके सुखद स्वप्निल सुहाने सफर का साथी उससे विदा हो चुका था। उसके सुन्दर सलोने चेहरे अब स्याह सफेद हो गए। सब कुछ वही था पर एक नहीं था तो उसके मानस का राजहंस तेजस जो आज साथ रहकर भी उससे बहुत दूर-बहुत दूर चला गया था .... आह-भरकर मेरे प्रेम के इस पथ में एक स्त्री रूपी पहाड़ का आ जाना आश्चर्य नहीं तो और क्या है तेजस .... तेजस चुप ..... बिल्कुल निस्तेज भाव से स्वीकार कर लेता है ...... सचमुच ऐसा ही है। ....

□□□



डॉ० मंजु द्विवेदी

जन्म : 21 जुलाई 1962 ई.

ग्राम : रघुनाथपुर पोस्ट- चकिया, जनपद- चन्दौली, उत्तर प्रदेश

शिक्षा : एम०ए०, एम०फिल०, पी-एच०डी० (हिन्दी)

प्रकाशित : "क़ौंधती अनुगूँजें" प्रथम काव्य संग्रह तथा "सगुण-निर्गुण भक्ति-वैशिष्ट्यं सम, असम दृष्टि" (समीक्षा)

कविता : पत्थरों के राग, खजुराहो, इंसान, आज सबेरे आदि

कहानी : मन की हार, आहत, सदमा, मृत्यु का उत्सव आदि विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित

निबन्ध : नयी विश्व परिस्थितियां, मानवीय पर्यावरण की चुनौतियां और समकालीन कविता

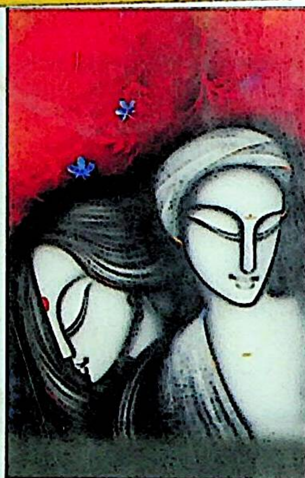
सम्प्रति : भौमिकी विभाग, विज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्व विद्यालय में कार्यरत

प्रकाशन : "यथार्थ" एक कहानी संग्रह तथा इसके अतिरिक्त "संत शिरोमणि रविदास जी का जीवन चरित्र एवं विचार क्रान्ति" (प्रकाशनाधीन)

सम्पर्क : डॉ० मंजु द्विवेदी, प्लाट नं. 93, विवेक नगर, सुसुवाहीं (नासिरपुर) वाराणसी

मोबाइल : 09415444422

ई-मेल : manjudwivedi3@gmail.com





ISBN 81-909935-5-0



प्रकाशक

शिवप्रताप मेमोरियल फाउण्डेशन

सारनाथ, वाराणसी